खांडेकर-साहित्य : १२

कलिका

वि. स. खांडेकर

मूल्य छः रुपये

प्रकाशक :
रा. ज. देशमुख
देशमुख आणि कंपनी
२२ कसबा, पूना २

●●●

अनुवादक :
रा. र. सर्वटे

●●●

●●●

मुखपृष्ठ :
दीनानाथ दलाल

●●●

मुद्रक :
शि. गो. भावे, मैनेजिंग डाइरेक्टर
मुद्रण-स्थल :
विमा मुद्रक और प्रकाशक लि. का
विमा छापखाना, सतारा

●●●

मराठी

प्रथम संस्करण १९४३
द्वितीय संस्करण १९५०

गुजराती

प्रथम संस्करण १९५२

तामिल

प्रथम संस्करण १९४५
द्वितीय संस्करण १९५०

हिन्दी

प्रथम संस्करण १९५७

विनायकरावजी कर्नाटकी

इनको

१

'सागर, अगस्ति आया !'

प्राचीन कालकी कथा है। पृथ्वीके सुवर्णमय पर्वतोंके रत्नजटित शिखरोंको सागरने दूरसे देखा। उनपर सूर्यकी किरणें पड़नेके कारण वे इतने जगमगा रहे थे कि ऐसा भ्रम होता था जैसे कुबेरने अपना सारा भाण्डार उन शिखरोंपर ही लाकर रख दिया है। सागरने स्वयं अपने भाण्डारको देखा। उसमें शंख, सीपियाँ, सागर-फेन, और बालूके अतिरिक्त और कुछ भी न था !

सागर पृथ्वीके पास याचना करनेके लिये आया। वह तरंगोंकी डलियोंमें जुहीके पुष्प भरकर ले आया और उन्हें पृथ्वीके चरणोंमें चढ़ा दिया। पृथ्वीकी उदारताका स्तुति-स्तोत्र उसने गंभीरतापूर्वक गाकर सुनाया। पृथ्वी प्रसन्न हो गयी।

सागरने वरदान माँगा और पृथ्वीने वह दे दिया। अखंड परिक्रमा करनेकी और अभिषेकके जलको तीर्थके रूपमें सेवन करनेकी अनुमति सागरने माँगी। पृथ्वीको आश्चर्य हुआ। वह मन-ही-मन बोली,—'सागर बड़ा मूर्ख मालूम होता है। मेरे पासके रत्न माँगे, इतना भी ज्ञान उसमें नहीं !'

वरुण मेघकुंभसे पृथ्वीका नित्य अभिषेक किया करता। पृथ्वीने सारे पर्वतों और पठारोंको आज्ञा दी। अभिषेकका जल पहलेकी तरह पर्वतके नीचे न रहकर, सागरकी ओर प्रवाहित होने लगा। धीरे धीरे उस जलके साथ पर्वतोंके शिखरोंके

रत्न भी जाने लगे। पर्वतोंके सुवर्णशरीर धुलकर साफ़ हो गये। उधर सागर रत्नाकर हो गया; लेकिन इधर पृथ्वी दरिद्री हो गयी।

सागरके षड्यंत्रका पृथ्वीको पता चल गया, परंतु पूर्ण दरिद्रता प्राप्त हो जानेके बाद। अपने आसपास बहुत दूरसे परिक्रमा करनेवाले चंद्रको उसने यह सारा वृत्तान्त सुनाया। परंतु उसे इस बातपर विश्वास न हुआ कि, मुझे देखते ही हर्षसे नृत्य करनेवाला सागर इस तरह कोई कपटतापूर्ण काम करेगा। पृथ्वीने सूर्यसे प्रार्थना की, परंतु जलपानके कारण वह सागरसे दबा हुआ था! यह देखकर कि कोई भी मेरी सहायता करने नहीं आ रहा है, पृथ्वी क्रोधसे थरथर काँपने लगी। बेचारीके वक्षस्थलपरके नगरभूषणोंका अवश्य नाश हो गया। जब क्रोध मनमें न समाता, तो उसके नेत्रोंसे तप्त ज्वाला-रस बहा करता। परंतु उसे यह दिखायी दिया कि अन्तःकरणकी तरह स्वयं अपने ही शरीरको दग्ध कर लेनेके परे उससे कोई लाभ नहीं हो रहा है!

किसी समय ऐश्वर्यसे सम्पन्न परंतु अब दरिद्री हुई पृथ्वी, निराश मनसे विचार करने लगी। पर्वत शिलामय हो गये, नगरोंकी रौनक लुप्त हो गयी। राजाओंके कोषागारोंमें भी रत्न नहीं बचे। सारे रत्नोंको अपनी तलीमें संचित कर, सागर उसकी दरिद्रताकी खिल्ली उड़ाने लगा।

पृथ्वीमाताने अपने बच्चोंकी ओर बड़ी आशासे देखा। अनेक बृहस्पति उठे और सागरके पास जाकर, मीठे शब्दोंमें उसकी प्रार्थना करने लगे। किनारेपर खड़े होकर रत्नोंको माँगनेवाले इन दुर्बलोंको सागरने उत्तर दिया,— 'रत्नोंकी रक्षा करनेकी शक्ति तुममें नहीं है, इसलिये मैंने उन्हें अपने पास रख लिया है। तुममें जब शक्ति आ जायेगी, तब वे तुम्हें वापस मिल जायेंगे।' अच्छे बोलनेवाले बृहस्पति विजय प्राप्त होनेके हर्षोन्मादमें लौट आये। उन बेचारोंको यह मालूम ही न था कि शब्दोंसे वैभव अथवा स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती!

बरसें बीत गयीं। सागरका यह सिद्धान्त कायम रहा कि पृथ्वीकी प्रजा दुर्बल है। ऊबकर पृथ्वीने अपने शूर पुत्रोंकी ओर देखा, उन्होंने सागरपर चढ़ाई कर दी। परंतु सागरकी प्रचण्ड लहरोंके आगे उनकी एक न चलती थी। कुछ तुरंत ही किनारेपर लौट आये। लेकिन जिन्होंने सागरकी तलीमें जानेका साहस किया, उनकी लाशें भी हाथ न लगीं!

पृथ्वीकी निराशा चरम सीमाको पहुँच गयी। उसे लगने लगा कि जिस तरह

पतंगा दीपकपर झपट पड़ता है, उसी तरह मैं भी सूर्यके ज्वालामुखीपर झपटकर भस्म हो जाऊँ। उन्मत्त सागरकी तरंगें आकाश छूने लगीं। इसी समय कहींसे गंभीर ध्वनि आयी, 'माँ! डरो नहीं।'

ये शब्द एक ऋषि-कुमारके थे। वह तुरंत सागरके पास गया और उसने रत्नोंकी माँग की। कुमारकी कृश मूर्तिको देखकर, सागरने उपहास-भरे शब्दोंमें उससे कहा, 'भैया, स्नान-ध्यान छोड़कर, इस फंदमें क्यों पड़ रहे हो? एक ही लहरसे मैं तुम्हारा कचूमर निकाल दूँगा।'

ऋषिकुमारने उसकी बातपर ध्यान ही न दिया। घुटने-भर पानीमें खड़े होकर वह मंत्र जपने लगा। सागर उन्मादसे बोला, 'ऋषिमहाराज, नीचे गरदन लटकाकर वेदपाठ करनेका यह स्थान नहीं है। अपने प्राणोंको व्यर्थ ही संकटमें न डालो।'

यह देखकर कि ऋषिकुमार उसकी बात नहीं मान रहा है, सागरने पर्वतप्राय लहरें उसके ऊपर फेंकी। परंतु वे कुमारतक पहुँचती ही न थीं। ऋषिकुमारने मंत्र जपकर आचमन करना आरंभ किया। सागरका पानी जल्दी जल्दी कम होने लगा। एक, दो, तीन, कितने ही पुरुष गहरे पानीकी जगह मरुभूमि दीखने लगी।

पृथ्वीके रत्न पृथ्वीको वापस मिल गये। कुमारकी पीठपर भावुकतासे हाथ फेरती हुई वह बोली, —'बेटा! तेरा नाम क्या है? बड़े बड़े योद्धाओं और पंडितोंने जहाँ हार खायी, वहाँ तूने कैसे सफलता प्राप्त कर ली?'

उसकी वंदना करते हुए कुमारने उत्तर दिया, 'माता! मेरा नाम है अगस्ति। तुम्हारी कृपासे मुझे सफलता मिली। मेरे पास पंडितोंके शब्द नहीं, और न योद्धा-ओंके शस्त्र हैं। तुम्हारी भक्ति ही मेरा वक्तृत्व और वही मेरा शस्त्र है।'

ऋषिकुमारने दयार्द्र अन्तःकरणसे सागरका जीवन उसे लौटा दिया। फिरसे मरुभूमिकी जगह कई पुरुष गहरा पानी नृत्य करने लगा।

अगस्ति तपस्या करनेके लिये वनमें चल दिया।

वैभव-सम्पन्न हुई पृथ्वीकी ओर देखकर, बीच-बीचमें सागरके मनमें उसका वैभव हरण करनेका मोह उत्पन्न होता है। अपने पराभवको भूलकर वह जल्दी जल्दी आगे बढ़ने लगता है।

उसका अतिक्रमण ध्यानमें आते ही किनारेके वृक्ष-लताएँ और बालुकाकण उच्च स्वरसे गर्जकर कहते हैं, —'सागर, अगस्ति आया! सागर, अगस्ति आया!'

सागरका मुँह तत्काल सूख जाता है, उसकी महत्त्वाकांक्षाका ज्वार लुप्त होकर, व
उतरने लगता है, और जितने वेगसे आगे बढ़ा हुआ होता है, उतने ही वेग
वह पीछे हटता है!

२

पृथ्वी

मनुष्यको लगने लगा कि जिस पृथ्वीपर मैं रह रहा हूँ, वह बिलकुल क्षुद्र है।

उसने पर्वतकी ओर देखा। उसका वह ऊँचा ऊँचा शिखर! जैसे आकाशके तारोंको बटोरनेके लिये पर्वतके द्वारा ऊपर उठाया हुआ हाथ ही हो!

पृथ्वीकी ओर तुच्छ दृष्टिसे देखता हुआ मनुष्य पर्वतपर चढ़ने लगा।

पत्थरोंकी ठोकरें लगीं, पैरोंमें काँटे चुभे। परंतु वह ऊपर और ऊपर चढ़ा ही जा रहा था।

हाँफते हुए वह पर्वतके शिखरपर पहुँच गया। चढ़नेसे पहले उसे लगा था, जैसे हरसिंगारके पेड़को हिला देनेसे फूल झड़ते हैं, उसी तरह शिखरसे आकाशको हिलाकर मैं तारोंको नीचे गिरा लूँगा! परंतु अब उसे भिन्न ही अनुभव हुआ। आकाश अब भी पहले इतना ही दूर था। तारे आँखें मिचकाकर उसकी हँसी उड़ा रहे थे।

वह भूखसे व्याकुल हो गया। वह पर्वतका शिखर किसी सूख गये पेड़की तरह लगा उसे।

उसने सामने देखा।

समुद्रकी तरंगें 'फुगड़ी'[१] खेलनेवाली लड़कियोंकी तरह दीख रही थीं।

१ महाराष्ट्रकी लड़कियोंका एक खेल।

उसने नीचे देखा।

ऊबड़ खाबड़ काली पृथ्वी फटे-पुराने कंबलकी तरह दीख रही थी।

उसने फिर सामने देखा।

समुद्रका नील पृष्ठ-भाग किसी कालीनकी तरह प्रतीत हो रहा था। कालीनपर कढ़े हुए वे नन्हे फूल – वह लहरोंका फेन है, यह उसे सच ही न लगता था।

वह दौड़ता हुआ ही पर्वतसे उतरकर नीचे आया। पृथ्वीकी ओर फूटी आँखसे भी न देखकर, वह समुद्रकी दिशामें दौड़ने लगा।

दौड़ते हुए वह मनमें कह रहा था, – 'तारे न मिले तो न सही। मुझे समुद्रके रत्न प्राप्त होनेमें क्या कठिनाई है?'

वह किनारेपर पहुँचा। तब उसका गला सूख गया था।

प्याससे व्याकुल हुए उस जीवने समुद्रके पानीको मुँह लगाया ही था – वह खारा हो गया!

जैसा आया था वैसा ही वह पृथ्वीकी ओर लौटा।

सड़कके किनारे एक छोटा-सा कूआँ था। उसका पानी उसने पीया। उस कूएँके पास ही एक आमका पेड़ था। उसके नीचे वह बैठ गया। उसकी छायासे उसे विलक्षण आनंद हुआ। इसी समय उस पेड़से एक पका हुआ आम नीचे गिरा। उसे चूसते चूसते उसके मनमें आया – आकाशके सारे तारों और समुद्रके सारे रत्नोंका मूल्य इस क्षुद्र पृथ्वीके एक छोटे-से टुकड़ेके बराबर भी नहीं है।

● ● ●

३

सुधारक !

दुम-कटा हुआ गीदड़ बोला,– ' भाइयों और बहनों, मैं इस मतका हूँ कि पहले करो और फिर कहो । दुमके कारण ही मनुष्यकी अपेक्षा गीदड़का दर्ज़ा कम माना गया है । मनुष्यका क्या अर्थ है ? बिना दुमका बंदर ! साथ ही साथ यह बात भी नहीं कि सृष्टिके द्वारा दी गयी हरएक वस्तु प्राणीके कामकी होगी ही । मनुष्योंमें नरको देखो । उनके चेहरोंपर दाढ़ी और मूँछोंका जंगल रात-दिन बढ़ता रहता है । परंतु वह उसे साफ़ काटकर अपना सुधार कर रहा है । इसलिये इस श्रृगाल सभाको मेरी यह विनम्र सूचना है कि हम सब मिलकर एक दिन ' लांगूल-उच्चाटन ' दिन मनावें और उस दिन दुम काटनेका सुधार अमलमें लावें । भाइयों, क्रांति तुम्हें पुकार रही है । उठो, जागो ! '

सब गीदड़ अपने बूढ़े नेताकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगे थे । दुम-कटे गीदड़की बात उन्हें सच्च लगने लगी थी ।

बूढ़ा गीदड़ उठा और हुवा हुवाके स्वरमें बोला – ' आजके विद्वान वक्ताने जो बात कही है, उसका मैं लांगूलपूर्वक समर्थन करता हूँ । '

दुम-कटा गीदड़ बीचहीमें चिल्ला उठा, – ' सुनो ! सुनो ! '

बूढ़ा नेता आगे कहने लगा, – ' दुम-काटनेके बाद यदि उसकी फिर इच्छा

हुई, तो फिरसे उसे उगानेका उपाय भी अब निकल आया है। एक वैज्ञानिकने हालहीमें एक ऐसी खोज़ भी की है —'

दुम-कटे गीदड़ने जल्दी जल्दी पूछा – 'उस वैज्ञानिकका नाम क्या है?'

बूढ़ेने जैसे प्रश्नको न समझा हो, कोई जवाब न दिया।

वह दुम-कटा गीदड़ एकदम उठकर चिल्लाया, – 'अजी दादाजी, मुझे उस खोज़ लगानेवालेके पतेकी ज़रूरत है!'

एकदम प्रचंड हुवा हुवाका शोर मच गया। उसे सुनते ही दुम-कटे गीदड़को अपनी भूल ध्यानमें आ गयी। परंतु अब उसका क्या उपयोग था? उसकी क्रांतिकी कलई सब गीदड़ोंके सामने खुल चुकी थी!

●●●

४

नाटकशाला

नंदनिकेतके विधुर कविने ‘ हृदयदेवीके लिये ’ नामका गीत लिखा। उसके सुरीले कंठसे उस गीतके बाहर निकलते हुए चित्रकारको इतना अवर्णनीय आनंद हुआ – उसके कानोंमें पड़नेवाले नादमधुर शब्दोंका क्षण क्षणमें रसमधुर रंगोंमें रूपान्तर होने लगा। घर पहुँचते ही उसने ‘ हृदयदेवी ’का चित्र खींचना आरंभ कर दिया।

कविके नये काव्यकी कीर्ति राजातक पहुँची। उसे लगा, यदि यह सिद्ध हो गया कि इस सुंदर काव्यकी स्फूर्ति-देवी हमारी नाटकशाला ही है, तो अपनी निंदा करनेवालोंकी हालत ‘ मियाँकी जूती मियाँहीके सिर ’ जैसी हो जायेगी।

महाराजने कविको बुलवा भेजा और बड़े सम्मानपूर्वक उसे आसनपर बैठाया। कविने ‘ हृदयदेवीके लिये ’ गीत गाकर सुनाया।

‘ क्या ही सुंदर गीत है! ’ – महाराज बोले।

कविने स्मित-पूर्वक इस प्रशंसाको स्वीकार किया। सूक्ष्म दृष्टिको इस स्मितमें उपहासकी छटा दिखायी दिये बिना न रही।

‘ यह गीत कैसे सूझा आपको, कविराज? ’

‘ मेरी स्वर्गीय पत्नीकी स्मृति ही मेरी स्फूर्ति देवी है। ’

'छिः !' राजाने कहा, 'जीवित काव्यकी निर्मितिके लिये स्फूर्ति देवी भी सजीव होनी चाहिए !'

कविको भ्रम हुआ कि परदेकी ओरसे राजा मेरे चरित्रपर ही कीचड़ उछल रहा है। वह क्रोधसे बोला, –'महाराज, कवि इतना धनी नहीं होता कि वह अपने यहाँ एक नाटकशाला रखे।'

'आज न हो, तो वह कल हो जायेगा।'–महाराज महलकी अपनी नाटकशाला-के तैलचित्रकी ओर देखते हुए बोले, 'कविराज, इस चित्रसे ही यह कविता सूझी है आपको !'

कविने नकारदर्शक गर्दन हिलायी।

'कविराज, आपको राजकवि बनानेका मेरा विचार है। परंतु —'

नाटकशालाके चित्रकी ओर तुच्छतासे देखता हुआ कवि बोला, –'आगेके शब्द सुननेसे पहले ही यहाँसे चल देना उचित होगा !'

कवि वहाँसे चल दिया – पर कहाँ ?

कारागारकी अँधेरी कोठरीमें !

• • •

कविको अँधेरी कोठरीमें कैद कर देनेका समाचार चित्रकारको मालूम हुआ। उसका हृदय काँप उठा, परंतु चित्रको अधूरा छोड़नेकी उसकी हिम्मत न हुई ! खिल रही कलीका खिलना क्या बीचहीमें रुक जायेगा ? चित्रकारके हृदयमें कलाका आनंद और राजाका भय इन दोनोंका द्वंद्व निरंतर चल रहा था। परंतु अन्तमें चित्र पूरा हो गया। उसके चित्रके रंग कविके मीठे शब्दोंको थे, परंतु उसमेंका रूप उसकी प्रियतम पत्नीका था।

इस चित्रको देखकर शिल्पकार इतना प्रसन्न हुआ कि उसकी प्रतिमाने उस चित्रका अमर पाषाणमें रूपान्तर करनेका निश्चय किया।

'हृदयदेवी' चित्रकी कीर्ति राजातक पहुँची। चित्रकारको बुलाया गया। पिछले सब प्रश्न दोहराये गये। चित्रकार किसी भी तरहसे यह स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं होता था कि उसके चित्रकी स्फूर्त्ति राजाकी नाटकशाला है। उसे क्षणार्धमें यह अनुभव हो गया कि राजमहल एक दूसरा कारागार ही है !

• • •

इस समाचारको सुनते ही शिल्पकारके हाथकी हथौडी छूटकर नीचे गिर पड़ी।

जन्मका सत्यानास करनेवाली ऐसी मूर्त्तिको बनानेकी अपेक्षा – परंतु आगे उससे विचार ही करते न बना। कंठसे निकली हुई तान क्या होंठोंसे दबायी जा सकती है ?

उसने कलाकी उन्मादमें हथौड़ी उठायी। उसका मन कह रहा था – 'प्रौढ़ और विधुर कविने कितना कलाप्रेम दिखाया ! तरुण और विवाहित चित्रकार कलाकी पवित्रताके लिये हँसते हुए अँधेरी कोठरीमें चला गया ! फिर मुझ जैसा तरुण अविवाहित कलाकार यदि पीछे हट जाये, तो क्या यह कायरता न होगी ?'

भावी पत्नीकी मूर्त्तिका चिंतन करते हुए उसने मूर्त्तिका काम पूरा किया। राजाका निमंत्रण, दोनोंके प्रश्नोत्तर और कलाकारको अँधेरी कोठरीमें कैद करना – यह तीन अंकका शोकान्त नाटक राजमहलमें पहले जैसा ही खेला गया।

● ● ●

नंदनिकेतके तीन सूर्य तीन अँधेरी कोठरियोंमें जा पड़े।

आकाशके तारोंकी ओर घंटों उत्कंठित दृष्टिसे देखते रहनेवाला कवि ! कोठरीमें लटक रहे मकड़ीके जालोंका निरीक्षण करते-करते वह ऊब उठा। सूर्यास्तके विविध रंगोंको देखनेकी अभ्यस्त चित्रकारकी दृष्टि ! कोठरीके अँधेरेमें पड़नेवाली छोटी-सी परावर्तित किरणपर उसे क्रोध आने लगा। ऊबड़-खाबड़ पत्थरसे सुंदर मूर्त्ति बनानेका शिल्पकारका अभ्यस्त हाथ ! अँधेरी कोठरीकी निर्जीव दीवालोंका स्पर्श होते ही वह चौंककर पीछे हट जाता।

कोठरियोंकी दीवालोंमें एक एक झरोखा था। उन झरोखोंमेंसे तीनोंने विचार-विनिमय किया। क्या जीवन-भर अँधेरी कोठरीमें ही सड़ते पड़े रहेंगे ? छिः ! फिर हमारी कला किस कामकी ? कस्तूरीको क्या कोई जमीनमें गाड़कर रखता है ? राजा कहता है, उसको स्वीकार कर लें और —

● ● ●

दरबारके मध्यभागमें महाराज विराजमान हुए थे।

'पूजाके समय देवता लज्जित नहीं हुआ करते।' – महाराज अपनी प्रेयसीकी ओर देखकर धीरेसे बोले। परंतु उसकी गर्दन ऊपर न उठी। सच तो यही है कि मनुष्यका हाथ दूर हुए बिना लाजवंतीके पौधेको स्वतंत्रता नहीं मालूम होती।

कवि उसके सामने आकर खड़ा हो गया और बोला, – 'देवी, 'हृदयदेवीके लिये' कविता लिखनेकी स्फूर्ति आपका और महाराजका प्रेम देखकर ही मुझे हुई। मैं यह हृदयंगम काव्य आपको समर्पित करता हूँ।'

उसकी गर्दन और भी अधिक नीचे हो गयी। जैसे वह अपने गलेकी मालाके मोती ही गिन रही हो।

चित्रकार आगे बढ़कर बोला, – 'देवीजी! 'हृदयदेवी' चित्र बनानेकी कल्पना मुझे आपके और महाराजके अलौकिक प्रेमको देखकर ही सूझी। वह सुंदर चित्र मैं आपको ही अर्पण करता हूँ।'

परंतु नाटकशालाने अपनी दृष्टि ऊपर नहीं उठाई। दर्शकोंको भ्रम हुआ कि वह अपने सालूकी किनार देखनेमें खो गयी है।

शिल्पकार आगे बढ़ा और बोला, – 'देवी, आपके हृदयमें महाराजाके प्रति जो प्रीति है, वही मेरी 'हृदयदेवी' मूर्ति है! वह कलाकृति मैं आपको समर्पण करता हूँ।'

नाटकशालाकी दृष्टि सालूसे पैरोंकी ओर मुड़ी। पैरोंके सुवर्णके कड़ोंपर उसे अभिमान होता होगा।

कवि, चित्रकार और शिल्पकारको दिये जानेवाले पुरस्कारोंको लेकर खानगी कर्मचारी आगे बढ़े। तीनों कलाकार अभिमानसे सभाकी ओर देखने लगे।

नाटकशाला एकदम उठकर खड़ी हो गयी। उसने गर्दन ऊपर उठाकर देखा। दर्शकोंको भ्रम हुआ जैसे बिजली चमकी हो।

बिजलीके बाद पर्जन्यधाराएँ भी आयेंगी ही!

महाराजने उन अश्रुओंकी ओर अभिमान-पूर्वक कटाक्ष फेंका। दर्शकोंने काना-फूसी की, – 'इस अलौकिक सम्मानके कारण उसकी आँखोंसे आनंदाश्रु बह रहे हैं।'

आँसुओंको पोंछनेका थोड़ा भी प्रयत्न न करते हुए वह नाटकशाला धीर-गंभीर स्वरमें बोली, – 'महाराज मेरे रूपसे प्रेम करते हैं; और – और मेरी प्रीति उनके वैभवसे है!'

कवि, चित्रकार और शिल्पकार तीनोंने एकदम नीचे गर्दनें झुका लीं।

प्रत्येकका हृदय कह रहा था, —

'सच्ची कलाकार यही है!'

● ● ●

५

प्रवासी !

एक पत्थरपर पेटसे पैर चिपकाकर वह सोया हुआ था !

अनंतकालका प्रवासी था वह ।

सुबहकी ठंडी हवासे अंग सिहरते ही वह उठा । रात-भर यात्रा करनेका निश्चय करके भी मुझे बीचहीमें नींद कैसे आ गयी, इसका उसे आश्चर्य हुआ ।

वह झट-से उठा और —

वह शिथिलतासे धीरे धीरे चलने लगा । उसके नंगे पैर काले-से हुए रक्तसे भर गये थे । चलते हुए कँकड़ लगते, तो उसके पैरोंका एक एक कण विलक्षण वेदनासे विव्हल हो जाता था ।

ऊबकर वह एक शिलापर बैठ गया । उसने सहज-भावसे पीछे मुड़कर देखा । वह भाग कितना सुंदर दीख रहा था । कुहरेमें दीखनेवाले वृक्षोंकी हँस रही चोटियाँ – माँके आँचलकी ओरसे देखनेवाले बालककी तरह लगीं वे उसे !

उसने आगे देखा । कुहरेके उसपार कुछ भी नहीं दीख रहा था । इस कल्पनासे कि अज्ञानका भयंकर सागर मेरे सामने फैला हुआ है, वह चकरा गया ।

इस इरादेसे कि जहाँसे आया था, वहीं लौट जाऊँ, उसने अपना मुँह भी घुमा लिया !

इसी समय एकदम धूप निकली । कुहरा जल्दी जल्दी साफ़ होने लगा । उसे लगा । कोई मेरी आँखोंपर लगी पट्टीको खोल रहा है ।

जिस रास्तेसे चलकर आया था उसकी ओर उसने देखा। कुछ समयके पहले उसे जिन वृक्षोंकी चोटियाँ दिखी थीं, वे एक भयंकर अरण्यके वृक्ष थे। पैरोंको खूनाखून कर देनेवाले काँटे उस अरण्यमें ही चुभे थे। उस प्रवासके स्मरणसे उसके रोंगटे खड़े हो गये।

उसने अपने पैरोंके तले और आसपास देखा। पत्थर, कँकड़, शिला – परंतु काँटे कहीं भी न थे। बाहरकी सृष्टिकी तरह उसकी दृष्टिमें भी प्रकाश चमकने लगा।

उसने फिर आगे देखा। कुछ समयके पहले कुहरेमें छिपा हुआ सारा भाग अब स्पष्टसे दीखने लगा था। सुन्दर बाग़ – उसमें थिरक थिरककर नाचनेवाले फव्वारे – उन फव्वारोंको आशीर्वाद देनेवाला देवालयका कलश – बाग़में नृत्य करनेवाले बालकोंकी धुँधली आकृतियाँ —

वह उस दिशामें भागा। उसकी आँखोंमें नाचनेवाले आनंदसे किसीको भी विश्वास न होता कि चलते-चलते उसके पैर छलनी हो गये हैं।

● ● ●

६

मोतियोंकी फसल

गोताखोरोंने वरुण देवतासे प्रार्थना की, – ' हे देव, आप मृग और मघाकी भरपूर वर्षा देते हैं। फिर लंबेसे मोतियोंकी तरह दीखनेवाले सुंदर चावल तैयार होते हैं। आप हस्तमें भी बहुत वर्षा देते हैं। तब गोल मोतियोंके दानोंकी तरह दीखनेवाली सुन्दर ज्वार तैयार होती है। परंतु क्या चावल और क्या ज्वार, – दोनों एक-से ही क्षणभंगुर हैं !

' मोतीका पानी बरसों टिकता है ! देव, इस वर्ष केवल स्वातिकी वर्षा दीजिये। खूब मोतियोंकी फसल आने दीजिये। ग़रीबोंके लड़कोंके कानोंमें मोतियोंकी बालियाँ लटकने दीजिये। उसकी स्त्रियोंके हाथोंमें मोतियोंके कंगन शोभायमान होने दीजिये। मंदिरोंके हर द्वारपर मोतियोंके परदे लहराने दीजिये। '

वरुणके पेटमें प्रवेश करनेके लिये गोताखोरोंको किसीके सिखानेकी ज़रूरत नहीं होती !

और वरुणादेवका हृदय क्या जानबूझकर द्रवित करना पड़ता है ?

भक्तकी प्रार्थनाको देवने आनंदसे स्वीकार कर लिया।

• • •

वर्षा ऋतु आयी। लोग मृगकी अत्यन्त उत्कंठासे प्रतीक्षा कर रहे थे। परंतु मृगकी आहट उन्हें कहीं भी सुनायी नहीं पड़ती थी।

बीचके सारे नक्षत्र भी सूखे निकल गये। लोगोंके मुँहका ही पानी नहीं, बल्कि पृथ्वीके पेटका पानी भी सूख गया। तृणाँकुरोंके साथ आशाँकुर भी दग्ध होने लगे।

मघा आया।

लोगोंकी आँखोंमें प्राण खड़े हो गये।

मघा जैसा आया, वैसा चला गया।

लोगोंकी आँखोंके प्राण तड़पने लगे।

आशाने कहा, –' हस्तनक्षत्रमें पानी अवश्य ही बरसेगा। क्या, उसे यों ही हाथीका पानी कहते हैं ? '

मूसलधारकी तो बात ही छोड़िये, परंतु छिंगुनी इतनी धार भी हस्तमें न गिरी। हाथी दूर रहा, खरगोश भी नहीं दिखा ! लोगोंने व्याकुल दृष्टिसे आकाश-की ओर देखा।

लेकिन बछड़ा कितना भी रंभाता रहे, परंतु छूटी गाय उसे दूध कहाँसे देगी ?

स्वातिमें अवश्य वर्ष-भरकी वर्षा एकदम हो गयी !

● ● ●

समुद्रकी सीपियाँ हास्यपूर्वक उन झड़ियोंका स्वागत कर रही थीं।

सब गोताखोर भी उन झड़ियोंसे ' आओ आओ ' कह रहे थे।

पर कृषक् बेचारे रो रहे थे, व्यापारी कुढ़ रहे थे, दुनिया गश खाकर गिर रही थी !

● ● ●

गोताखोर पानीके साथ नाचते हुए आये।

मोतियोंकी इतनी सीपियाँ उन्हें सारे जीवनमें न मिली थीं।

श्रम और आनंदसे वे सोये। उनके साथी सीपियोंसे मोती निकलनेका काम कर रहे थे। उन्होंने जागकर देखा, तो सामने ऊँचे ऊँचे ढेर लगे हुए हैं ! एकको लगा, चावलोंका ढेर होगा वह। दूसरेने सोचा, ज्वारकी ढेरी होगी ! उन्होंने अपनी आँखोंपरसे हाथ फेरा। हरएकने अपने बदनमें चिकोटी काटकर देखा। कोई भी स्वप्न नहीं देख रहा था।

उनके सामने फैली हुई सारी ढेरियाँ मोतियोंकी थीं। उन राशियोंको देखकर वे अपनी भूख और प्यास भूल गये।

परंतु भूखका स्थान ब्रह्मानंदसे भी बहुत समयतक पूरा नहीं हो सकता। थोड़ी देरके बाद हरएक तड़पने लगा। हरएकके पेटमें चूहे दौड़ने लगे थे! साथमें जो पाथेय लाये थे, वह कभीका समाप्त हो चुका था!

मोतियोंसे भरे हुए टोकने सिरपर उठाकर वे बस्तीकी दिशामें दौड़ने लगे।

दूरसे एक झोपड़ी दिखायी दी। इस आशासे कि अब हमें खानेको मिलेगा, हरएक तेज़ीसे चलने लगा।

• • •

उस कृषक्के द्वारमें एक गाय ज़ोर ज़ोरसे रंभाती हुई एक निश्चेष्ट बछियाको चाट रही थी।

गृहिणी उसकी गर्दनपर अपनी गर्दन रखकर उसे संतोष दे रही थी।

झोपड़ीके द्वारमें दो-चार बच्चे जिनकी पसली पसली गिनी जा सकती थी, खड़े हुए इस दृश्यको देखकर चकरा गये थे।

पहले गोताखोरने पूछा, – 'क्या हो गया है बछियाको?'

'भूखसे मर गयी है।'

'भूखसे?' – एकने प्रश्न किया।

'क्या, चारा नहीं खाती थी!' – दूसरेने पूछा।

'चारा?' – हताश स्वरमें उसने कहा। क्षण-भर ठहरकर सिसकियोंके बीच वह बोली, – 'कहाँसे लाऊँ मैं चारा?'

यह साफ दीख रहा था कि वह स्त्री बहुत ग़रीब है। अपने टोकनेसे मुट्ठीभर मोती हाथमें लेकर गोताखोरोंका मुखिया आगे बढ़ा। उसके पास जाकर मुट्ठी खोलता हुआ वह बोला, – 'मामूली चारेकी क्या ज़रूरत? यह मोतियोंका चारा ले।'

उन मोतियोंको देखकर वह स्त्री मोहमें पड़ गयी। मृत बछियाको वह भूल गयी। उन मोतियोंके पानीके आगे उसे किसी भी तरह गायके आँसुओंका पानी नहीं दीखता था।

उन मोतियोंको लेनेके लिये उसने हाथ फैलाया। इसी समय वह गोताखोर बोला, – 'हमें तुम क्या दोगी?'

उन सबकी आँखोंमें कोई विलक्षण अतृप्ति नाच रही थी!

उसे कोई अप्रस्तुत शंका आयी। वह क्रोधसे चिल्ला उठी, – ‘ चले जाओ यहाँसे, जाओ। ’

गोताखोरोंके अगुआको अपनी भूल समझमें आ गयी। उसके आगे मोतियोंको बढ़ाता हुआ वह बोला, – ‘ हम सब तुम्हारे भाई हैं। भैयादूजकी भेंटमें हम तुम्हें ये मोती देनेवाले हैं ! ’

उसने डरते-डरते उन मोतियोंको हाथ लगाया। उनमेंके चार-पाँच वह उठा ही रही थी तभी वह अगुआ बोला, – ‘ भाइयोंको भोजन परोसे बगैर बहनको भेंट नहीं मिलती। ’

वह चौंककर पीछे हट गयी। किसी पागलकी तरह शून्य दृष्टिसे देखती हुई वह चीख़ पड़ी– ‘ चलो, रास्ता नापो यहाँसे। एक ही रोटी तो बची है मेरे घर। वह मेरे बच्चोंके लिये है ! ’

● ● ●

गोताखोर लोग वहाँसे चल दिये। वे एक गाँवमें आये; घर घर घूमे। परंतु मुट्ठी-भर मोती लेकर भी रोटी देनेवाला मनुष्य उन्हें न मिला।

सर्वत्र एक ही दृश्य दीख रहा था —

अस्थिपंजर हुए मनुष्य !

और भूखसे व्याकुल हुए उन मनुष्योंकी निस्तेज आँखें !

झोपड़ियोंमें, घरोंमें, मंदिरोंमें सुखकी सारी वस्तुएँ वर्तमान थीं। सिर्फ़ एक ही वस्तु न थी — अन्न !

चल चलकर गोताखोरोंके पैर गल गये थे ! मुँह फूल गये थे। सिरपर रखे मोतियोंके भार भी अब उन्हें असह्य हो गये थे !

● ● ●

एक मंदिरमें भगवानकी मूर्तिके आगे हाथ जोड़कर बैठे हुए सन्यासीसे उन्होंने पूछा, – ‘ संसारका सारा अन्न कहाँ चला गया ? ’

‘ अन्न आया ही नहीं, फिर जायेगा कहाँ ? ’

‘ आया ही नहीं ? ’

‘ कहाँसे आयेगा ? मृगमें पानी नहीं गिरा, मघाकी वर्षा नहीं हुई, हस्त भी बिना पानी बरसाये निकल गया। सिर्फ़ स्वातिकी वर्षा हुई। वह वर्षा पेटके लिये किस कामकी ? उससे सिर्फ़ मोतियोंकी फसल आती हैं। ’

उनके सिरपर रखे हुए टोकनोंकी ओर देखकर सन्यासी बोला, – 'अन्न लेकर आये हो तुम शायद? लाओ, कम-से-कम थोड़ासा तो दे दो हमें। रोटीका बासा-जूठा कैसा भी टुकड़ा दो।'

सन्यासी उनके पैर पकड़ने लगा।

सब गोताखोर पागलकी तरह दौड़ते हुए समुद्रकी तरफ़ भागे। मोतियोंसे भरे उन सारे टोकनोंको उन्होंने समुद्रमें डुबा दिया। एक भी मोती उन्होंने बाहर न रखा।

सबने हाथ जोड़कर वरुणदेवकी प्रार्थना की, – 'हे देव, मृगकी वर्षा होने दे। मघाका पानी बरसने दे, हस्तकी वर्षा गिरने दे। स्वातिकी वर्षा न हो, तब भी काम चल जायेगा।

● ● ●

७

फूल और पत्थर

एक बार फूलोंको लगा – हम जब भी देखो तब पत्थरों की पूजा करे, यह क्या कोई न्यायकी बात हुई ?

वे रूठ गये।

निसर्गने उनसे कहा, – ' यदि तुम्हें पत्थरोंकी पूजा करना स्वीकार न हो तो पत्थर तुम्हारी पूजा करेंगे। परंतु पूजाके बिना दुनिया न चल सकेगी। '

फूलोंने यह बात प्रसन्नतासे मान ली।

जैसे जैसे एक एक ऊबड़-खाबड़ पत्थर सुकुमार फूलपर गिरने लगा, वैसे वैसे वह फूल गिंजने लगा।

सारे फूल निसर्गसे बोले, – ' हमें इस सम्मानकी ज़रूरत नहीं। पूजा करा लेनेकी अपेक्षा उसे करनेमें ही अधिक सुख है। '

●●●

८

रागिनीका राग !

पृथ्वीपर्यटन समाप्त करके नारदमुनीने सत्यलोकसे कलामंदिरमें प्रवेश किया। उसकी मुद्रापर खिला हुआ हास्य देखकर ब्रह्माजीको प्रसन्नता हुई। हाँ, ये हज़रत दुनियाभरके नटखट। पृथ्वीपर यदि थोड़ा भी दोष दिखायी देता, तो नारदके हाथकी वीणाके तार ही नहीं, बल्कि उनकी चोटी भी उसका पूरा संगीत वर्णन करती रहती !

'नारद, क्या हाल है पृथ्वीका ?' – ब्रह्माजीने प्रश्न किया।

'ठीक है। आनंद ही आनंद है। पर —'

'क्यों, थोड़ा 'पर' है ही क्या? इस पृथ्वीके लिये जानबूझकर सुंदर चंद्र-सूर्य मैंने बनाये —'

'उन्हींने तो सारा घोटाला कर डाला है, महाराज !'

ब्रह्माजी आश्चर्य हो नारदकी ओर देखने लगे।

गंभीर मुद्रासे नारदजी बोले, – 'सूर्य अपना काम बिलकुल नियमित रूपसे करता है। उसके प्रकाशके विषयमें प्रश्न ही नहीं है। परंतु जब वह सिरपर आ जाता है, तो बेचारी पृथ्वी पूर्णतया भुन जाती है।'

'और चन्द्र ?'

'उसका प्रकाश अत्यंत रम्य है। परंतु शामको हज़रत अपने स्थानपर रहेंगे ही, यह कौन कह सकता है?'

ब्रह्माजी सोचमें पड़ गये।

इसी समय गीतके मधुर स्वर कानोंमें पड़ने लगे। बात-की-बातमें मेघमाला-ओंसे वातावरण छा गयी। कलामंदिरका प्रकाश बिलकुल धुँधला हो गया।

'यह कौन नया गंधर्व है?'—नारदने प्रश्न किया।

'मेघ।'

मेघका संगीत बंद हो गया।

तुरंत ही दूसरे कोमल स्वर सुनायी पड़ने लगे। दीपमालाओंसे वातावरण भर गया। कलामंदिरका प्रकाश अधिकाधिक तेजस्वी हो चला।

'यह कौन गा रहा है?'—नारदने विस्मय-पूर्वक पूछा।

'दीपिका गा रही है।'

'दीपिका? यह कौन चीज़ है, भई?'

'कुछ समयके पहले जो गंधर्व गा रहा था, उसकी यह पत्नी है। तुम्हारे पृथ्वी-पर्यटनको चले जानेके बाद मैंने यह जोड़ी उत्पन्न की।'

नारद आगे कुछ पूछ ही रहे थे तभी ब्रह्माजी प्रसन्न स्मित करके ध्यानस्थ होने लगे।

नारदने प्रश्न किया,—'देवराज, कुछ समय पहले मैंने पृथ्वीके दुखोंको कहा—'

'वे लुप्त भी हो गये।'

नारदने ब्रह्माजीकी ओर विस्मित दृष्टिसे देखा।

'कब?'

'अभी।'

'किस तरह?'

'वह तुम्हीं जाकर देख लो।'

• • •

मुनिराज फिर पृथ्वीलोकपर आये।

ऐन दो पहर हो गयी। परछाइयाँ अंग चुराकर छिपकर बैठ गयीं। हवाको ज्वर चढ़ा। भूमि मूर्छित पड़ी-सी दीखने लगी।

इसी समय सारा वातावरण मधुर सुरोंसे भर गया। क्षणार्धमें मेघमालाएँ तैरने

लगीं। हर जगह शीतल छाया फैल गयी। नारदने चट पहचान लिया कि वे स्वर किसके हैं। मेघ गा रहा था।

सायंकाल हुई। चन्द्रका कहीं पता ही न था। पृथ्वी अंधकारमें डूबने लगी। इस डूबती हुई पृथ्वीकी छटपटाहटके कारण उड़े हुए जलबिंदु आकाशमें बीच बीचमें दीख पड़ते। परंतु उनके कारण आसपासका भयानक अँधेरा द्विगुणित ही हो जाता।

गीतके मधुर स्वर सुनाई पड़ने लगे। वर्षामें हर वृक्षोंमें जिस प्रकार जुगनू चमकते हैं, उसी प्रकार चारों ओर दीपकोंका नृत्य शुरू हो गया। अँधकारके समुद्रसे बाहर निकले हुए तेजस्वी रत्न ही थे वे! नारदने पहचान लिया कि ये सुर किसके हैं। गंधर्व-पत्नी दीपिका गा रही थी।

सारी रात नारदकी आँखसे-आँख न लगी। ब्रह्माजी यदि पृथ्वीका समाचार पूछेंगे, तो क्या कहूँगा? क्या कह दूँ कि सर्वत्र आनंद ही आनंद है? छिः! आधी रातको एक विलक्षण कल्पना सूझी उन्हें, तब कहीं मुनिमहाशयकी आँख लगी।

● ● ●

'नारद, क्या समाचार है पृथ्वीका?'

'ठीक है। आनंद ही आनंद है। पर —'

'तुम्हारा 'पर' अभी है ही? परंतु मेघके संगीतसे पथ्वीको छाया मिलने लगी। सायंकालको दीपिकाके संगीतसे अँधेरा प्रकाशित होने लगा। फिर —'

'पहले बार ऐसा हुआ ज़रूर! पर —'

'पर क्या?'

'आजकल दो पहरको दीपक जलाकर सूर्यकी उष्णतामें भराव पड़ने लगा है।'

'और सायंकालको?'

'सायंकालको मेघ छा जाते हैं जिससे अँधेरा और भी अधिक भयानक लगने लगता है!'

'ऐसा विपरीत कैसे हो गया?'

'भगवान जाने! मेरी अपेक्षा आप ही अधिक जानेंगे इसे।' — हँसते-हँसते ब्रह्माजीको उत्तर देकर नारदजी कला-मंदिरसे चल दिये।

● ● ●

'दीपिका, तू दो पहरको क्यों गाने लगी? पृथ्वीपर भेजते समय तुझसे मैंने जताकर कह दिया था कि तेरे गानेका समय सायंकाल है।'—ब्रह्माजीने क्रोध-कंपित स्वरमें प्रश्न किया।

समीप ही खड़े हुए मेघकी ओर अकड़कर देखती हुई दीपिकाने उत्तर दिया,—'ये ही सिर्फ़ दो पहरको क्यों गावें?'

'मतलब?'

'क्या, पति-पत्नीके अधिकार समान नहीं होने चाहिए? ये तो ऐन दो पहरको गाकर लोकप्रिय होंगे और मैं सायंकालको—सायंकालको ऊँघने लगते हैं सब लोग! ऐसे समय कौन ध्यान देगा मेरे गानेपर?'

ब्रह्माजीके क्रोधका रूपान्तर हास्यमें हो गया! वे हँसते हँसते बोले,—'दीपिका, यह कुछ तेरा ज्ञान नहीं है! लगता है, कोई गुरु मिल गया है तुझे!'

अभीतक मेघ मौनव्रत धारण किये हुए खड़ा था। वह एकदम बोला,—'यह सब नारदमुनिकी अक्ल है, महाराज! इसने दोपहरको गानेका हठ पकड़ा। फिर मैं भी चिढ़ गया। और जानबूझकर ही सायंकालको गाने लगा।'

'खूब!'—गर्दन हिलाते हुए ब्रह्माजी बोले।

थोड़ी देर विचार करके वे दीपिकासे बोले,—'दीपिका, कलाकी दृष्टिसे तुम्हारे गानेके लिये सायंकालका समय ही उचित नहीं क्या? दोपहरके सूर्यप्रकाशके आगे तेरा प्रकाश फीका नहीं पड़ जायेगा क्या?'

'परंतु मेरा समान अधिकार—'

'क्या चाहती हो तुम?'

'इसका नाम मेघ और मेरा नाम दीपिका। नारदमुनि कह रहे थे कि मेरे नाममें ही कुछ ऐसा है जो मुझे नीचे दिखा रहा है! अन्तका यह 'का'—प्रत्यय या व्यत्यय क्या कहते हैं इसे!—भगवान शंकरके आगे इसे सिद्ध करनेके लिये तैयार हैं वे।'

'तो उस नीचे दिखानेवाले प्रत्ययको ही यदि हम निकाल दें, तब तो तुम्हारा क्रोध जाता रहेगा न?'

दीपिका और मेघ दोनों दिल खोलकर हँसे।

• • •

'क्यों नारद, पृथ्वीपर सब ठीक ठाक है न?'

'ठीक है। आनंद ही आनंद है। पर —'

नारदका 'पर' कानोंमें पड़ते ही ब्रह्माजी हँसने लगे।

नारद बोले, –'देवाधिदेव, इस तरह हँसिए नहीं। पृथ्वीपर एक अजीब ही अनर्थ आरंभ हो गया है अब!'

'कौनसा?'

'स्त्रियाँ पुरुषों जैसा नाम धारण करने लगी हैं। वह गंधर्व-पत्नी दीपिका अपनेको 'दीप' कहलवा रही है!'

'कहलवाने दो बेचारीको!'

'वाह! स्त्री पुरुषका नाम ले? छिः। यह रागिनीका राग हो गया न?'

'हो जाने दो! उसके सुर उचित समयपर निकलें कि हो गया!'

●●●

१

यंत्रकर्मा

देवेन्द्र महाराज नंदनवनमें शिलातलपर सचिन्त बैठे हुए थे। जिस नंदनवनमें विहार करनेका भाग्य प्राप्त करनेके लिये पृथ्वीतलके मानवी प्राणी जन्मभर हाथ-पाँव पटका करते हैं, उसी नंदनवनके स्वामी कहलानेवाले देवराजका हृदय अत्यंत अस्वस्थ हो गया था। आज अप्सराओंका संगीत उन्हें कर्णकटु लग रहा था; उन्हें आभास हो रहा था कि हरसिंगारकी सुगंधके बदले, उनपर जैसे अग्निकण ही बरस रहे हैं। कल्पवृक्षके वनमें बैठे हुए भी, उनके मनको असंतोषके बिच्छू डंक मार रहे थे। रंभा अथवा उर्वशीके द्वारा लाकर दिये गये अमृतके प्यालेको दूर फेंक देनेके कारण, मन प्रसन्न करनेके लिये गाना सुनाने आये हुए चित्ररथ गंधर्वके तंबूरेको उसीकी पीठपर मारकर उसे रोते हुए वापस भेज देनेके कारण, सारे दास-दासियोंमें सन्नाटा खिंच गया था – वे बिलकुल घबड़ा गयी थीं। उनमें यह कानाफूसी शुरू हो गयी कि कहीं वृत्रकी तरह विलक्षण शत्रू पृथ्वीतलपर फिरसे तो पैदा नहीं हो गया है, अथवा कहीं लक्ष्मणके द्वारा प्राचीन कालमें मारे गये इंद्रजितके, फिरसे जीवित हो जानेका, समाचार तो नहीं आ गया है !

देवेन्द्रकी आँखें किसीके आगमनकी ओर लगी हुई थीं। ‘अभीतक मदन नहीं आया ?’ – उन्होंने क्रोधसे पूछा।

'नहीं, महाराज।' – दूरसे मंजुल स्वरमें उत्तर आया।

'अच्छा, कम-से-कम विश्वकर्मा?'

'जी, अभीतक कोई भी नहीं आया है।'

'गये होंगे कहीं मटरगश्ती करने!' देवेन्द्रने मन-ही-मन अपने आपसे कहा, 'इस मदनको तो दूसरोंके झमेलोंके मारे फुरसत ही नहीं मिलती। आज इस ऋषिका मन किसी राजकन्यापरसे जायेगा, तो कल अमुक रानीके मनमें किसी भिखारीके विषयमें प्रेम उत्पन्न कर देगा।'

'देवेन्द्रकी जय हो!' – शब्दोंके कानोंमें पड़ते ही इन्द्रका विचारयंत्र रुक गया। वह तुरंत मुड़कर बोले, – 'इच्छासे विजय नहीं मिला करती। उसके लिये पराक्रम ही चाहिए!'

'संसारमें वज्रकी अपेक्षा अधिक पराक्रमी शस्त्र और कौनसा है?' – विश्वकर्माने पूछा।

'पुष्प।' – देवेंद्रनें उत्तर दिया।

'पुष्प? इस पुष्पबाणके आपकी सेवामें उपस्थित होते हुए किसकी माँ जनी है, जो आपके वज्रका अपमान करे?' – मदनने प्रश्न किया।

'अहंकार ही मनुष्यका सबसे बड़ा शत्रु होता है। मदन, तुम्हें अपने पुष्पबाणके अजेय होनेका बड़ा अहंकार है। परंतु पृथ्वीके पुष्पराजाने तुम्हें कभीका पराजित कर दिया है!'

'मुझे? पराजित कर दिया है? सहस्रों वर्षोंसे तपस्या करनेवाले विश्वामित्रको एक पलमें कुत्ता बनाकर मेनकाके चरणोंको चाटनेके लिये बाध्य कर देनेवाला मैं, इस पुष्पराजाको एक पलमें कबूतर बनाकर किसी अप्सराके आसपास नचवा दूँगा!'

'रंगमहलमें बैठे हुए रणभूमिकी बातें करना बेकार हैं। क्यों विश्वकर्मन्, ठीक कह रहा हूँ न?'

व्यवहारकुशल विश्वकर्मा यह अच्छी तरहसे जानता था कि राजाओंकी धुनके अनुसार यदि गर्दन न हिलाई, तो उसको खो देनेका मौक़ा आ जाता है! मदनके क्रोध और प्रेमकी परवाह न कर उसने इन्द्रकी बातका समर्थन किया।

मदन क्रोधसे बोला, – 'देवराज, क्या आप इस मदनके आजतकके कामोंको भूल गये हैं? क्या, आपको स्मरण नहीं है कि मैंने अपने फूलोंके बाणोंसे कितनी ही बार आपके मार्गको निष्कंटक किया है? इन्द्रपद प्राप्त करनेके लिये कोई

कितनी भी उग्र तपस्या आरंभ करता, फिर भी सूर्यकिरणोंसे बर्फ़के पहाड़ जिस तरह पिघल जाते हैं, उस तरह इस मदनके सिर्फ़ नेत्रकटाक्षने उसकी अचल तपस्याको धूलमें मिला दिया है। वेदमंत्रोंमें अहोरात्र रममाण होनेवाले होंठोंको तरुणीके अधरामृतके लिये उत्कंठित कौन करता आया है? मैं ही न? बाहुबलके जोरपर त्रिभुवनको जीतनेवाले राजाओंको आजतक यह कौन महसूस कराता आया है कि उनके बाहुओंका सार्थक रमणीको आलिंगन किये रहनेमें ही है? मैं ही न? पातिव्रत्यके तेजसे सूर्यको चकाचौंध कर देनेवाली सतीके मनमें परपुरुषके विषयकी इच्छा उत्पन्न करके, देवोंकी इज्ज़तकी रक्षा किसने की है? मैंने ही न?'

'मदन, तुम्हारा कर्तृत्व यदि तुम्हारे वक्तृत्व सरीखा ही हो जाये तो क्या ही आनंद होगा! पर —'

'पर क्या? महाराज, कैसा भी पराक्रमी पुरुष आप मेरे सामने ले आइये। जयमालाके बदले रमणीका करपाश ही गलेमें पड़े – यही इच्छा करनेके लिये मैं उसे मज़बूर कर दूँगा।'

'कसौटीका समय नज़दीक ही है। आज कम-से-कम उस पुष्पराजाके राज्यमें तो तुम्हारी एक कौड़ीकी भी कीमत नहीं है। रानीसे भी अधिक रूपवती अपनी दासीकी ओर भी यह राजा कुदृष्टिसे नहीं देखता। वेश्याका व्यवसाय करने-वाली एक भी स्त्री उसके समूचे राज्यमें नहीं है —'

'क्या कह रहे हैं, महाराज! एक भी वेश्या नहीं है? यह हो ही नहीं सकता! सभी स्त्रियाँ वेश्याएँ होंगी; इसलिये कोई किसीको वेश्या नहीं कहता होगा। गदहोंकी भाषामें 'गदहा' शब्दका 'मूर्ख' अर्थमें प्रयोग नहीं होता – उसी सरीखा यह प्रकार है।'

'सचमुच एक भी वेश्या नहीं है। वायुदेव जासूसकी तरह घर घर घूमकर उस राजका कोना कोना छान आया है।'

'यह तो बड़े आश्चर्यकी बात हैं कि एक भी वेश्या नहीं! क्या, इस राज्यके सारे लोग दस-पन्द्रह वर्षसे अधिक बड़े होते ही नहीं हैं? पुष्पराजाके राज्यमें क्या दवाके लिये भी वेश्या नहीं?'

'नहीं। बिलकुल नहीं। वेश्या न होनेका मुख्य कारण यही है कि उस राज्यमें सब जातिकी छोटी-बड़ी स्त्रियोंको भरपूर काम मिलता है! सुखसे पेट भर जानेपर, पापकी राहकी ओर मुड़नेके लिये पाँव झिझकते हैं!'

'यह राजा इतने काम ले कहाँसे आया ?' – विश्वकर्माने प्रश्न पूछा।

'सुनते हैं उसने यंत्रोंको सम्पूर्ण रूपसे बहिष्कृत कर दिया है। थालीमें भोजन करनेसे पत्तल बनानेवालोंका धंधा चौपट हो जाता है। इसलिये वह स्वयं पत्तलपर भोजन किया करता है। दरवाज़ेमें ताला लगाया जाये; तो प्रहरीका पेट मारा जाता है। इसलिये उसने कानून बनाकर ही तालोंको अपने राज्यसे देशनिकाला दे दिया है! पृथ्वीके अन्य भागोंमें घड़ियाँ काममें लायी जाने लगी हैं, पर यह राजा घटिकापात्रपर ही अपनी गुज़र चला रहा है। खेतोंको जोतने और कपड़ोंको बुननेके यंत्र अगर आ गये, तो लोग भूखों मरने लगते हैं, ऐसा उसका मत है। बेकार लोगोंके पेटकी आगसे ही क्रांतिका दावानल उत्पन्न होता है और उसमें राजाके सिंहासन और प्राणोंकी आहुति पड़ती है। ऐसा प्रसंग उसपर और उसके वंशजोंपर न आवे इसलिये दूरदर्शितासे उसने यंत्रोंको सम्पूर्ण रूपसे बहिष्कृत कर दिया है। ये सब बातें मुझसे नारदमुनिने कहीं हैं।'

'बिलकुल पागल ही मालूम होता है!' – विश्वकर्माने कहा, 'इस पागलको यह पता ही नहीं कि कम खर्च और कम समयमें लोगोंसे अधिकसे अधिक काम करा लेनेको सुधार कहते हैं। यदि यंत्रका उपयोग न किया जाय तो मनुष्य और पशुमें फ़र्क़ ही क्या रह जाता है?'

'इतना ही कि यंत्रोंको काममें न लानेवाला मनुष्य देव बनना चाहता है।' – देवेन्द्रने कहा।

'देव?' - विश्वकर्मा और मदन दोनों आश्चर्यसे चिल्ला पड़े, 'पत्तलपर खाने-वाला यह बम्मन राजा देव बनेगा? तब तो कल एक काश्तकार भी इन्द्रपदपर आकर बैठ जायेगा! छिपकली यदि ज़ोरसे चुकचुका दे, तो कोई उसे नाग नहीं मान लेता।'

'देव होनेका प्रश्न सामर्थ्यका नहीं, पुण्यका है। इस राजाके राज्यमें व्यभिचार नहीं, कलह नहीं, कुछ नहीं है। इसके कारण उस पुण्यसागरमें लगातार ज्वार ही आ रहा है। मुझे डर लगने लगा है कि इस ज्वारमें कहीं मेरा सिंहासन तो नहीं बह जायेगा?'

'सिंहको चिउँटीका डर लगता है, क्या, कोई इसे सच मान लेगा? इस पुष्पराजाके पुण्यका मैं चुटकीमें क्षय कर दूँगा।' – मदनने कहा।

'यह पुष्पराज अकेला कितना भी तपस्या करे, इससे मैं नहीं डरता। परंतु

उसके राज्यमें सारी प्रजा पुण्यवान हो गयी है; और प्रजाके पाप-पुण्यका अंश राजाको प्राप्त होनेके कारण उसका पुण्यचंद्रमा पौर्णिमा हो गया है।'

'इस पौर्णिमाकी अमावस्या होनेमें पूरे पन्द्रह दिन भी नहीं लगेंगे। एक रम्य उद्यान, बसंतवायुकी एक लहरी, एक रूपवती परस्त्री और मेरा एक बाण—इतनी सामग्री काफ़ी है इस लड़ाईको जीतनेके लिये!'

'मदन, जितनी गरमीसे माखनका गोला पिघल जाता है उतनेसे लोहेके टुकड़ेको ज़रासा धक्का भी नहीं पहुँच सकता। तेरी यह सामग्री साधारण मनुष्यपर विजय प्राप्त करनेके लिये ठीक है; परंतु—'

'सुंदर दासीकी ओर भी बुरी नज़रसे न देखनेवाले राजाके विषयमें मदनको विजय प्राप्त होना जरा मुश्किल ही मालूम होता है। मुझे लगता है मेरी नयी नयी चीज़ोंका जादू ही उसपर जल्द काम करेगा।'—विश्वकर्मा बोला।

'स्त्रीका सौन्दर्य, सुंदर काव्यकी तरह, हर क्षणको नयी दीखनेवाली वस्तु है। इसलिये मदनको भी यश प्राप्त होनेकी संभावना है। दोनों ही उसके राज्यमें जाओ। विश्वकर्माकी सुंदर बाह्यसृष्टि और मदनकी मोहक अंतःसृष्टिकी कैचीमें पुष्पराजके पुण्यकी धज्जियाँ उड़े बिना न रहेंगी'

• • •

'कामशर्मा, तुम सच्चे कवि हो।'—पुष्पराज प्रसन्न होकर बोले, 'तुम्हारे काव्यमें नादमधुरता निर्झरकी तरह, अर्थगांभीर्य गंगौघकी तरह, और कल्पनाभंडार रत्नाकरकी तरह है।'

'पर कुछ भी हो, काव्य आख़िर काव्य ही है!'—कामशर्मा नाम धारण किया हुआ मदन बोला,—'सचकी मिठास नक़लमें नहीं मिलती। अमृतपर लिखी कविता पढ़कर क्या किसीको अमृत पीनेका मज़ा आयेगा?'

'नहीं आयेगा, यह सच है। परंतु काव्य स्वप्नकी तरह होता है। चूँकि स्वप्नका आनंद जाग्रतावस्थामें नहीं मिलता, इसलिये कोई दुख करता नहीं बैठता। ओसकी बूँदोंकी माला बनाकर गलेमें नहीं पहनी जा सकती, इंद्रधनुष्यके रंगोंमें तूलिका डुबाकर चित्र नहीं रंगे जा सकते अथवा फूलोंकी सुगंधको एकत्रित कर इत्रकी तरह कुप्पियाँ तैयार नहीं की जा सकतीं। तो क्या, इसलिये इन सुंदर वस्तुओंसे प्राप्त होनेवाले आनंदको किसीने कम माना है?'

'महाराजकी बातें काव्यमय हैं, इसमें संदेह नहीं। परंतु काव्यकी सच्ची

मिठास उसके प्रत्यक्ष अनुभवमें ही होती है। काव्यमें सुंदर स्त्रीका वर्णन पढ़ना अलग है और उसका प्रत्यक्ष सहवास --'

'कामशर्मा, लोग कहते हैं कि कवि पागल हुआ करते हैं। तुम्हारी इन बातोंसे लोगोंका यह कथन मुझे सच लगने लगा है। काव्य मनुष्यके मनका खाद्य है; शरीरका नहीं। फिर शारीरिक बातोंसे इसका संबंध जोडना क्या भगवानकी पत्थरकी मूर्त्तिका सुपारी फोड़नेके काममें उपयोग करनेकी तरह नहीं है?'

'आपके नौकरकी पत्नी सचमुच अप्सराकी तरह है।'

'और इसी लिये उसपर यह काव्य रचनेकी तुम्हें स्फूर्ति हुई।'

'यह काव्य जब महाराजको इतना पसंद आया, तो प्रत्यक्ष वह प्राप्त हो जानेपर —'

'कामशर्मा, तुम्हें यदि हमारे दरबारमें रहना है, तो इस तरह अनाप-सनाप बिलकुल न बको।'

'कोमल शब्दावलीसे लहलहे सुंदर अधर, सुंदर अर्थसे प्रिय आलिंगन —'

'बस करो अपने इस वाहियातपनको। काव्यका कमल पापके कीचड़से पैदा होता होगा, तो मुझे उस कमलकी कोई आवश्यकता ही नहीं।'

'महाराज, मेरी समझमें यही नहीं आता कि समुद्रमें डूबकर आपको सूखा रहना कैसे अच्छा लगता है। परस्त्रीपर बुरी नज़र रखना दूसरोंके लिये पाप होगा, परंतु राजाके लिये वह उन्हें दिया गया सम्मान ही कहना चाहिए!'

'तुम्हारे मुँह लगनेसे कोई लाभ नहीं। कल तुम यह भी सलाह देने लगोगे कि प्रजाको भूखों रखकर, राजाको बढिया भोजन करना चाहिए। इसे न भूलो कि राजा भोगके लिये जन्म नहीं लेता, उसका जन्म त्यागके लिये होता है। मेरे राज्यमें हरएकको जिसतरह काम करके पेटभर अन्न खानेको मिल रहा है, उसी तरह सुन्दर स्त्रियोंको अपना शील बनाये रखकर सुखसे गृहस्थी चलाते आती है। राजाकी तरह प्रजा हुआ करती है। मैं ही यदि अपना शील छोड़ दूँ —'

'उसीका यह सबूत है शायद?' – रानी रसवंती क्रोधसे हाथ-पाँव पटकती हुई वहाँ आयी और एक चित्र राजाके सामने बढ़ाकर बोली।

'अरी पगली,! सुन्दर चित्र भी क्या तुझे बरदाश्त नहीं होता?'

'आपकी मीठी बातोंसे बाज़ आयी! उन्हें छोड़िये! जिव्हापर मधु और मनमें

हलाहलका भंडार ! शायद यह दिखानेके लिये ही कि आप मुझसे प्रेम करते हैं, आपने किसी चुड़ैलके इस चित्रको अपने सिरहानेके नीचे छिपा रखा था ? '

रानीका क्रोध देखकर मदनके मनमें गुदगुदी हो रही थी। उसका अनुमान था कि रानीके मनमें पैदा हुई यह ईर्षाग्नि राजाकी पौरुषीय लापरवाहीसे भड़कती ही जायेगी।

' सिर्फ़ कलाके एक नमूनेकी हैसियतसे कामशर्मा द्वारा दिये गये इस चित्रको मैंने सिरहाने रख लिया था ' – पुष्पराजाने कहा।

' कला ! यह तो कोई खासी पैंसठवीं कला दीख रही है ! मुझपरसे शायद अब आपका मन उतर गया होगा। '

' इसमें मनसे उतरने और न उतरनेका क्या सवाल है ? आकाशके चंद्रमाको यदि उत्सुकतासे देख लिया, तो क्या कोई घरके अक्षय दीपको बुझा देता है ? '

' मैं सब जान गयी हूँ। मैं उनमेंसे नहीं हूँ, कि आ गयी सौत तो बैठूँ रोती हुई। '

राजासाहब ताड़ गये कि रानीके निर्मल मनमें मत्सरने विष घोल दिया है। वे पक्की तरहसे जानते थे कि रानीके मनका यह संशय अरण्यके दावानलकी तरह यदि भड़कता गया, तो मेरे प्रति प्रजाका जो प्रेम है, वह खाकमें मिल जायेगा। उसके मनका संदेह दूर करनेके लिये उन्होंने उस चित्रको हाथमें लिया और एक शब्द भी उच्चारण न कर उसको फाड़कर टुकडे टुकडे कर दिया।

रानीके मनमें क्रोध और मत्सर पैदा करनेका मदनका प्रयत्न इस तरह निष्फल हो गया। राजदरबारके कितने ही तरुण और तरुणियोंके सामने उसने स्वच्छंद प्रेमकी प्रशस्तियाँ गायीं। परंतु ' यथा राजा तथा प्रजा ' सभीका आद्य सूत्र होनेके कारण, उसकी दाल बिलकुल ही न गलती थी। बड़े बड़े मुनियोंको कामातुर करनेवाले अपने धनुष्यको पुष्पराजाके दरबारमें मामूली मनुष्योंके सामने नम्र होना पड़ रहा है, यह देखकर उसे लज्जा आयी। परंतु पुष्पराजाकी राज-व्यवस्था ऐसी थी, कि पेटके लिये किसीको पाप न करना पड़े। किसी तरुणके मनमें किसी वृद्ध सरदारकी पत्नीके बारेमें अभिलाषा उत्पन्न करनेका कामशर्मा प्रयत्न करता, तो वह तरुण कहता, – ' यदि उस स्त्रीका पति मेरी पत्नीके बारेमें कोई बुरी बात सोचेगा, तो वह मुझे बिलकुल पसंद न होगी। फिर मैं भी वही पाप क्यों करूँ ? अपनी माँकी अपेक्षा दूसरी अधिक सुन्दर स्त्री दीख गयी, तो उसे क्या हम माँ

कहने लगेंगे ? स्वयं अपनी माँको त्यागकर, उस स्त्रीकी सेवा करने हम दौड़ पड़ेंगे क्या ? जिस तरह दुनियामें माँ एक होती है, उसी तरह पत्नी भी एक ही। जैसा स्वधर्म, उसी तरह स्वपत्नी।'

बेचारा कामशर्मा इस उत्तरपर क्या जवाब देगा ? कभी मौक़ा गाँठकर वह सुंदर तरुणियोंसे मिलता, और वैभव और विलासके रसभीने वर्णन करके उनके मनमें हलचल पैदा करनेकी कोशिश करता। वह कहता, 'तुम्हारा रूप देखकर स्वर्गकी अप्सराएँ लज्जासे सिर झुका लेंगी। परंतु तुम्हारा यह सौन्दर्य किस कामका ? इसका तुम्हें कोई उपयोग है क्या ? दुनिया एक बाज़ार है। इसमें अपने मालके लिये जो अधिक कीमत दे, उसीके साथ सादा करना लाभदायक होता है।'

उसके इस निर्लज्जतासे भरे तत्त्वज्ञानको उन तरुणियोंकी तरफ़से मिलनेवाला नक़द उत्तर भी बड़ा मार्मिक होता। प्रत्येक तरुणी कहती, –'मेरे रूपका क्या कम उपयोग है ? शामको जब 'वे' थके-माँदे घर लाटते हैं, तो मुझे देखकर ही अपने श्रम भूल जाते हैं न ? बीमारीमें जब मैं उनके पास बैठ जाती हूँ, तब मेरी ओर टकटकी लगाकर देखनेमें ही उन्हें आनंद आता है न ? अपना इकलौता बेटा कुरूप है, इसलिये माँ क्या उसे कभी त्याग देती है ? जैसा भगवान, वैसा ही पति।'

मदन अपनी सहायताके लिये बसंतको ले आया था। लोगोंने बसंती चाँदनीका मज़ा लूटा, तरुणोंने नये नये प्रकारके पुष्पोंकी मालाएँ अपनी प्रिय पत्नियोंको अर्पण कीं, रमण-रमणियोंने कोयलके आलाप श्रवण किये और निश्चय किया कि वे परस्परके संभाषणके बराबर प्रिय नहीं हैं। मदनके आशानुसार किसीके भी मनमें पापका विचार उत्पन्न न हुआ। फिर प्रत्यक्ष हाथसे पाप होनेकी बात तो दूर ही रही। मदन ऊब उठा और उसने विश्वकर्माको 'यंत्रकर्मा' नाम देकर दरबारमें महाराजके सामने उपस्थित किया और उनसे उसका परिचय करा दिया।

'यंत्रकर्मा'के यंत्र शब्दसे पुष्पराजका मन उसके विषयमें प्रतिकूल ही हुआ। लेकिन उसकी मीठी बोली और नयी नयी कल्पनाएँ सुनकर, महाराजने उसे अपनी सेवामें रख लिया। उसके नामपरसे दरबारमें सहज ही यंत्रकी चर्चा छिड़ गयी। महाराज बोले, –'यंत्र कोई नयी चीज़ नहीं है। पहलेके पुराणोंमें जिन्हें राक्षस कहते थे, वे यंत्र ही थे। उनके शरीर भारी भरकम, काम करनेकी शक्ति बहुत बड़ी; परंतु उनमें न दया और न प्रेम। जहाँ हृदय ही नहीं, वहाँ दया और प्रेम कहाँसे

होगा? पहलेके राक्षस मनुष्योंको खा जाते थे; ये यंत्ररूपी राक्षस उन्हें भूखों मार डालते हैं!'

यंत्रकर्मासे यंत्रोंकी यह निंदा कैसे बरदाश्त होती? वह बड़े आवेशसे बोला,– 'महाराज, दो टूक बात कह रहा हूँ। क्षमा कीजिए। आप यंत्रके विरुद्ध बातें कर रहे हैं। परंतु हमारा सारा शरीर ही एक यंत्र है, यह आप भूल रहे हैं। यह सारी चराचर सृष्टि भी एक जगत् व्यापी यंत्र ही नहीं है क्या? फिर, चूँकि यंत्र नहीं चाहिए इसलिये क्या दुनियाके सारे लोगोंकी हत्या करके अंतमें आत्म-हत्या करेंगे?'

'यंत्रकर्मन्, तुमने बात तो बड़ी चतुराईकी कही है। परंतु वह मुझे नहीं जँचती। यदि ईश्वरकी यह इच्छा होती कि जगके सब काम यंत्रोंके ज़रिये हों, तो उसने पशुपक्षियोंकी तरह यंत्र पैदा होते रहनेकी ही व्यवस्था कर दी होती।'

'यानी ईश्वरने जो जो बातें सृष्टिमें निर्मित नहीं की हैं उन सबको त्याज्य ही समझा जाय क्या? महाराज, आपको काव्य पसंद है या नहीं?'

'मैं तो काव्यका बड़ा रसिक हूँ। ईश्वरने सारी सृष्टि ही काव्यमय कर रखी है। सूर्य और चन्द्र ईश्वरकी दो आँखें हैं। पहलीसे सत्यकी किरणें बाहर निकलती हैं और दूसरीसे सौन्दर्यकी किरणोंकी वर्षा होती है। वर्षाकालमें चमकनेवाली बिजली परमेश्वरीय स्फूर्तिकी प्रतिमा ही है। फूलोंमें अपना हृदय, आकाशमें अपना वर्ण, सागरमें अपनी वाणी– इस तरह बँटवारा करके परमेश्वरने यह सृष्टिकाव्य निर्मित किया है।'

'चूँकि सृष्टि काव्यमय है इसलिये आप मनुष्योंके द्वारा निर्मित काव्यको बड़ी रुचिके साथ पढ़नेको तैयार हो जाते हैं। फिर यदि मैं यह सिद्ध कर दूँ कि सृष्टि यंत्रमय है, तो आप मनुष्योंके द्वारा निर्मित यंत्रोंकी ओर अपनत्वकी दृष्टिसे देखेंगे क्या?'

'अवश्य।'

'तो सुनिये महाराज, जिसे आप काव्यमय सृष्टि कहकर प्रेमसे अपने हृदयसे लगाते हैं, वही सृष्टि यंत्रमय है। वर्षाका गिरना, और उस वर्षाकी भाप बनकर फिरसे उसका मेघमें रूपान्तर हो जाना– सृष्टिका यह चक्र क्या एक बड़ा यंत्र ही नहीं है? पृथ्वी अपनी कीलपर और सूर्यके आसपास नियमपूर्वक घूमती रहती है। तब यदि इसे यंत्र न कहा जाय, तो क्या कहेंगे?'

'तुम्हारी बातें विचारणीय हैं। पर —'

'पर क्या, महाराज?'

'यंत्रके कारण मनुष्यता कम हो जाती है। मनुष्य जब बीमार होता है तब उसकी माँ या पत्नी उसके बदनपर हाथ फेरकर उसे दवा पिलाती है। कल यदि बदनपर हाथ फेरनेवाला और दवा पिलानेवाला यंत्र निकल गया, तो क्या उसे वही आनंद मिलेगा?'

यंत्रकर्मा थोड़ा असमंजसमें पड़ गया और वह बहस यहींपर बंद हो गयी।

थोड़े ही दिनोंके बाद रानी रसवंती बीमार पड़ी। राज्यके सारे धनवंतरी और अश्विनीकुमार आ चुके। परंतु किसीकी भी दवासे फ़ायदा न होता था और रानीकी छातीकी वेदना कम नहीं होती थी। वेदनाओंसे व्याकुल होकर रानी जब ढोरकी तरह चिल्लाने लगती, तो पुष्पराज छोटे बालककी तरह रोने लगते थे। ऐसे अवसरपर रुदन करनेके अतिरिक्त मनुष्यको और क्या चारा रहता हैं? एक वृक्षपर बिजली गिरते समय दूसरा वृक्ष किस प्रकार उसकी रक्षा कर सकेगा? राजासाहब घंटों रानीके बिस्तरके पास बैठे रहते। वह अपनी गरदन उनके कंधेपर रख देती तो वे एक मूर्त्तिकी तरह स्तब्ध बैठे रहते जिससे कि अपनी हलचलसे रानीको कोई कष्ट न हो। परंतु दैवको उनपर दया न आयी।

सारे धनवंतरियोंने निदान किया। उन्होंने राजासाहबसे कहा कि दवासे रोग दूर होनेके लिये कम-से-कम एक वर्ष लगेगा।

एक वर्ष! राजासाहबकी जैसे कमर ही टूट गयी। रानीकी बेदनाको देखकर उसकी बीमारीका एक एक पल पहले ही उन्हें एक एक युगकी तरह लगता था। दुख और वेदनाओंमें अपनी प्यारी रसवंती और एक वर्ष काटे? वे कहने लगे कि मेरा सारा राज्य जाता रहे, फिर भी परवाह नहीं, परंतु रानीका रोग तुरंत दूर होना चाहिए।

इस स्थितिमें यंत्रकर्मा एक यंत्र लेकर आया। उसका मत था कि इस यंत्रकी मददसे रोग चार घड़ीके भीतर अच्छा किया जा सकेगा। राजासाहबका मन द्विधा हुआ। आजतक सब प्रकारके यंत्रोंको उन्होंने विषके तुल्य त्याज्य माना था। यंत्रके हाथमें अपनी गर्दन पकड़ा देना चाहिए यानी स्वयं अपनी आत्माको पिशाचको बेच देने सरीखा है — यह विचार भी उनके मनमें आया। परंतु मनमें यह सोचकर कि रानीके स्वास्थ्यके आगे यंत्रविषयक मेरी प्रतिज्ञाका कोई मूल्य नहीं

और यंत्रकर्माको यह वचन देकर कि यदि उस यंत्रसे फ़ायदा हुआ तो उसे अपने देवघरमें रखकर उसकी पूजा करूँगा, राजासाहब यंत्रक्रियाकी प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकतासे करने लगे।

यंत्रने अपना काम सफलतापूर्वक कर दिया। रसवंतीका स्वास्थ्य तेज़ीसे सुधरने लगा। यंत्रके द्वारा एक क्षणमें किये गये कामकी राजासाहब वैद्योंके कामसे तुलना करने लगे। कहाँ एक वर्ष और कहा एक घंटा! जागरण नहीं, पथ्य नहीं, कोई गड़बड़ी नहीं, कुछ नहीं। उनके मनमें आया—सचमुच यंत्र कितना उपयुक्त होता है! सूर्य ईश्वरका यंत्र ही है। उसके प्रकाशसे जो काम होता है, वह हज़ारों दीये जलाकर कभी भी हो सकता था क्या? वर्षा भी ईश्वरका यंत्र ही है। हज़ारों कूएँ खोद दें, पर उनका पानी क्या वर्षाके पानीकी बराबरी कभी कर सकेगा?

राजासाहबकी मनोवृत्तिमें परिवर्तन हो गया। उन्हें लगने लगा कि कम-से-कम कुछ बातोंके लिये यंत्रोंसे काम लेना ग़लत न होगा। रानी हालहीमें बीमारीसे उठी थी और वह नाना प्रकारकी चीज़ें माँगने लगी थी। उन सब वस्तुओंको उसे देना बड़े खर्चकी बात थी। इतना बड़ा खर्च उठानेके लिये चालू खर्चमें कहीं कटोत्री करना अत्यन्त आवश्यक था। इस विषयमें यंत्रकर्माकी राय लेनेका उन्होंने निश्चय किया। यंत्रकर्माके महलमें आते ही पुष्पराज बोले,—'यंत्रकर्मन् तुमसे यह कहनेमें मुझे बड़ी खुशी होती है कि यंत्रके विषयके मेरे पहले मत अब बदल गये हैं।'

'यह सुनकर मुझे भी बहुत आनंद होता है, महाराज!'

'इस तरहके और भी कुछ यंत्र होंगे ही तुम्हारे पास?'

'जी हाँ, हर किस्मके यंत्र हैं। महाराजकी पाकशालामें सौ-दोसौ मुस्तंडे व्यर्थ ही ऊधम मचाया करते हैं। जब परोसने आते हैं तो उनके मुँहमें तमाकूकी फँकी इतनी ठूँसी रहती है कि खानेवालेको यह शक होता है कि हमपर ही पीक थूकनेका तो उनका इरादा नहीं है कहीं! उनके त्राससे यदि महाराजा मुक्त होना चाहते हों, तो रसोई बनाने और परोसनेका जो यंत्र मैंने हालहीमें तैयार किया है उसे लाकर महाराजको दिखाऊँ।'

'शाबाश, इसे कहते हैं मस्तिष्क!'

'राजमहलमें एक चिड़िया भी न रहे, फिर भी महाराजका सब काम यंत्रोंके

ज़रिये चल सकेगा। झाड़ने-बुहारनेका यंत्र, दीपक जलानेका यंत्र, बिस्तर बिछानेका यंत्र — आदि सभी प्रकारके यंत्र मैंने बनाये हैं, महाराज!'

'तो यही कहो न, कि प्रेम करनेके यंत्रको छोड़कर, जिसे तुम अभीतक नहीं बना सके होगे, बाकी सब प्रकारके यंत्र तुम्हारे पास तैयार हैं!'

'महाराजके चरणोंके आशीर्वादसे वह भी शीघ्र ही तैयार हो जायेगा, ऐसी आशा है!'

रानीके बहुत रोकनेपर भी राजमहलके रसोइए, परसोइए, नौकर-चाकर, दास-दासियाँ — सबको नौकरीसे निकाल दिया गया। मनुष्योंसे भरे हुए उस राजमहलमें श्मशानकी भीषण शान्ति फैल गयी। रानीको महलका पलंग चिताकी तरह लगने लगा। उसने नौकरों-चाकरोंको फिरसे वापस बुला लेनेके लिये कहा; परंतु बचत हो रहे रुपयोंका धुआँ अब राजाकी आँखोंपर पूर्ण रूपसे चढ़ने लगा था। उसे रानीकी आँखोंके आँसू दिखायी न दिये।

पाकशालापर किया गया प्रयोग सेनापर भी हुआ।

यंत्रकर्माने लड़नेवाले यंत्रोंको तैयार करके उन्हें राजाकी सेवाने भेट किया। झरिया और करछुल हाथोंमें लिये पेटके वास्ते इधर-उधर जूतियाँ चटकाते हुए भटकनेवाले रसोइयों और परसोइयोंकी तरह, तलवार हाथोंमें लिये सैनिक भी, गली गली घूमने लगे। जब वे दयनीय मुद्रासे करुण स्वरमें लोगोंसे कहते कि, 'हमें कुछ काम दीजिये — यंत्रोंने हमारे पेटपर पैर रख दिया है!' तो लोग उत्तर दिया करते, 'हम तुम्हें क्या काम देंगे, भई! हमें अपने स्त्री-बच्चोंके गले थोड़े ही कटवाने हैं!'

सेनाकी तरह क्लर्कोंकी फौज़पर भी वज्रपात हुआ। क्यों कि यंत्रकर्माने हिसाब करनेवाले और प्रतिलिपियाँ निकालनेवाले यंत्र खोज़ निकाले थे।

बेकार हुए क्लर्कोंके दलके दल सड़कों और गलियोंमें हाथ झुलाते हुए घूमते दीखने लगे। उन्हें कौन क्या काम देता? यदि वे दूसरोंसे कुछ काम देनेके लिये कहते, तो यह उत्तर देकर कि ग्यारसको शिवरात्रि क्या देगी, लोग उन्हें रुकसत कर देते।

यंत्रकर्माने हज़ारों यंत्रोंके ज़ोरपर पुष्पराजके अठारह कारखाने पूर्ण रूपसे निर्मनुष्य कर डाले।

कम खर्चमें सब काम होनेके कारण राजाको इतना आनंद हो रहा था कि उस

हर्षोन्मादमें उसे दूसरा कुछ सूझता ही न था। राजमहलमें, एकान्तमें बैठी आँसू बहाती हुई रसवंतीको भी वह भूल गया। यदि कभी भूलकर उसे रानीकी याद आ ही जाती, तो सुंदर स्त्रीकी मुस्कराहट दिखानेवाला यंत्र यंत्रकर्माने तैयार कर दिया था। उसे देखकर वह अपना संतोष कर लिया करता। यंत्रोंके शौक़में राजाको भी एक यंत्र-सा हुआ देखकर, रानी ऊब उठी और उस यंत्रपुरीको छोड़कर, मायके चल दी।

जिस दिन रानी गयी, उसी दिन यंत्रकर्मा भी, राजासे बिना पूछेपाछे, गायब हो गया।

दूसरे दिन राजाका सिर दर्द करने लगा। उसकी इच्छा हुई कि रसवंती आ कर उसे दबाये। इस विचारके मनमें आते ही उसे स्मरण हुआ कि यंत्रकर्माने सिर दबानेका यंत्र भी तयार कर रखा है। उसके इच्छा करते ही वह यंत्र आ कर उसका सिर दबाने लगा। लेकिन उस यंत्रका स्पर्श उसे बड़ा अजीब-सा—भूत-प्रेतोंके स्पर्श जैसा लगने लगा। यंत्र अपना कार्य व्यवस्थित रूपसे कर रहा था। परंतु राजाको उस दबाईसे आराम न मिला। उस दबाईमें रसवंतीकी आत्मा न थी।

उसका गला सूखा, इसलिये उसे शरबत पीनेकी इच्छा हुई। तुरंत ही दूसरे एक यंत्रने शरबतका गिलास आगे बढ़ा दिया। परंतु उस गिलासके शरबतसे राजाकी प्यास न बुझी। गिलास देते हुए कंगनोंकी मधुर आवाज़ कानोंमें न पड़ी; हाथको किसीका कोमल और शीतल स्पर्श न हुआ।

राजाको लगा—कोई आकर मेरे बदनपर हाथ फेरे। तीसरा यंत्र आकर हाथ फेरने लगा। कितना खुरदरा हाथ था वह। कहाँ रसवंतीका फूल जैसा हाथ और कहाँ यंत्रका काँटेदार हाथ?

राजाका दम घुट गया। 'रसवंती, रसवंती' चिल्लाता हुआ वह इधर-उधर दौड़ने लगा। परंतु रसवंती उसकी पुकारका कहाँसे उत्तर देती? पद-पदपर उसे यंत्र प्रणाम कर रहे थे, उसके लिये दरवाज़े खोल रहे थे, उसके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो रहे थे। यंत्रोंके इस त्राससे ऊबकर राजा महलके बाहर निकला। रास्तेपर एक परिंदा भी पर नहीं मार रहा था। प्रहरियोंके काम यंत्र कर रहे थे, बाग़में वृक्षोंको पानी देनेका काम, यंत्र कर रहे थे—जिधर देखो उधर यंत्र ही दीख रहे थे। पुष्पराज्यकी मनुष्योंसे कलकूजित उस राजधानीमें एक भी मनुष्य

नज़र नहीं आ रहा था। बेचारी प्रजा पेटकी फिक्रमें राजधानी छोड़कर, दूरके देशोंको चली गयी थी। राजाने ज़ोरसे पुकारा, – 'रसवंती रसवंती' उसकी पुकारका उत्तर कौन देता? उससे आकर कौन कहता कि रसवंती यहाँ नहीं है?

राजाकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। उन्हें पोंछनेके लिये एक भी यंत्र आगे नहीं बढ़ा।

●●●

१०

खोल

उस वादकका सितारपर अपनी निजी बेटीसे भी अधिक प्रेम था।

बेटीको चूमते समय उसे यह आभास होता कि मेरे आसपास चाँदनी फैली हुई है—उसकी तोतली बातें सुनते हुए उसके मनमें आता कि मैं नदी और सागरके संगमका संगीत सुन रहा हूँ —

परंतु सितारके तारोंका स्पर्श होते ही—उस स्पर्शके साथ निकलनेवाले अमृत-मधुर स्वरको सुनते ही—वह स्वयं अपने आपको ही भूल जाया करता।

उसके कमरेके सामने ही एक सुंदर गमलेमें एक गुलाबका पेड़ था। सितार-वादन आरंभ होते ही उसे यह आभास होता कि मेरे हाथमें सितार नहीं है, बल्कि एक सुंदर गुलाबका पेड़ है और वह पेड़ पल पलमें फूलोंकी राशियाँ उड़ेल रहा है।

एक दिन उसने सामनेके गमलेमें पुष्पवृक्षके बदले सूखे काँटोंका एक पेड़ खड़ा हुआ देखा। उसने पूछताछ की—गुलाबके पेड़में कीड़ा लग गया था।

उसके मनमें आया—मेरी सितारको भी यदि ऐसा कुछ हो जाये तो? धूलसे, हवासे, अथवा किसी और कारणसे —

सितारको सुरक्षित रखनेके लिये, एक खोलकी ज़रूरत है, यह बात उसे तुरंत जँच गयी।

उस सुंदर सितारको शोभा दे ऐसी एक बढ़िया खोल उसने सिलवा ली।

सितारके बोलोंमें उसे अप्सराओंके नृत्यका भ्रम होता था!

और खोलके रूपमें उसे नक्षत्रमंडित आकाशको देखनेका आनंद होता था!

वह मनमें कहा करता – 'आकाश और अप्सरा! कितना सुंदर संगम है यह!' सितारकी तरह खोलके बारेमें भी उसके हृदयमें एक प्रकारकी अपनत्वकी भावना उत्पन्न हो गयी।

इस अपनत्वके कारण ही एक दिन जब कि खोल किसी भी तरह सितारसे अलग नहीं होती थी, तब वह उसपर क्रोधित न हुआ। उसने हँसते हँसते पूछा —

'लगता है आज रानी रूठ गयी हैं?'

'हूँ!' इतना ही कठोर उद्गार उसके कानोंमें पड़ा।

उसके मनमें आया —

क्या खोल और क्या सितार? दोनों ही स्त्री-जातिकी ही हैं! दो स्त्रियाँ आनंदसे एक स्थानमें निभ जायें, यह संभव ही नहीं है!

वह खोलसे बोला, – 'लगता है आज सितारसे जमकर लड़ाई हुई है तुम्हारी?'

'हुँ!' फिर एक कठोर उद्गार उसके कानोंमें पड़ा।

घरका आजतकका उसका अनुभव यह था कि स्त्रियोंकी नाराज़गी ज़ेवरसे सरलतासे दूर की जा सकती है। उसने खोलसे कहा, – 'क्यों, और भी सुंदर सुंदर फूल पहनकर शान दिखानेकी सनक आयी है तुम्हें?'

'ऊँ हूँ!' पहलेकी अपेक्षा स्वरमें और भी अधिक कठोरता थी।

'फिर तुम चाहती क्या हो?'

'आप जब सितार बजाते हैं, तब सब लोग उसकी ओर देखते हैं – उसीकी तारीफ करते हैं। मेरी ओर कोई झाँककर भी नहीं देखता!'

वादकको मन-ही-मन हँसी आ रही थी। परंतु उसको उसने बड़े कष्टसे रोका। खोल गुस्सेके कारण आपेसे बाहर होकर बोली, 'अब जब भी आप सितार बजायेंगे, मैं उससे दूर नहीं होऊँगी जिससे कि सारे लोगोंकी नज़र मुझपर ही गड़ी रहेगी!'

खोलको दूर किये बिना सितार बजायें?

फिर तो शृंखला पहना हुआ कैदी सुंदर नृत्य करेगा – तहखानेमें बंद रखी हुई लता खिल जायेगी !

वादकने उसे समझानेका बहुत प्रयत्न किया, परंतु खोल किसी भी तरह अपना हठ नहीं छोड़ती थी।

वादक नाराज़ हो गया। उसके वादनका समय हो चुका था। उसने क्रोधसे खोलको खींचकर बाहर निकाला; खींचते हुए वह टर्रसे फट गयी। उसने गुस्सेसे उसे एक कोनेमें फेंक दिया।

सितारके तारोंको उसने स्पर्श किया ही था कि उनमेंसे इतने मधुर स्वर निकले ! वे स्वर कह रहे थे —

' बहुत अच्छा हुआ जो खोल फट गयी ! उसने मेरी पूरी तरहसे दम घोंट डाला था ! कभी स्वतंत्रतासे इधर-उधर देखना चाहती, तो जब देखो तब मेरे आसपास इसका परदा डटा रहता ! '.

● ● ●

सायंकालको आकाशके किसी गंधर्वने मेघ-मल्हार छेड़ा।

वर्षाका रमणीय दृश्य क्षण-भर चमक गया।

दूसरे गंधर्वने भूप छेड़ा।

पश्चिम दिशाके कुंजवनमें चित्रविचित्र फूल खिलने लगे।

तीसरेने दीप राग शुरू कर दिया।

एक क्षणमें दीपमालाएँ दीखने लगीं।

वादकका मन अननुभूत आनंदसे भर आया। उस आनंदको प्रकट करनेके लिये उसकी प्रतिभा नाचने लगी।

उसने अपने कमरेमें क़दम रखा।

एक कोनेमें फटी हुई खोल पड़ी थी – दूसरे कोनेमें उसकी बेटी खरगोशके बच्चेकी तरह छिपी हुई थी।

परंतु उसका ध्यान किसीकी ओर भी न गया। वह सीधा सितारके पास गया।

जंघापर सितार रखकर उसने उसके तारोंको स्पर्श किया ही था —

निष्प्राण देहको छूते ही चौंककर हाथ पीछे खींच लें, उस तरह उसने किया।

उसके पहले स्पर्शसे पुलकित होकर मधुर स्वर निकालनेवाली वह सितार गूंगी हो गयी थी ! उसके तार किसीने —

सामनेवाले कोनेसे एक बड़ी सिसकी उसके कानोंमें पड़ी।

दौड़कर उसने बेटीको हृदयसे लगा लिया। परंतु किसी भी तरह उसकी सिसकियाँ बंद नहीं होती थीं।

वह उस भग्न सितारकी ओर देख रही थी और रो रही थी।

वादक बेटीको हृदयसे लगाये बाहर जाने लगा।

परंतु उसके पैर जहाँके तहाँ रुक गये!

कोनेसे सितार सिसकियोंके बीच कह रही थी —

'मुझे खोलमें ही भरकर रखो। खोल होती, तो मेरी यह दुर्दशा — !'

दूसरे कोनेसे उद्गार आये—'कुछ समयके पहले एक नौकर आया और उसने मुझसे कहा, —' कल सुबह तुझे झाड़न बनानेके लिये ही ले जाऊँगा! इस प्रकार झाड़न बननेके बदले मैं सितारको सम्हालूँगी। जब ज़रूरत होगी उससे दूर रहूँगी — '

बेटीकी तरह पिताकी भी आँखोंमें आँसू भर आये।

●●●

११

घोंसला और भूकंप

बहुत पुराना वृक्ष था वह !

कुछ ही दिन पहलेसे उड़ना शुरू करनेवाले उस प्यारे चेंटुएकी कई पीढ़ियाँ इसी वृक्षपर अपने घोंसले बनाती आयी थीं।

इस वृक्षने अनेक आँधियोंका मुक़ाबला किया था, कई तूफ़ान देखे थे। परंतु उसपर बना एक भी घोंसला कभी टूट कर नीचे नहीं गिरा था।

परंतु एक दिन वह वृक्ष थरथर काँपने लगा।

उस नन्हे और प्यारे चेंटुएकी माँको लगा – बाहर आँधी शुरू हो गयी है।

चेंटुएने बाहर झाँककर देखा। आकाश बिलकुल निरभ्र था !

माँ बच्चेको भीतर खींचती हुई बोली, – 'कहींसे आँधी आ रही होगी, सो जा तू !'

माँके स्पर्शका मधुर आनंद आज उसे अच्छा नहीं लगा !

उसने फिर बाहर झाँककर देखा।

वृक्ष और भी अधिक हिलने लगा था। जैसे धरतीमातापर कोई एक प्रचण्ड चँवर डुला रहा था।

वह नन्हा प्यारा बच्चा देखने लगा – आँधीका एक भी चिन्ह नहीं दीख रहा था।

बात की-बातमें आसपासके मकान टूटूकर गिरने लगे —

देवालय – राजप्रासाद —

धाड – धाड – धाड —

माँ – माँ – ओ — माँ —

उस भयंकर आवाज़के कानोंमें पड़ते ही वह चेंटुआ माँको घोंसलेके बाहर खींचने लगा।

और माँ उसे घोंसलेके भीतर खींचने लगी।

चेंटुआ कह रहा था, – 'माँ, यह आँधी नहीं है, यह तूफ़ान नहीं है, यह भूकंप है!'

माँ कह रही थी, – 'बेटा, अपना वृक्ष बहुत पुराना है। ऐसे अनेक भूकंप वह देख चुका है!'

घोंसलेके द्वारमें, एक दूसरेपर प्राणोंसे भी अधिक प्यार करनेवाले वे दो जीव लड़ने लगे!

माँ कहती, – 'बेटा, कहाँका भूकंप लिये बैठा है! बाहर प्रलय आरंभ हो गया है। हम घोंसलेसे चिपके रहेंगे, तभी हमारे प्राण बचेंगे। यह पुराना वृक्ष बहुत दृढ़ और मज़बूत है!'

चेंटुआ कहता, – 'माँ, तुम्हें भूकंपकी कोई कल्पना नहीं है। घोंसलेके बाहर चल देंगे, तभी हमारे प्राणोंकी रक्षा होगी। इस पुराने वृक्षका अब कोई भरोसा नहीं है!'

चेंटुएने माँकों क़रीब क़रीब घोंसलेके बाहर निकाल ही दिया था। इसी समय उसे दूर हटाकर वह क्रोधसे उबलती हुई घोंसलेके भीतर आयी।

उसके धक्केसे वह चेंटुआ घोंसलेके बाहर गिर पड़ा।

कानोंको फोड़ देनेवाली एक प्रचंड आवाज़ हुई —

कड – कड – कड — काड – काड – काड —

वह प्राचीन वृक्ष जड़ समेत उखड़-कर धाराशायी हो गया था!

वह चेंटुआ माँको खोज़नेके लिये उस उखड़े हुए वृक्षके आसपास चक्कर काटने लगा।

● ● ●

१२
दो चित्रकार

एक ही रमणीसे दो चित्रकार प्रेम करने लगे !

वह रमणी किसी भी तरह यह नहीं समझ पा रही थी कि उन दोनोंमेंसे किसे चुना जाय।

दोनोंका ही स्वभाव अंगूरकी तरह मीठा था !

दोनोंकी ही कला चपलाकी तरह अपनी चमक दिखायी करती।

दोनोंका ही रूप—जैसे ब्रह्माने एक मूर्त्तिके दो चित्र बना दिये थे !

• • •

रमणीकी सहेलीने उससे कहा,—'कोई प्रण कर ले। जो तेरा प्रण पूरा करेगा, उसीके गलेमें वरमाला पहना दे ना तू !'

परंतु प्रण कौनसा किया जाय ?

क्या धनुष्य-भंगका ? छिः, तूलिकासे अधिक भारी चीज़ उन दोनोंमेंसे एकने भी न उठायी थी।

क्या, मत्स्यवेधका प्रण ?

दोनों ही चित्रकार थे। मत्स्यवेधन छोड़कर दोनो मत्स्यकी सुंदर आँखोंकी ओर ही देखते रहेंगे !

बहुत सोचनेके बाद उसे एक कल्पना सूझी।

उसने दोनोंको बुलवाया और कहा, – ' मुझे एक चित्र चाहिए है।'

' एक! इतने चित्र दूँ कि चाहो तो उनके पाँवडे बिछाकर उनपरसे सारी पृथ्वीकी परिक्रमा कर लो!' – पहला बोला।

दूसरेने प्रश्न किया, – ' किसका चित्र चाहती हैं आप?'

' सायंकालका!'

दोनों चित्रकार सायंकालका चित्र बनानेके लिये नज़दीक नज़दीक बैठे हुए थे। दोनोंको उस रमणीकी रसिकताका आश्चर्य हुआ। उनकी कला-दृष्टि कह रही थी,– सायंकाल निसर्गका सबसे अधिक रमणीय चित्र है।

मधुर संध्यारंग चटपट बदल रहे थे। जैसे अल्हड़ तरुणीके हृदयकी प्रणय-भावनाएँ ही हों!

सूर्यकी प्रखरता अणुमात्र भी महसूस नहीं हो रही थी। रंगमहलके द्वारमें वीरोंकी मुद्रापर क्या किसीने उग्रताकी छटा देखी है कभी?

पक्षियोंके झुंडके झुंड नीड़ोंकी ओर लौट रहे थे! यदि आनंदकी लहरें साकार हो जायें तो क्या वे इसी तरह नहीं दिखेंगी?

दोनों कलाकार मधुर कल्पना-तरंगोंपर विहार करते हुए संध्याके सौन्दर्यको उत्सुकतासे देख रहे थे।

हवासे झड़कर एक पत्ता उड़ता उड़ता आया और पहले चित्रकारके बदनपर गिर पड़ा। उसे लगा कि सामनेवाले सुंदर दृश्यसे वह बिलकुल असंगत है। उसने क्रोधसे उसे मसलकर नष्ट कर डाला। थोड़ी दूरपर भेड़ोंका एक दल उछलता कूदता हुआ जाने लगा। एक बूढ़ा काले रंगका गड़रिया अपनी फूटी आवाज़से गाते गाते उस दलके पीछे पीछे आया। उसके हाथमें कोई चीज़ थी। परंतु वह क्या है, यह दीखनेसे पहले ही पहला चित्रकार चिल्ला पड़ा, – ' अबे ओ बेवकूफ़! बड़ा गवैया बना है, जो गा रहा है!'

बूढ़ा झेंप गया। झटसे पीठ फेरकर बात-की-बातमें वह अदृश्य हो गया।

● ● ●

मखमलके आवरणोंसे आच्छादित किये हुए दो चित्र रमणीके महलमें आये दोनों चित्रकार अपने अपने चित्रके पास खड़े हो गये। हाथमें एक पुष्प-माला लिये रमणी आगे बढ़ी। उसके हाथ ही नहीं, किंतु हृदय भी काँप रहा था।

पहले चित्रकारने अपने चित्रपरसे आवरण हटा दिया।

चित्रका नाम ' रंगनाथ ' था। सायंकालीन सूर्य रासक्रीड़ा कर रहा है, विविध रंगोंसे रंगी हुई मेघमालाएँ गोपियोंकी तरह उसके आसपास नृत्य कर रही हैं, सायंकालको घर लौट रहे ढोर जैसे रंगनाथके वेणुनादसे मोहित हो कर ही दौड़ रहे हैं —

सायंकालकी सारी अद्भुत-रम्यताको उसकी तूलिकाने अपनी मोहिनीसे वशमें कर लिया था।

दूसरे चित्रकारने डरते डरते ही अपने चित्रका आवरण दूर किया।

उसके चित्रका नाम था ' श्यामसुंदर '।

ऐसा भ्रम होता था जैसे रमणीय सायंकाल किसीकी ओर स्नेहार्द्र दृष्टिसे देख रही है। वह मूर्ति एक बूढ़े गड़रियाकी थी। उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी। वह लंगोटी पहने हुए था और घास-फूलमेंसे धीरेसे चला जा रहा था।

उस गड़रियेने बकरीके नन्हे बच्चेको हृदयसे चिपका कर पकड़ रखा था। आगे जा रहे खिरकेसे एक बकरी पीछे मुड़कर देख रही थी। वही उस प्यारे बच्चेकी माँ होगी!

रमणीने दूसरे चित्रकारके गलेमें पुष्प-माला पहना दी।

तुरंत ही पहले चित्रकारकी ओर मुड़कर वह बोली, — ' कितना सुंदर चित्र है तुम्हारा! — भैयादूजके दिन तुम्हें यह चित्र मुझे भेंटके रूपमें देना होगा, समझे?'

● ● ●

१३
परमेश्वर

बाहर अँधेरा था। टिड्डेको वहाँ अच्छा नहीं लगता था! वह खिड़कीमेंसे कमरेमें आया। दीपककी किरणें उसके शरीरपर पड़ते ही, उसका हरा रंग चमकने लगा। जैसे अस्ताचलकी ओर गमन करनेवाले भगवान भास्करके प्रकाशसे चमकनेवाला समुद्रका जल हो!

टिड्डा अभिमानसे फूला हुआ अपने रंगकी ओर देख रहा था! 'घुर्र घुर्र' -की आवाज़ कानोंमें पड़ते ही उसने चौंककर देखा। दीयेके तले एक बिलौटा बैठा हुआ था। बिलकुल काला-स्याह था वह। 'दीयेके तले अँधेरा'वाली कहावत झूठ नहीं!

अभिमानकी तरंगें टिड्डेके मनमें ज़ोरसे उठने लगीं, – 'मेरा रंग कितना सुंदर है – हरा – हरा। हरे रत्नकी तरह। नहीं तो वह दीये तलेका कोयला!'

वह खुशीसे नाचने लगा।

पक्षी पेड़पर कैसे खेलते हुए नाचते हैं। अभी इस टहनीके सिरेको झुलाते हैं, तो तुरंत ही फुदककर दूसरी टहनीसे खेलने लगते हैं। टिड्डा भी वही करने लगा। क्षणमें कूदकर छप्परपर चक्कर काटता, क्षणमें तुरंत उतरकर नीचे आ जाता!

उड़ते उड़ते उसे लगा, – 'कैसा मस्त है मेरा शरीर! जैसे हवाई जहाज़

ही हो। नहीं तो एक वह है दियेके नीचे बैठा हुआ कलूटा! निरा खटारा है साला!'

दीयेके नीचे बिलैटा खिन्न मुद्रासे बैठा हुआ था। आज चार दिनसे चूहेकी बात तो दूर रही, पर छिपकली और तो और झींगुर भी उसे खानेको न मिला था। 'घुर्र घुर्र' आवाज़ करते हुए उसने ज़ोरसे कहा, – 'कितना निर्दयी है परमेश्वर! आज चार दिन हो गये —'

उसके इन शब्दोंको सुनकर टिड्डेको आश्चर्य हुआ। परमेश्वर और निर्दयी? जिस परमेश्वरने मुझे यह सुंदर हरा रंग दिया, हवाई जहाज़की तरह चपल शरीर दिया, वह परमेश्वर निर्दयी कैसे होगा? दीयेके पास कूदकर वह बोला, – 'अरे बिलैटे, महामूर्ख है तू। परमेश्वर दयालु है। देख, परमेश्वरका दिया हुआ मेरा यह रंग देख। यह देख हवाई जहाज़ चला ऊपर।'

परंतु वह हवाई जहाज़ उड़नेसे पहले ही ज़मीनपर आ गिरा! बिलैटेने बिलकुल ठीक निशाना लगाया था और शिकार हथिया लिया था।

टिड्डेने करुण क्रंदन किया, – 'परमेश्वर निर्दयी है। दु – ष्ट —'

बिलैटा चपचप खाते हुए बोला, – 'परमेश्वर दयालु है, अत्यंत दयालु है!'

● ● ●

१४

'पृथ्वी शान्त कैसे हुई?'

बात प्राचीन कालकी है।

अंतरंगकी जलनको सह न सकनेके कारण एक विशाल तेजोगोलके टुकड़े टुकड़े हो गये।

उसमेंका एक टुकड़ा बहुत दूर जाकर गिरा।

ईश्वरको उस टुकड़ेसे नयी सृष्टि बनानेकी सनक आयी। उसने उसे पानीमें डाला। टुकड़ा बाहरसे ठंडा हो गया। ईश्वरने बड़ी रुचिसे उसे 'पृथ्वी' नाम दिया!'

ईश्वर पृथ्वीसे बोला, – 'ऐसी मुहर्रमी सूरत क्यों बना ली है? ज़रा हँसो!'

पृथ्वीने उत्तर दिया, – 'भगवन, हँसी लानेसे नहीं लायी जाती। उसे भीतरसे खिलकर आना पड़ता है। मेरे अंतरंगमें आग जल रही है! उसके बुझे बिना —'

शायद उस आगकी जलनसे ही, पृथ्वी थरथर काँपने लगी।

इस भूकंपसे ईश्वर भी असमंजसमें पड़ गया।

बहुत देरतक सोचनेके बाद वह पृथ्वीसे बोला, – 'तुम्हारे अंतरंगमें जो आग दहक रही है, उसे शान्त करनेके लिये मैं एक नया प्राणी पैदा करता हूँ। उसका नाम है 'मानव'!'

मानव प्राणी पृथ्वीकी पीठपर खेलने लगा। कंकड़-पत्थरोंसे भरी पृथ्वीको फल-फूलोंसे सुशोभित करनेके लिये वह रात-दिन परिश्रम करने लगा।

मनुष्यके शरीरसे बहनेवाले पसीनेकी धाराओंसे पृथ्वी भींग गयी। बात-की-बातमें उसपर हरियाली छा गयी, तलाएँ डोलने लगीं, वृक्ष ऊँचे ऊँचे हाथ उठाकर आकाश छूनेका प्रयत्न करने लगे।

खेत सुनहली फसलोंसे भर गये। जैसे अलंकारोंसे सजे हुए लड़के ही हों!

मंदिर अपने सादर्यकी शान दिखाते हुए खड़े हो गये। जैसे यौवनमें पदार्पण करनेवाली सुंदर तरुणी ही हों!

नगरोंका जल्दी जल्दी बिस्तार होने लगा। जैसे पराक्रमी पुरुषोंके मनकी आकांक्षाएँ ही हों!

पृथ्वीके इस नये स्वरूपको देखकर ईश्वरको मानवपर बड़ा अभिमान मालूम हुआ।

उसने पृथ्वीसे पूछा, – 'अब तो तुम्हारा अंतरंग शान्त हो गया न ?'

पृथ्वीने कोई उत्तर न दिया। परंतु मनको रोकनेके बावजूद उसके मुँहसे एक बड़ी सिसकारी बाहर निकल पड़ी।

मनुष्योंने कहा, – 'ज्वालामुखीका विस्फोट हुआ।'

ईश्वर क्रोधसे कहने लगा, – 'इस असंतुष्ट पृथ्वीको कभी संतोष न होगा। इसके लिये मैंने नया प्राणी निर्मित किया जिसने किसी जादूगरकी तरह उसका सारा स्वरूप ही बदल डाला – उसने अपने बदनका पसीना बहाकर इसे नया सौंदर्य प्रदान किया। इतना सब होनेके बाद भी इसका रोना बना ही है!'

उसने क्रोधमें निश्चय किया, – 'अब पृथ्वीसे एक शब्द भी न बोलूँगा।'

पृथ्वीपर सब कुछ तेज़ीसे बढ़ रहा था – धन, अन्न, इमारतें, नगर, मनुष्य! और – दुःख भी!

बढ़ते हुए वैभवके साथ मनुष्योंकी ईर्षा बढ़ी – दूसरोंको गुलाम बनाकर उनकी ज़िंदगीपर गुलछर्रे उड़ानेकी इच्छा भी बढ़ती गयी। मनुष्य आपसमें लड़ने लगे। बात-की-बातमें लड़ाईका रूपान्तर महायुद्धमें हो गया।

पृथ्वीपर खूनकी नदियाँ बहने लगीं।

ईश्वरको लगा – मनुष्यके शरीरके इस खूनसे अब पृथ्वीकी आग ज़रूर शान्त हो जायेगी।

अपनी चुप्पी छोड़कर हँसते-हँसते वह पृथ्वीसे बोला, – 'मनुष्यके पसीनेसे तेरे भीतरकी आग शान्त न हो सकी। परंतु अब उसके खूनसे तो —'

'इस खूनसे तो वह आग और भी अधिक बढ़ गयी है !' – पृथ्वीने सिसकियोंके बीच कहा।

ईश्वर क्रोधसे बरस पड़ा, – 'फिर तेरी यह आग कभी भी शान्त न होगी। मनुष्यके पास खूनसे अधिक कीमती दूसरी कोई चीज़ ही नहीं है !'

क्रोधसे भरा हुआ ईश्वर स्वर्गमें जाकर सो गया।

बहुत समय बीत गया।

एक दिन ईश्वरको अपने शयनमंदिरमें एक गीत सुनायी देने लगा। वह स्वर उसके परिचयका था। पृथ्वी ही गा रही थी, इसमें संदेह नहीं।

उसे आश्चर्य लगने लगा – उसे विश्वास था कि पृथ्वीका स्वर फिर कभी अगर सुनायी देगा, तो वह उसके करुण क्रंदनका ही होगा।

ईश्वर दौड़ पड़ा। स्वर्गकी सीमापर खड़े होकर पृथ्वीका गीत सुनने लगा।

कितने शान्त और मधुर स्वर थे वे ! क्या, दुखी मनुष्यके हृदयसे कभी ऐसे स्वर निकल सकते हैं ?

किसी छोटे बच्चेकी तरह ईश्वरकी स्थिति हो गयी ! अधीर मनसे दौड़ता हुआ वह आगे बढ़ा। उसने पृथ्वीसे पूछा, – 'क्या हो रहा है ?'

'हँस रही हूँ ... गा रही हूँ !'

'गा रही हो ? तुम्हारे अन्तरंगमें आग सुलगी हुई है। फिर तुम्हें गाना कैसे सूझ रहा है ?'

'वह आग अब शान्त हो गयी है।'

'शान्त हो गयी ? किसने शान्त किया उसे ?'

'मानवने !'

'किस प्रकार ?'

'उसके अन्तःकरणमें जाग्रत हुए बंधु-भावसे ! इस भावनाके कारण उसकी आँखोंसे बहनेवाले आँसुओंसे !'

●●●

१५

कोयल

जिन जिनके कानोंमें वे स्वर पड़ते, उन उनके क़दम जहाँके तहाँ रुक जाते। जैसे उस मधुर स्वर-जालमें ही वे फँस गये हो।

कुहू — कुहू!
कुहू — कुहू!
कुहू — कुहू!
कुहू — कुहू!

किसी लताकुंजके भीतर खिले हुए फूलकी उन्मादक सुगंध दूरतक फैल जावे, परंतु वह फूल किसीको भी दिखायी न दे, उसी तरह उस मधुर स्वरकी स्वामिनी कहीं भी दिखायी नहीं देती थी।

जिन जिनके कानोंमें यह मधुर संगीत पड़ता, उन उनके हृदय किसी सुंदर स्मृतिसे खेलते हुए आकाशमें ऊँचे ऊँचे उड़ने लगते।

कुहू — कुहू!
कुहू — कुहू!

मधुमक्खीके मधुकोषसे टपकनेवाले मधु-बिंदु —
मिलनके लिये अधीर हुई रमणीके मनके प्रेमगीतके मधुर स्वर —
अंचलमें छिपे स्तनपान करनेवाले बालकका मनोहारी हुंकार —

कुंजवनमें कन्हैयाको मूक होकर मनानेवाली राधाकी आँखोंके नृत्यकी रुमझुम — उस मधुर स्वरको सुननेवालोंके मनमें कल्पनाओंकी बिलकुल वर्षा हुआ करती!

● ● ●

आम्रवृक्षके पर्ण-भारमें छिपी हुई कोयल इस दिग्विजयसे बेहोश होकर पंचममें गाने लगी —

कुहू – कुहू —
कुहू – कुहू – कुहू —

आमके बौरकी ओर देखकर कोयलको लगा, – 'मेरा गाना सुनकर इस वृक्ष-पर आनंदके रोमांच खड़े हो गये हैं।'

फूले हुए बाग़की ओर देखकर उसके मनमें आया, – 'मेरा गाना सुनकर ही बसंतकी कली खिली है।'

रमणीय उषःकालको देखकर वह मन-ही मन बोली, – 'मेरे संगीतसे उल्लसित होकर ही उषा इतनी सुंदर दीख रही है।'

चाँदनी रातमें, हाथमें हाथ मिलाकर घूमनेवाले और चँवरकी तरह हिलनेवाले वृक्षोंकी छायाओंमें एक दूसरेका चुम्बन लेनेवाले युगलोंकी ओर देखकर कोयल कहती, – 'मेरे गीतके कारण ही इनके हृदयोंमें प्रीतिके फव्वारे नृत्य करने लगे हैं!'

बौरसे लदा हुआ आम्रवृक्ष, खिला हुआ वसंत, उषाकी दीप्ति और वल्लभ-वल्लभाओंकी प्रीति – कोयलको लगने लगा, कि 'इस सारे सौंदर्यको मेरे मधुर कंठने निर्माण किया है।'

इस अभिमानसे कोयल अंधी हो गयी।

वह आम्रवृक्षसे बोली, – 'अगर मैं सूखे पेड़पर बैठूँ, तो उसमें भी बौर लग जायेंगे।'

वह वसंतसे बोली, – 'मैं यदि मरुभूमिमें गाने लगूँ, तो वह भी नंदनवन बन जायेगा!'

उसने उषासे कहा, – 'सायंकालको मैं यदि गा दूँ – सिर्फ़ कुहू-कुहू कर दूँ, तो अस्त हुआ सूरज फिर लौट आयेगा!'

वह प्रेमी-प्रेमिकाओंसे बोली, – 'मैं यदि किसी दूर देशको उड़ कर चली जाऊँ तो तुम्हारा प्रेम भी मेरे साथ उड़ जायेगा!'

● ● ●

वर्षाकाल आया।

आमका बौर अदृश्य हो गया।

आकाशसे मूसलधार वर्षा होने लगी।

मेघके आवरणसे उषा कभी कभी बाहर झाँककर देख लेती। परंतु वह क्षण-भरके लिये ही!

चाँदनी रात, बुझ गये हुए यज्ञ-कुंडकी तरह दीखने लगी।

कोयल पहलेकी तरह गानेका प्रयत्न करने लगी। परंतु उसके कंठसे स्वर ही बाहर नहीं निकलते थे।

ठंड़ आयी।

सारे वृक्ष चीथड़े ओढ़े हुए भिखारियोंकी तरह दीखने लगे। कृषक् मोगरीकी मारसे बालियोंको पीट-पीटकर दाने झड़ावे, उस तरह शरीरको चुभनेवाली हवा वृक्षों और लताओंका एक एक पत्ता अपनी मारसे झड़ा रही थी। न जाने, क्या इस हवाका ही भय था कि बेचारी उषा बिस्तरसे बाहर ही नहीं निकलती थी!

किसी चाँदनी रातको चंद्रमाको घेरा पड़ जाता, सो अलग ही। परंतु हर रातको आकाश आँसू बहाने लगा! उन तारोंके आँसुओंको देखनेके लिये कौनसा प्रेमी अपनी प्रेमिकाको घरसे बाहर लायेगा?

● ● ●

पेड़पर बैठकर कोयल गानेकी कोशिश करने लगी। उसे भ्रम हुआ कि उसका गला सूख गया है।

शरीरकी पूरी ताक़त बटोरकर वह गाने लगी। उसके कंठसे स्वर बाहर निकले।

पर —

वे वसंतके आम्रवृक्षपरके स्वर न थे, वे वसंतके उषःकालके स्वर न थे, वे वसंतकी चाँदनी रात्रिके स्वर न थे।

उन मधुर स्वरोंके भूत थे वे!

वे स्वर स्वयं उससे ही नहीं सुने जाते थे!

कोयल मूक हो गयी। वह मन-ही-मन वसंतको निहोरने लगी, — 'जल्दी आओ, मेरे प्राणोंके राजा, जल्दी आओ!

● ● ●

१६
नयी सृष्टि

'सच्चा काव्य' – हाथमें रखे कमलसे खेलते हुए भगवान विष्णुने कहा।

'तत्त्वज्ञान हो, तो ऐसा हो' – अपने बिखरे हुए जटाभारको सम्हालते हुए भगवान शंकर बोले। मेघमालाएँ तितर-बितर होकर आकाशगंगाका दर्शन हो जावे, उस प्रकार उनके मस्तककी गंगा इस समय दिखायी दी। कुमार ब्रह्मदेवने विनम्र मस्तकसे इन स्तुति-सुमनोंको स्वीकार किया। उसके हृदयमें आनंद और विनोद – दोनोंका प्रेमकलह हो रहा था। दोनों तुल्यबल होनेके कारण, उस कलहमें किसीको भी पूर्ण सफलता न मिली।

'तुम्हारी इस नयी काव्यसृष्टिको देखकर मेरे हाथका कमल, देखो, कैसा प्रफुल्लित हो गया है!' – भगवान विष्णु अपनी रसिकता दिखाते हुए बोले।

ब्रह्मदेवके मनमें इस समय यह विचार आ गया, कि यदि उन्हें यह सृष्टि पसंद न होती, तो उनके हाथकी गदा मेरी ओर क्रोध-भरी आँखोंसे देखने लगती!

'कुमार ब्रह्मदेव, तुम अपनी इस नयी सृष्टिकी कल्पनाको ज़रा एक बार फिरसे तो और कह डालो।' – भगवान शंकर अपने गलेमें लिपटे हुए सर्पके मृदु शरीरको सहलाते हुए बोले।

नंदनवनमें वसंत ऋतु आ जावे, उस प्रकार ब्रह्मदेवके मुखपर स्मितकी रेखाएँ चमकने लगीं। विष्णु और शंकरकी ओर बारी बारीसे देखते हुए वे बोले, –

'मेरी कल्पनाकी पहली उड़ान है स्वर्ग। इस उड़ानमें मैंने देवताओंको निर्मित किया। परंतु इन देवताओंको अमर बना देनेसे बड़ी भूल हो गयी। मैं जानता हूँ कि जेठे-बड़ोंके सामने उनके दोष निकालना उचित नहीं है! परंतु—परंतु—' एक बार विष्णुकी ओर देखकर ब्रह्मदेवने अपनी दृष्टि दूसरी ओर घुमायी।

'समझ गया, समझ गया हूँ मैं। मैंने मोहनीका रूप धारण कर इन देवोंको जो अमृत प्राप्त करा दिया, उसीपर कटाक्ष है तुम्हारा!'—विष्णु हँसते हुए बोले।

'अमृतके कारण सारे देव उन्मत्त हो गये हैं!'—शंकरने आवेशसे कहा। उनका एक एक शब्द मेघगर्जनाकी तरह लग रहा था। 'जबसे अमृत हाथमें आ गया है तबसे 'भय' शब्द ही अमरावतीसे लुप्त हो गया है। कल क्या हुआ, तो गुरुकी पत्नीको चन्द्र भगा ले गया; परसों क्या, तो नंदनवनकी अप्सराओंका नग्न नृत्य आरंभ हो गया! मनमाना कारोबार हो गया है सारा! परसों मेरा तांडवनृत्य देखनेके लिये इंद्रको बुलाया। तो वह गुस्ताख क्या जवाब देता है, कि 'धींगा-धींगी कोई नृत्य नहीं होता। तुम्हें यदि सच्चा नृत्य देखना है, तो अपनी रंभाकी एक दासी तुम्हारे पास भेजे देता हूँ! ऐसा गुस्सा आया था मुझे उस गुस्ताख इन्द्रपर! ब्रह्मदेव, तेरी सृष्टिका नमूना है यह—तेरी सृष्टिका। तेरी ओर देखकर मैं शान्त रहा! नहीं तो—'

'मुझे भी उनकी लतें कहाँ पसंद हैं?'—ब्रह्माजी शंकरको साँत्वना देनेके लिये वीणामधुर स्वरमें बोले,—'अमृत पीना और अप्सराओंके साथ विलास करना; इसके सिवा स्वर्गके देवताओंको और कुछ सूझता ही नहीं है! उनसे ऊबकर कल्पनाकी उड़ानमें मैंने पाताललोकका निर्माण किया। वहाँके दैत्योंने तो इन देवोंके भी कान काट डाले! इन्हें अमृत मिला, उन्हें संजीवनी मंत्रका जाप करनेवाला शुक्राचार्य मिल गया! इन दोनों सृष्टियोंके कटु अनुभवोंको ध्यानमें रखकर ही मैं अब इस नयी सृष्टिका निर्माण कर रहा हूँ!'

कमलपत्रपर संध्यारंगसे लिखी हुई अपनी कल्पनाको ब्रह्मदेवने विष्णु और शंकरके सामने रख दिया।

नयी सृष्टिका नाम—मृत्युलोक। इस लोकके द्वार दो—जन्म और मृत्यु। पहले द्वारका स्वामित्व ब्रह्मदेवको और दूसरेका शंकरको दिया जाय। आशा और भयके राज्यको स्थिर करनेके लिये इन द्वारोंको, दोनों स्वामी अपनी अपनी इच्छानुसार बीच-बीचमें खोलते रहें। कल्पतरुके कारण देव आलसी हो गये हैं।

मृत्यु-लोकमें यह बीमारी न फैले इसलिये सारे अनाज, फल, फूल, यही नहीं बल्कि पानी भी पृथ्वीके पेटमें ही रहेगा। जो परिश्रम करेगा उसको ही सब सुखसाधनोंका लाभ होगा।

'उत्कृष्ट', 'सुंदर' आदि विशेषणोंकी वर्षा करते हुए विष्णु और शंकर एकदम रुक गये।

'इस नयी सृष्टिके प्राणीका नाम क्या बताया था तुमने?'—विष्णुने पूछा।

'मनुष्य—'

'ये मनुष्य क्या परिश्रमसे थक नहीं जायेंगे?'—शंकरने प्रश्न किया। 'तांडव-नृत्यके बाद यदि मुझे शांभवी प्राप्त न हुई, तो मेरे हाथ-पाँव बिलकुल ढीले पड़ जाते हैं!'

'ऐसी भी व्यवस्था कर दी गयी है जिससे परिश्रम उन्हें दुःसह न हो। रजनी, बेटा रजनी, ज़रा इधर तो आओ, बिटिया।'

ब्रह्माके आसपासके तपोवनसे 'आयी' मधुर ध्वनि सुनायी दी। शंकर और विष्णुको भ्रम हुआ कि स्वर्गकी सारी अप्सराओंके कंठोंकी कोमलता इस सीधे-सादे शब्दमें अवतीर्ण हो गयी है। वह मधुर ध्वनि वातावरणमें विलीन न हो पायी थी तभी एक मुग्ध कुमारिका ब्रह्मदेवके पास दौड़ती हुई आयी। अध-खिली कलियोंके पास निःशब्द चरणोंसे रुक जानेवाले वायुलहरीकी तरह वह कुमारिका वहाँ आकर खड़ी हो गयी। वह आकाशके रंगका सुंदर वसन पहने हुई थी। जैसे उस वस्त्रपर कसीदेके रूपमें सारा तारा-मंडल प्रतिबिंबित हो गया हो! उस कुमारिकाके मस्तकका घना केशकलाप, उस केशभारके आगे चंद्रकलाकी तरह चमकनेवाला पीपलका पत्ता, उस पीपलके पत्तेके नीचे मंगलकी तरह शोभायमान कुंकुम तिलक—इनमें सौंदर्यके बारेमें जैसे स्पर्धा ही लगी हुई थी! उसके शरीरसे आ रही सुगंधित वायु यह सूचित कर रही थी कि वह हालहीमें निशिगंधकी शैय्यासे उठकर आ रही है। उसकी स्निग्ध दृष्टिमें चंद्रिका और हाथोंके कमलकलशमें ओसबिंदु थे। उसके अधरोंपर मातृहृदयका वात्सल्य प्रतिबिंबित हुआ था; और वह ऊपरके होंठपर बिहार करनेवाले बालककी निर्व्याजतासे लगातार खेल रही थी।

'रजनी, मेरे द्वारा सिखाया गया निद्रा-गीत तुझे याद है इस समय?'—ब्रह्मदेव वात्सल्यभरी दृष्टिसे रजनीकी ओर देखते हुए बोले।

रजनी गाने लगी। उसके स्वरमें मंदाकिनीका जल झिलमिला रहा था। निद्रा-

गीतके प्रत्येक नये शब्दके साथ मधुर सुरकी एक नयी ही सृष्टि निर्मित हो जाती जहाँ तहाँ फूल ही फूल खिल गये। चाँदनी ही चाँदनी नाचने लगीं। रजनीका गीत समाप्त हुए एक घड़ी बीत गयी, फिर भी विष्णु और शंकरकी आनंद-समाधि न उतरी।

रजनीके तपोवनमें लौट जानेके बाद ब्रह्मदेवने कहा, — 'निद्रागीतका यह ब्रह्मानंद मृत्युलोकमें प्रत्येकको प्रति दिन प्राप्त होनेवाला है। मनुष्यको मृत्युतक काम करना पड़े फिर भी उन्हें पुनर्जन्म देनेकी शक्ति रजनीके मधुर स्वरमें है।'

विष्णु और शंकर दोनोंने अपनी अपनी गर्दन हिलाकर इस विधानका समर्थन किया।

ब्रह्मदेव उत्साहसे आगे बोले, — हम तीनोंको छोड़कर किसी भी देव या दैत्यका इस नयी सृष्टिमें प्रवेश होना इष्ट नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि स्वर्ग और पाताल मेरी कल्पनाके सुंदर बच्चे हैं, परंतु लाड़प्यारसे वे बिलकुल बिगड़ गये हैं। उनकी हवा भी इस पृथ्वीको न लगनी देनी चाहिए। जन्म और मृत्युके दरवाजोंको मैं और शंकर दोनों सम्हालते हैं। दूसरी व्यवस्थाओंपर भगवान विष्णुकी कृपादृष्टि होनी चाहिए। भगवान महेश्वर क्षमा करें, परंतु बोले बिना नहीं रहा जाता। मृत्युके द्वारसे हलाहल अथवा दूसरी कोई चीज़ बीचहीमें मृत्युलोकमें न जाने पावे, इसकी सावधानी —'

'तुम कुछ भी चिंता न करो।' — भगवान शंकरने कहा।

विष्णु हँसते हुए बोले, — 'तुम्हारे बच्चे मेरे नाती हैं। इसलिये यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है कि मैं उनकी अपने प्राणोंसे भी अधिक रक्षा करूँगा।'

'आप क्षीरसागरसे मृत्युलोकमें जा सकें, इसलिये मैं एक गुप्त द्वारकी भी व्यवस्था किये देता हूँ।' — ब्रह्मदेव विष्णुको वंदन करते हुए प्रसन्नतासे बोले।

● ● ●

ब्रह्मदेवकी नयी सृष्टि नियमित रूपसे शुरू हो गयी। हरएक आदमीको अपने पेटके लिये परिश्रम करना आवश्यक होनेके कारण इस सृष्टिमें 'निठल्ला' शब्दको कोई जानता ही न था। दिनका परिश्रम निद्रागीतसे परिहार हो जानेपर मनुष्य फिर शौक़से काम करने लगते थे। हरएक व्यक्ति अपने अपने काममें निमग्न होनेके कारण, आलस और विलासको, मृत्युलोकमें अनजाने बहिष्कार मिल गया!

जन्म और मृत्यु – इन दो परदोंके बीचकी रंगभूमिपर हम अभिनय कर रहे हैं, यह जानकारी प्रत्येकके अन्तःकरणमें जाग्रत होनेके कारण, स्वयं अपने जीवन नाटकको अवास्तविक महत्त्व कोई भी न देता था। इस भावनाके कारण कि अभिनेताकी दृष्टिसे हमें अपना अभिनय अच्छी तरहसे करना चाहिए, परंतु युगोंतक हमें कोई यहि अभिनय नहीं करते रहना है, कभी भी किसी पर किसीके द्वारा कोई अन्याय न हुआ करता था।

भगवान विष्णु इस नयी सृष्टिके पालनका कार्य करनेके लिये बार बार मृत्युलोकमें आने-जाने लगे। लक्ष्मीको यह जाननेमें कोई अधिक समय न लगा कि पहलेकी अपेक्षा मेरे पतिदेव अधिक समय मंदिरके बाहर बिताने लगे हैं।

एक दिन पैर दबाते-दबाते उसने धीरेसे विष्णुसे प्रश्न किया। परंतु यह कहकर कि 'यों ही चला जाता हूँ शंकरके पास गप्पें हाँकनेके लिये' उन्होंने उस प्रश्नका उत्तर दे दिया। लक्ष्मीने गरुड़को छेड़कर देखा; परंतु मृत्युलोकको जाते समय विष्णु अपने वाहनका उपयोग नहीं करते थे, इसलिये वह बेचारा कुछ भी न कह सकता था।

'पातालसे स्वर्गमें अमृत ले जानेकी तारीफ़ ही सुन लो इससे!!' – इस प्रकार पुटपुटाती हुई लक्ष्मी विचार करने लगी। मेरे पति किसी देवी अथवा अप्सराके जालमें तो नहीं फँस गये हैं? स्त्रियोंका क्रोध मत्सरकी हवासे क्षणार्धमें भयंकर रूपसे भड़क उठता है। लक्ष्मीने क्रोधके आवेशमें विष्णुको फिर छेड़ा।

'तुम्हारे भैया शंख घरमें बेकार बैठे हुए हैं। उनके लिये कोई नौकरी या काम खोज़नेको जाया करता हूँ!' – विष्णुने हँसते हुए फिर उत्तर दे दिया।

मायकेकी निंदा कौन स्त्री खुशीसे सुन लेगी? विष्णुके इस उत्तरसे लक्ष्मी और भी अधिक चिढ़ गयी।

अब उसने सोचा, कि पतिके पीछे पीछे गुप्त रीतिसे गये बिना यह राज़ न खुलेगा, और उसने अपने मनमें इसका निश्चय कर डाला। एक दिन उसने उस मार्गका अवलंबन किया। मृत्युलोकके गुप्त द्वारसे भीतर जाकर उसे बंद करनेके लिये विष्णु पीछे मुड़े तो देखते हैं लक्ष्मी खड़ी है!

'तुम यहाँ क्यों आयी?' – उन्होंने आश्चर्यसे पूछा।

'पतिके चरणोंपर चरण रखकर चलना पत्नीका धर्म ही है।' – दरवाजेसे भीतर क़दम रखते हुए लक्ष्मीने उत्तर दिया। ब्रह्मदेवका यह तत्त्व कि मृत्युलोकमें हम

तीनोंको छोड़कर और किसीको भी न जाने देना चाहिए, विष्णुकी आँखोंके सामने खड़ा हो गया; परंतु उनसे एकदम लक्ष्मीको पीछे नहीं ढकेला जाता था! उसे समझा-बुझाकर वापस लौटा देनेका वे विचार कर रहे थे; इसी समय उसने उनके स्कंधपर अपना सुंदर मस्तक रखकर ऐसी मधुर दृष्टिसे उनकी ओर देखा कि फिर उन्हें ऐसा एक भी शब्द कहनेकी हिम्मत ही न पड़ी जिससे उसे बुरा लग जाये।

पतिके साथ घूमकर लक्ष्मीने पूरा मृत्युलोक देख लिया। उसके भाइयोंको शंख कहकर अपमानित करके देवोंने स्वर्गसे और दैत्योंने पातालसे भगा दिया था। इस नयी सृष्टिमें सब लोग दिन-रात अपने अपने उद्योगमें निमग्न रहते हैं, इसलिये देव और दैत्योंकी तरह वे अपने भाइयोंका अपमान सहन न करेंगे -- ऐसी कल्पना उसके मनमें आ गयी। सागरमंदिरको लौटते समय उसने अपने सब भाइयोंको एकत्रित किया और उनको इस नयी सृष्टिकी जानकारी दी। सागरने विष्णुको घरजमाई बना लिया था, इसलिये बापपर क्रुद्ध हुए शंखोंको हमेश ही यह लगा करता कि हम घर छोड़कर कहीं बाहर चले जायें। लक्ष्मीके द्वारा मृत्युलोककी जानकारी प्राप्त होते ही वहाँ जानेके लिये वे सब इतने ज़ोरसे चिल्लाने लगे कि लक्ष्मीके मनमें यह भय उत्पन्न हो गया कि इस कोलाहलसे विष्णु जाग जायेंगे और मेरे षड्यंत्रका भंडाफोड़ हो जायेगा।

'हम लोगोंको मृत्युलोकके राजा बना दे।' -- कहकर सब शंख लक्ष्मीके पीछे पड़ गये।

लक्ष्मीकी भी यही इच्छा थी कि मृत्युलोकके नियमानुसार मेरे भाइयोंको कठिन परिश्रम न करना पड़े। उसने बहुत देरतक विचार किया। अन्तमें रत्नोंसे भरे हुए टोकने सब शंखोंके सिरपर रखकर उनके साथ उसने मृत्युलोकमें प्रवेश किया। शंखोंको इस नयी सृष्टिमें सकुशल पहुँचाकर वह लौट आयी। आते ही उसने विष्णुकी सेवा आरंभ कर दी।

उसकी मनोहारी सेवासे विष्णु इतने प्रसन्न हो गये कि उसे छोड़कर सागरके बाहर जाना उनकी जानपर आने लगा।

● ● ●

ब्रह्मदेव इस कल्पनामें मग्न थे कि मेरी इस नयी सृष्टि स्वर्ग और पातालकी अपेक्षा अधिक सुखी है, तभी एक दिन रजनी उनके पास सिसकियाँ भरते हुए

आयी। सारे मृत्युलोकको आनंदित करनेवाली रजनीको आसू बहाते हुए देखकर ब्रह्मदेवको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। रजनीको अपने पास खींचकर उसकी पीठपर प्रेमसे हाथ फेरते हुए ब्रह्मदेव उसके मुखकी ओर देखने लगे।

आवेग कम होनेपर रजनी बोली,–'आजसे मैं मृत्युलोकमें कभी क़दम भी न रखूँगी!'

'सो क्यों?'–ब्रह्मदेवके स्वरमें मूर्तिमान आश्चर्य उतर आया था।

'वहाँ मेरा गीत कोई सुनता ही नहीं है।'

'मतलब? विष्णु और शंकरपर भी जादू कर देनेवाला तेरा संगीत कोई न सुने, यह कैसे होगा?'

'ऐसा तो हो ही गया है! निद्रागीत गाते गाते मेरा कंठ भी सूख जाय, फिर भी मृत्युलोकके मनुष्य बिस्तरपर तड़पते हुए पड़े रहने लगे हैं!'

'तड़पनेका उन्हें कारण क्या है?'

'कारण क्या कोई एक दो हैं? पेटमें एक कौर भी अन्न न होनेके कारण कितने ही मनुष्य तड़प रहे हैं—'

'अन्न न हो, यह कैसे होगा?'

'लोग अपने अन्नको बेच डाल रहे हैं अब।'

'किसे?'

'वे लक्ष्मीके भाई शंखोंको–तुम्हारे मामा ही कहो न—'

'वे घुसकर आये क्या मृत्युलोकमें?'–निराशासे कपाल ठोकते हुए ब्रह्मदेव बोले।

'वे सिर्फ़ आ जाते, तब भी काम चल जाता। परंतु वे रत्नोंके ढेर ले आये हैं अपने साथ। सब मनुष्य उन रत्नोंपर लट्टू हो गये हैं और मारपीट करके, और तो और पेटका अन्न बेचकर भी मनुष्य उन रत्नोंको लेने लगे। उन रत्नोंके कारण कई प्रकारकी बातें होने लगीं हैं मृत्युलोकमें। यदि रत्न पासमें रहें, तो शंखकी तरह स्वस्थ पड़े रहनेको मिल जाता है, इसलिये सभी लोग रत्नोंके पीछे लग गये हैं। हरएकको यह लगने लगा है, कि काम करनेकी अपेक्षा धनी होनेमें अधिक सुख है।'

ब्रह्मदेवने रजनीकी ओर देखकर एक गहरी साँस छोड़ी।

रजनी आगे कहने लगी,–'निद्रा-गीतकी ओर कोई ध्यान ही नहीं देता अब! जिन्होंने रत्न प्राप्त किये हैं, उन्हें इस भयसे नींद नहीं आती कि कोई उन्हें चुरा

न ले जाये। जिन्हें वे नहीं मिलते उन लोगोंको आलसी धनियोंके लिये काम करना पड़ता है! इसलिये उन्हें भी सुखकी नींद नहीं मिलती। इन रत्नोंके कारण मनुष्योंके शरीर दुर्बल हो गये; मृत्युलोकमें चोरियाँ और खून होने लगे; उन शंखोंकी बहन शराब घर घरमें बड़ी शानसे अकड़कर घूमने लगी! तरुणियोंका काव्य-मय प्रेम भी रत्न दिखे बिना नहीं होता, और हो भी गया, तो आगे चलकर यदि रत्न न हुए तो वह टिकता नहीं है – ऐसी स्थिति हो गयी है। ऐसे मृत्युलोकमें प्रत्येक दिन व्यर्थ ही कंठ सुखाने जाऊँ, इससे क्या लाभ है?'

ब्रह्मदेव चिन्तामग्न होकर रजनीके वचनपर विचार करने लगे। इसी समय वीरभद्र भगवान शंकरका संदेश लेकर आया: 'मृत्युके द्वारपर आजकल लाखों मनुष्य धक्के देने लगे हैं। यदि द्वार खोल दूँ, तो सभी लोग बाहर निकल जायेंगे और संभव है कि तेरी सृष्टि शून्य हो जाये।'

आँखोंके आँसू पोंछते हुए ब्रह्मदेव विष्णुके पास पहुँचे।

● ● ●

परंतु विष्णु थे लक्ष्मीकी मुट्ठीमें! ब्रह्मदेव लक्ष्मीको वंदन करके बोले,– 'माताजी, आपके बंधु शंखों और उनके रत्नोंने मेरे मृत्युलोकमें बड़ा हुड़दंग मचा रखा है। यदि आप उन्हें वहाँसे ले आवें, तो उनके लिये मैं एक स्वतंत्र सृष्टि भी बना दूँगा।'

मृत्युलोकमें शंखोंका अच्छा रोब जम गया था। लक्ष्मीने उत्तर दिया, 'कुमार ब्रह्मदेव, मेरे भाई अपना राज्यपद त्यागकर अब उस सृष्टिसे बाहर नहीं आयेंगे।'

ब्रह्मदेव जड़ अन्तःकरणसे शंकरके पास गये। पद पदपर मौतके दरवाजेको खटखटाकर मनुष्य शंकरको तंग कर रहे थे। शंकरने इस त्राससे बचनेके लिये मृत्युलोकमें हलाहल भेजनेका निश्चय किया। उसके लिये सम्मति देकर ब्रह्मदेव अपने आश्रमको लौट आये।

तपोवनसे रजनीका मधुर स्वर कानोंमें पड़ रहा था।

निद्रागीत ही था वह!

उसे सुनते सुनते सनसनाती हुई हवाका झोकेमें रूपान्तर हो गया। और लताओंपर खिले हुए पुष्पोंके स्थानमें कलियाँ दीखने लगीं। उन कलियोंकी ओर देखते देखते इस दिव्य आनंदसे वंचित हुए मृत्युलोकका स्मरण होकर ब्रह्मदेवकी आँखोंसे आँसुओंकी धाराएँ बहने लगीं।

● ● ●

१७

स्वप्न

उनकी बाहें एक दूसरेके गलेमें थीं। उनकी साँसें एकरूप हो रही थीं। परंतु उनके मन?

वह स्वप्नमें देख रहा था – मेरा एक बगीचा है। उसमें हर जगह कलियाँ ही कलियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। लेकिन फूलका कहीं भी पता नहीं है। जब ये सारी कलियाँ खिल जायेंगी, तब उनकी सुगंधसे मोहित होकर सारी दुनिया मेरे बागकी ओर दौड़ पड़ेगी, इसमें तिलमात्र भी संदेह नहीं।

कोई एक रमणी उस बगीचेमें आयी। उससे पूछनेके लिये कि 'किसकी इज़ाज़तसे आप भीतर आयीं?' प्रश्न मेरे होंठोंपर आ गया। परंतु सुंदर स्त्रीसे क्या कोई भी तरुण ऐसा उद्धत प्रश्न पूछ सकता है?

वह रमणी बागमें घूमने लगी। अपनी केशभूषाके लिये उसने बहुतसी कलियाँ तोड़ डालीं। मुझे लगा – तोड़ती है तो तोड़ती रहे। आखिर ऐसी कितनी कलियाँ तोड़ लेगी वह? उसके सुंदर मुखकी ओर मुग्धतासे देखता हुआ मैं चुप रहा।

बात-की-बात उसके आसपास बहुतसे बालक इकट्ठा हो गये। न जाने वह उन्हें कहाँसे ले आयी थी? परंतु उन बालकोंने बगीचेकी कलीको तोड़कर मसल डाला।

मुझे उस रमणीपर बड़ा क्रोध आया। दिलमें आया – कहींसे विष ले आऊँ और उसे पिलाकर —

उसी समय वह भी स्वप्नमें किसी एक पुरुषपर उसी-तरह चिढ़ गयी थी। कहींसे विष ले आऊँ और उसे पिलाकर – यही विचार उसके मनमें भी आया था।

उसका कारण भी वैसा ही था।

वह अपने मंदिरमें, संसारको पागल कर देनेवाली एक रतिकी मूर्ति बनानेमें खो गयी थी। इसी समय कोई एक पुरुष उसके पास आया। कितना सुंदर था वह! 'किसकी इज़ाज़तसे आप भीतर आये?' प्रश्न उसके होंठोंपर आया! परंतु, ऐसा उद्धत प्रश्न क्या कोई तरुण स्त्री किसी सुंदर पुरुषसे कभी पूछ सकती है?

उसे पहले यह कल्पना तक न आयी कि वह पुरुष नीचे पड़ी हुई हथौड़ीको उठाकर अपनी मूर्तिको विद्रूप कर रहा है। बादमें, फिर अवश्य – मूर्तिकी ओर दृष्टि जाते ही उसे उस पुरुषपर बड़ा क्रोध आया। परंतु उसकी ओर देखते ही वह क्रोध जाने कहाँ भाग गया!

बात-की-बातमें उस मूर्तिके आसपास बालक भी इकट्ठे हो गये। कौन जाने वह पुरुष उन्हें कहाँसे ले आया था! हरएक बालक उस हथौड़ीको उठाता और छिन्नभिन्न हुई उस मूर्तिको और भी अधिक विद्रूप कर डालता। अब उस पुरुषपर उसे बेहद क्रोध आया। उसे लगा – कहींसे विष ले आऊँ और उसे पिलाकर —

उसकी तरह इसका भी स्वप्न यहीं भंग हो गया। उसे थरथर काँपती हुई देखकर उसने पूछा, – 'तुम इस तरह क्यों कर रही हो? तुमने स्वप्नमें क्या देखा?'

'तुम्हें कोई विष...' – आगे उससे बोला नहीं जाता था। उसने डरसे उसे दृढ़ आलिंगन कर लिया।

वह बोला, – 'मैंने भी इसी तरहका एक स्वप्न देखा। कोई तुम्हें विष... भीरु कहींकी! तुम्हें और हमें कोई विष पिला दे, इसलिये क्या हम मर जानेवाले हैं?'

उसकी बातका रुख वह समझ न पायी। परंतु उसके हँसते हुए शब्दोंसे उसका भय अवश्य जाता रहा।

वह हँसते हँसते बोला, – 'हमारे पास अमृत है न?'

उसने नज़रोंसे प्रश्न किया, – 'कहाँ?'

इस प्रश्नका उत्तर उसने अधरोंसे दिया।

उस अमृतके सुंदर छोटेसे प्यालेमें वे विषैले स्वप्न ही नहीं, परंतु उनके सारे दुख डूब गये!

●●●

१८
ज्योति !

उस चित्रका नाम था ' रंगमंदिर '।

उस सुंदर चित्रको देखकर दोनों ही क्षण-भर अपना भान भूल गये।

थोड़ी देरके बाद रानीने कहा, - ' इस चित्रको शोभा दे ऐसी चौखट कहाँ मिलेगी ? '

राजा भी सोचमें पड़ गया। यह स्पष्ट था कि चौखटके बिना चित्र बहुत दिनों-तक नहीं टिकेगा। परंतु - अमृतको सोनेके प्यालेमें ही रखना चाहिए !

अपने राजके सबसे सुंदर सागौनकी चौखट राजाने जानबूझकर बनवायी। उस चौखटको रंगने तथा उसपर नक्काशी बनानेके लिये राजके सारे अच्छे अच्छे कलाकार इकट्ठा हुए थे।

ऐसी अपूर्व चौखटमें बैठाये हुए सुंदर चित्रको देखकर राजकवि बोले, —

' समसमा संयोग हो गया यह ! '

• • •

कालके प्रवाहमें उस चित्रका रंग धीरे धीरे उड़ने लगा।

राजा और रानीको बड़ा दुख हुआ।

और कुछ दिन बीत गये। वह चित्र– रम्य सायंकालका अब अँधेरी रातमें रूपान्तर हो गया था।

उस चित्रकी ओर कोई फूटी आँखसे भी न देखता था।

राजाने उसे चौखटसे निकालकर फेंक देनेकी आज्ञा दी।

• • •

वह सुंदर चौखट जहाँके तहाँ ही रखी थी। यह पता चलते ही कि राजाको एक ऐसे चित्रकी आवश्यकता है जो उस चौखटको शोभा दे, सारे चित्रकार अपने अपने सुंदर चित्र लेकर राजधानीमें आये।

चित्रोंको देखते देखते रानीकी दृष्टि एक चित्रपर जम गयी। उस चित्रका नाम था– 'मंदिर'!

रानीने राजाकी ओर अर्थ-पूर्ण दृष्टिसे देखा। राजा चौखटकी ओर देखता हुआ बोला, – 'यह चित्र इस चौखटमें न आयेगा। यदि चित्रके मंदिरका शिखर काट दिया जाये, तो शायद —'

चित्रकारने अपने चित्रको राजाके हाथसे एकदम पीछे खींच लिया।

• • •

रानी किसी भी सुंदर चित्रको देखकर राजाकी ओर अपनी गर्दन मोड़ती, तो राजा चौखटकी ओर देखने लगता। परंतु रानीकी रुचिका एक भी चित्र उस चौखटमें न बैठता!

'मनुष्य' नामक चित्रमें यह दृश्य दिखाया गया था कि एक ऊँची ऊँची जा रही ज्योति आसपासके भयंकर अँधकारको प्रकाशमान कर रही है। परंतु इस चित्रको चौखटमें बैठानेके लिये उस ज्योतिके तांडवनृत्यके कुछ भागको काट देना आवश्यक था।

'तांडव' चित्रमें सागरकी क्षुब्ध तरंगें इस ढंगसे चित्रित की गयी थीं कि उनमें भूखे मनुष्योंकी क्रोधित मुद्राएँ व्यक्त हों। परंतु चौखटके भीतर न समाने-वाले भागको काटकर, वह यदि चौखटमें बैठा दिया जाता तो, ऐसा लगता कि वे तरंगें समुद्रकी नहीं, बल्कि सरोवरकी हैं।

राजाने रानीको यह महसूस करा दिया कि चौखटके बनवानेमें उन्हें कितने कष्ट उठाने पड़े। अन्तमें उसने एक ऐसा चित्र चुना जो चौखटमें ठीक तरह बैठ सके।

उस चित्रका नाम था – ' नन्हे फूल ! '

हरी घासपर खिलनेवाले छोटे फूलोंका चित्र था वह !

● ● ●

दूसरे दिन सुबह वह चित्र ज़मीनपर पड़ा फड़फड़ाता हुआ दिखायी दिया। किसीने उसकी चौखट तोड़-मरोड़कर उसके टुकड़ोंको नज़दीक ही फेंक दिया था।

राजाने क्रोधसे आगबबूला होकर अपराधीको उसके सम्मुख उपस्थित करनेकी अपने सेवकको आज्ञा दी।

एक क्षणमें रानी उसके सामने आकर खड़ी हो गयी !

● ● ●

रानी ऐसा अपराध करे, इसका राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने क्रोधभरे स्वरमें प्रश्न किया, -- ' क्या, तुमने यह चौखट तोड़ी है ? '

' हाँ। '

' क्यों ? क्या, इसलिये कि वह खराब थी ? '

' नहीं ! बल्कि इसलिये कि मुझे दूसरी चौखट चाहिए ! '

' दूसरी ? किसलिये ? '

रानीने राजाके सामने एक चित्र बढ़ा दिया। उसमें एक क्षुब्ध ज्योति तांडव-नृत्य करती हुई आसपासके अंधकारको प्रकाशमान कर रही थी।

● ● ●

१९
दो मेघ

दोनों ही जल्दी जल्दी जा रहे थे। धक्का लगते ही उन्होंने एक दूसरेकी ओर देखा।

दोनों मेघ थे वे!

सफ़ेद मेघ ऊपर ऊपर जा रहा था; काला नीचे नीचे आ रहा था। सफ़ेद मेघने काले मेघकी ओर तुच्छतापूर्वक देखा। क्षण-भर ठहरकर वह बोला, —

'कहाँ चले?'

'पृथ्वीपर। तुम कहाँ जा रहे हो?'

'स्वर्गमें!'

सफ़ेद बादल उड़ान करनेवाले विमानकी तरह ऊपर ऊपर जाने लगा। वह काला बादल टूटे हुए विमानकी तरह जल्दी जल्दी नीचे आने लगा।

सफ़ेद बादलने अभिमानसे पीछे मुड़कर देखा। कितना सुंदर दीख रहा था काला बादल! उसमेंसे चमसे चमक जानेवाली वह बिजली —

दिव्यत्वका साक्षात्कार था वह! सफ़ेद बादलने निराशासे स्वयं अपनी ओर देखा। बिजलीका धुँधलासा चमत्कार भी वहाँ दिखायी नहीं देता था।

उसने उत्सुकतासे ऊपर देखा। इस आनंदमें कि शीघ्र ही मैं स्वर्गमें प्रवेश करूँगा, वह काले बादलके उस दिव्य तेजको भूल गया।

थोड़ी देरके बाद उसने मुड़कर नीचे देखा।

काले मेघका कहीं पता न था। परंतु धरणी स्नानगृहसे बाहर निकल रही तरुणीकी तरह दीख रही थी, वृक्ष और लताएँ गुदगुदाये गये बालकोंकी तरह हँस रही थीं और पक्षी वृक्षोंपर बैठे हुए आनंदसे अपने अंग झटकार रहे थे।

सफ़ेद बादल स्वर्गके द्वारमें जाकर पहुँचा। उसकी कल्पना थी कि उसे सरलतासे भीतर प्रवेश मिल जायगा!

परंतु द्वारपर खड़ा पहरी उसे भीतर नहीं आने देता था। वह कहने लगा,–'भीतर एक ही स्थान खाली था। पर वह कुछ समयके पहले ही भर गया!'

अपने पीछे आनेवाले अनेक सफ़ेद मेघोंको इस मेघने देखा था – वह स्मरण करने लगा। छिः, मेरे आगे कोई भी न था!

सफ़ेद मेघ असमंजसमें पड़ गया। उसने पूछा,–'किसे मिल गया वह स्वर्गका स्थान?'

'एक काले मेघको!'–पहरीने कहा।

'काले मेघको?'

'हाँ। तप्त हुई पृथ्वीको शान्त करनेके लिये उसने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया!'–आकाशवाणी हुई।

●●●

२०

पड़ोसी

कितना सुंदर सरोवर था वह! जैसे आकाशकी मेघमालाओंने आते-जाते अपना शृंगार देखनेके लिये भव्य सुंदर दर्पण ही पृथ्वीपर रख दिया था!

उस सरोवरके किनारेपर सुंदर झाड़ी भी थी। जैसे गोल बिल्लोरी दर्पणकी नक्काशीदार चौखट ही हो!

सरोवरमें मछलियाँ आनंदसे नाचती रहतीं। झाड़ीमें पक्षी उल्लाससे गाते रहते।

संयोगसे एक मछलीका एक पक्षीसे परिचय हो गया!

पक्षीने पूछा, – 'सरोवरके भीतर तैरनेमें बड़ा आनंद आता होगा। है न?'

अहंकार किसे नहीं होता? मछलीने सरोवरके भीतरके चमत्कारोंका वर्णन किया। वह वर्णन जब समाप्त हो गया, तब मछलीने पूछा, – 'आकाशमें उड़ते हुए बड़ा मज़ा आता होगा। है न?'

पक्षीने किसी महाकविको शोभा दे ऐसा वर्णन किया। मछली मन-ही-मन तड़पने लगी।

शीघ्र ही दोनोंकी सरोवरके किनारे भेंट हुई। मछली पानीके बाहर निकल रही थी। पक्षी पानीमें उतर रहा था।

पेड़पर चढ़कर फिर आकाशमें उड़नेकी महत्त्वाकांक्षा थी !

परंतु मछली वृक्षतक भी नहीं पहुँच पायी। सरोवरके किनारे ही वह तड़पकर मर गयी।

और पक्षी भी सरोवरकी तलीतक न पहुँच पाया। पानीके भीतर उगनेवाली बेलोंके जालमें उसके पैर फँस गये और उसका दम घुटकर वह बीचहीमें अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठा !

उस दिन सरोवरके किनारेपरके पक्षी आपसमें कह रहे थे, – 'यह बहुत ही अच्छा है कि इस झाड़ीके पास यह सरोवर है ! इसी तरह बीच बीचमें हमें खानेको मछलियाँ मिलती रहेंगी !'

और सरोवरकी मछलियाँ कह रही थीं, – 'हमारे सरोवरके पास जो झाड़ी है वह हमें वरदानके स्वरूप है। इसी तरह बीच बीचमें हमें खानेको पक्षी मिलते रहेंगे !'

● ● ●

२१
दो आवाज़ें

खुन्-खुन्-खुन्

बैलोंके गलेके घुँघरूँ बज रहे थे।

प्रातःकालका प्रसन्न और प्रशान्त समय।

घुँघरुँओंकी इस मंजुल आवाज़को सुनकर किसी कविको लगा होता—जागी हुई सृष्टिबालिका धीरेसे पैर हिला रही है और उसके पैरके चांदीके कड़े बज रहे हैं।

दूसरे किसी कविकी कल्पनाको आभास होता—रात्रिमें पृथ्वीपर क्रीड़ा करनेके लिये आयी हुई अप्सराएँ जल्दी-जल्दी स्वर्गको लौट रही हैं और उनके पैरोंके पैंजन रुमझुम रुमझुम बज रहे हैं!

कर्-कर्-कर्र्-कर्रर्—

गाड़ी उतारपर थी इसलिये पहियोंकी कर्णकटु आवाज़ कर्कशतासे सुनायी देने लगी।

कविजनोंने इस आवाज़का भी काव्यमय अर्थ लगाया होता—जागी हुई सृष्टि-बालिका रो रही है अथवा रात्रिमें पृथ्वीपर उतरे हुए लालची भूत चीखते हुए नरककी ओर दौड़ रहे हैं!

परंतु उनके इस काव्यको घुँघरूँ हवामें उड़ा देते! अपने मधुर गीतको बेमज़ा करनेवाले पहियोंपर बड़ा क्रोध हो आया था उन्हें!

घुँघरुँओंने बड़े तावके साथ गाड़ीवानसे पूछा, – 'यह कौन रो रहा है ?'

'रोना नहीं है वह !'

'रोना नहीं है ? उल्लू, रींछ, कपोत सभीके स्वर एकत्रित हुए दीख रहे हैं इन पहियोंकी आवाज़में। उनसे कहो कि वे अपना यह रोना बंद कर दें !'

'परंतु गाड़ी उतारपर चल रही है!'

'उतार हो या चढ़ाव ! हम कुछ नहीं सुनना चाहते ! हम बिलकुल नहीं चाहते कि इस प्रकारकी रें रें हमारे पीछे लगी रहे। आवाज़ कैसी होनी चाहिए! खुन् – खुन् – खुन् — छुम् – छुम – छुम् —'

गाड़ीवान सोचमें पड़ गया।

उसे चुप देखकर घुँघरुँओंने उससे कहा, –'पगले, ज़रूरत क्या है इन रोने· वाले पहियोंकी ? कितनी सुन्दर गाड़ी है, कैसे सुन्दर बैल हैं, तुम जैसा हाँकनेवाला है, मधुर संगीतसे प्रवासकी थकानको दूर करनेवाले हम जैसे घुँघरूँ हैं – भगा दे उन पहियोंको ! फिर देख सिर्फ खुन् – खुन् – खुन् —! छुम् – छुम् – छुम्– छुम् – छुम —'

गाड़ी कर्रर आवाज़ करती हुई आगे बढ़ने लगी। और घुँघरू ? उनकी माथा पच्चीसे तंग आकर गाडीवानने उन्हें ही निकाल बाहर कर दिया था। वे गाड़ीके सामानमें मूक होकर पड़े हुए थे !

उन्होंने गानेकी कोशिश की। परंतु उनके मुँहसे स्वर ही न निकलता था !

थोड़ी देरके बाद पहियोंने गाड़ीवानसे कहा, -- 'घुँघरूँ कहाँ गये, भैया ? उनसे ज़रा गानेको तो कह दो। कितना प्यारा गाते हैं वे ! नहीं तो हमारी यह किर् – किर् – किर्रर — !'

●●●

२२
चमत्कार

बड़ी आवाजाहीका रास्ता था वह! प्रातःकालसे लेकर सायंकालतक चिऊँटि-योंकी तरह मनुष्य आते-जाते थे उस रास्तेसे! चिऊँटियोंकी कतारोंमें बीच-बीचमें चींटे घुस जावें, उस तरह ताँगे, मोटर, लॉरी इत्यादि वाहन मनुष्योंकी उस तरह भीड़में बड़े खिलकर दीखते थे।

इस रास्तेके बड़े पुलके एक सिरेपर एक लूला भिखारी प्रति दिन सबेरे लंगड़ते लंगड़ते आकर बैठ जाता। आने-जानेवाले हरएक मनुष्यकी ओर करुणा-भरी दृष्टिसे देखता हुआ वह चिल्लाता, – 'लूलेको एक पैसा – दे – भगवान!'

ज़मीन कितनी भी तप जावे, पर आकाशमें शानसे घूमनेवाले श्वेत मेघोंसे कहीं पानीकी बूँद नहीं गिरती!

अपने सामनेसे आगे जा रहे मनुष्योंकी ओर लूला बड़ी उत्सुकतासे देखा करता। हर रोज़ सुबह पुलके दूसरे सिरेपर एक अंधा आकर बैठा रहता। 'अंधेको एक पैसा – दे – भगवान!' – उसकी यह कर्कश बिनती लूलेको स्पष्ट सुनायी पड़ती, उसके हृदयमें तूफ़ान मच जाता। उसे डर लगता, – 'मेरे पात्रमें एक पाई भी न डालनेवाला कोई कुबेर उस अंधेके पात्रमें पैसा-इकन्नी-दुअन्नी-चवन्नी डाल दे तो!'

मनुष्योंकी आहट पाते ही बड़े दीन भावसे अंधा गढ़े हो गयी अपनी आँखोंसे ऊपर देखता। यमराजसे पतिके प्राण माँगनेवाली सावित्रीकी मुद्राका कारुण्य उसके चेहरेपर दृष्टिगोचर होता; परंतु पद-पदपर उसे यह अनुभव होता कि सावित्रीका जमाना अब लद चुका है।

धीरे धीरे दोनोंके ध्यानमें यह बात आ गयी कि खाली पात्रसे हम लोगोंकी गुज़र न होगी। हम दोनों ही बैठे रहते हैं – बैठे रहनेवालोंकी किस्मत भी बैठी रहती है – इत्यादि विचार उन दोनोंके मनमें उठने लगे।

लूला लंगड़ते लंगड़ते अंधेकी ओर जाने लगा। उसकी आहट पाकर अंधा भी लाठी टेकता हुआ उसकी ओर आया। पुलके बीचोबीच दोनोंकी मुलाक़ात हो गयी।

कितनी ही देरतक उन दोनों ग़रीबोंकी मंत्रणा चल रही थी। हिटलर और मुसोलिनीकी महायुद्धकी मंत्रणा भी इसकी अपेक्षा कम समयमें समाप्त हो गयी होगी!

जब वे एक दूसरेसे बिदा हुए तब दोनोंहीके चेहरोंपर दिग्विजयी वीरोंका हास्य झलक रहा था!

● ● ●

दूसरे दिन पुलसे जानेवाले हरएक मनुष्यको कुछ भूला-भूला-सा लगने लगा!

पुलके इस सिरेपर लूला न था।

और पुलके उस सिरेपर अंधा भी न था!

हरएकको यह शंका होने लगी कि दोनों भिखारियोंको किसी लॉटरीका पहला इनाम आधा आधा तो नहीं मिल गया?

परंतु यह शंका बहुत दिन न टिकी।

शहरके हर गली, कूचे और मुहल्लेमें वे दोनों ही लोगोंको दीखने लगे।

अंधा लूलेकी पीठपर किसी सवारकी तरह बैठकर ज़ोरसे चिल्लाया करता, – 'अंधेको – एक पैसा – दे भगवान!'

हाथी अपनी पीठपर अम्बारीको रख ले, उस तरह लूलेको अपनी पीठपर रखकर अंधा जोरसे चिल्लाता, – 'लूलेको – एक पैसा – दे भगवान्!'

उनके इस परस्पर प्रेमकी सब लोग सराहना करने लगे।

रास्तेसे जाते हुए इन दोनोंके पात्रोंमें पाई भी न डालनेवाले लोग अब उनके पात्रमें एक एक पैसा डालने लगे। उनकी इस दानशीलताकी जड़में अंधे और

लूलेके बारेमें अनुकूल मत थे या कि मनुष्यमात्रकी यह स्वाभाविक इच्छा थी कि घरके सामनेकी यह बला टल जाय, यह कौन जाने!

पात्रमें हर रोज़ पाँच-छः आने इकट्ठा होने लगे।

दोनोंहीको लगा – हमपर भगवान प्रसन्न हो गये! उन्होंने विठोबा भगवानका एक चित्र खरीदा और वे उसका पूजन करने लगे।

एक दिन – आषाढ़की एकादशी थी वह – चिकने सिक्कोंको छाँटकर अलग कर देनेके बाद भी उन दोनोंको एक रुपयेकी रेज़गारी मिल गयी थी।

रुपया – चांदीका रुपया!

दोनों ही एक दूकानपर गये और रेज़गारीके बदले एक पूरा रुपया ले आये!

● ● ●

शीघ्र ही रुपया किसके पास रखा जाय, इस विषयपर दोनोंमें लड़ाई शुरू हो गयी!

लूला कहता – रुपया मेरे पास ही रहना चाहिए! अंधेको कुछ दीखता नहीं है! होटलमें बड़े अधन्नेके बदले कहीं रुपया ही दे दे तो? —

अंधेका ख्याल था – रुपया मेरे पास ही रहना चाहिए! लूला दौड़ नहीं सकता। कोई भी गुंडा उसे पटककर उससे रुपया छीन लेगा और फिर —

सूखी हुई घासकी ढेरीपर कोई चिनगारी रख दे, उस प्रकार उस रुपयेने उन दोनोंकी दशा कर डाली। बात-की-बातमें दोनोंके धुँधवा रहे मनोंका विस्फोट हो गया। एक दूसरेके दोष निकालना, एक दूसरेपर ताने कसना, गाली-गलौज, किसीकी भी हद न रही।

'तुझ जैसे मुरतंडेको पीठपर लादकर घूमते घूमते मुझे खूनकी कय होने लगी है!' – लूलेने कहा।

'तुझ जैसे गदहेकी पीठपर बैठकर हिचकोले खाते खाते मेरी अंतड़ियोंका कचूमर निकल गया है!' – अंधेने उसे उत्तर दिया।

गालियाँ खत्म हुईं; गले सूख गये!

अंतमें थककर दोनोंने ही विठोबाके चित्रके सामने रुपया रख दिया और उससे प्रार्थना की, – 'भगवान, तुम्हीं न्याय कर दो हमारा!'

● ● ●

विठोबा भगवानको उन दोनोंकी लड़ाईपर क्रोध हो आया था !

परंतु चित्रके सामने पड़ा हुआ वह रुपया कह रहा था, —

'भगवान, मैं अकेले अंधेका नहीं हूँ और न अकेले लूलेका ही हूँ। मैं दोनोंका हूँ। तुम्हीं मेरा न्याय करो !'

भगवानके सामने समस्या खड़ी हो गयी कि आखिर यह झगड़ा कैसे मिटाया जाये। बहुत विचार करनेके बाद भगवानने निश्चय किया कि अंधेको दृष्टि दे दूँ और लूलेको चलनेकी शक्ति दे दूँ जिससे दोनोंकी लड़ाईकी जड़ आप ही आप नष्ट हो जायेगी। फिर उन्हें एक दूसरेपर अवलंबित नहीं रहना पड़ेगा। प्रत्येककी आमदनी अलग अलग हो गयी कि फिर —

विठोबाने लूलेको सपना दिया, - 'मैं तुझे एक वरदान देने आया हूँ। जो चाहे सो माँग ले !'

विठ्ठल भगवानका विश्वास था कि लूलेके मुँहसे यही शब्द सुननेको मिलेंगे कि 'भगवान, मुझे ऐसी शक्ति दीजिये जिससे मैं अच्छी तरह चल-फिर सकूँ', लूलेके पैरोंपर हाथ फेरनेके लिये भगवान मुड़े भी —

इसी समय उन्हें लूलेके शब्द सुनाई दिये, – 'भगवान, मेरी एक ही इच्छा है। उस तरफ़ सोये हुए उस अंधेको लूला कर दे !'

भगवानको शक हुआ कि मैं कहीं नींदमें तो नहीं हूँ! परंतु वह क्षण-भरके लिये ही। लूला बार बार कह रहा था, – 'उस अंधेको लूला कर दे ! भगवान, उस अंधेको लूला बना दे !'

परंतु अंधेकी चलनेकी शक्तिका नाश करनेके लिये भगवानका हाथ आगे नहीं बढ़ता था।

अंधेको सपना देकर उन्होंने कहा, – 'मैं तुझे एक वर देने आया हूँ। जो इच्छा हो सो माँग ले ! परंतु माँगनेसे पहले ठीक तरह सोच लेना। तुम जो माँगोगे वह मैं दूँगा !'

भगवान उसकी आँखोंपरसे हाथ फेरनेके लिये उत्सुक हो गये थे !

परंतु अंधा हँसते हुए बोला, – 'भगवान, मेरी एक ही इच्छा है। मेरे उस-पार जो लूला बैठा है न? उसे अंधा कर दे !'

• • •

दूसरे दिन सुबह वे दोनों सरकते सरकते विठोबाके चित्रके पास गये और टटोलते हुए रुपया खोज़ने लगे। किसी भी तरह वे उन्हें नहीं मिल रहा था।

विकट हास्यके साथ दोनोंके ही मुँहसे एक ही उद्‌गार बाहर निकला, – 'बड़ा चमत्कार है, भई! हमारा रुपया इस भगवानने ही चुरा लिया!'

हाथमें लगी विठोबाकी तसबीरको उन दोनोंने मिलकर दूर फेंक दिया!

● ● ●

२३
निर्माल्य

पूजा समाप्तिपर आयी।

फूलोंके ढेरके ढेर भगवानपर चढ़ाये गये थे। उन पुष्पराशियोंका हर फूल हँस रहा था।

वह हास्य जैसे यह कह रहा था कि आज हमारा जीवन सार्थक हो गया!

भगवान भी हँस रहे थे। भक्तिसे प्रसन्न कौन नहीं होता?

• • •

दूसरे दिन सुबह पुजारी भगवानकी मूर्तिपरके सूख गये फूलोंको निकालने लगा।

फूल करुणा-भरी दृष्टिसे मूर्तिकी ओर देखते हुए बोले, — 'भगवान, आप भावके भूखे हैं। रूप सूख गया, सुगंधि जाती रही, इसलिये आप कुछ अपने भक्तोंको नहीं भुला देंगे?'

भगवानको फूलोंकी बात सुनायी ही न दी। वे इस विचारमें खो गये थे कि संसारके दुःख समूल किस तरह नष्ट होंगे!

• • •

पूजाके लिये ताज़े फूलोंके ढेरके ढेर भीतर आने लगे।

कोनेमें पड़े हुए फूल चिल्लाये, – 'भैया, जैसे आये हो, उसी तरह चुपचाप लौटा जाओ। नहीं तो – कल हम हँस रहे थे। परंतु आज? अंधभक्तिने ही हमारा सत्यानास —'

'पुजारी, इस निर्माल्यको अभीतक बाहर क्यों नहीं फेंक दिया?' – मूर्तिके मुँहसे एकदम गंभीर उद्गार निकले!

सभामंडपसे बाहर फेंके जानेवाले फूल चीख़ पड़े, – 'हम निर्माल्य! और तुम? तुम पत्थर हो – शुद्ध पत्थर – यह भगवान कैसा? यह —'

आगेके शब्द किसीको भी सुनायी न पड़े। पूजा आरंभ हो गयी थी – गंभीर घंटानाद – भक्तिपूर्ण स्तोत्रपाठ – देवाधिदेवके जयजयकारसे सारा वातावरण भर गया।

● ● ●

पूजा समाप्त हुई! ताज़े फूलोंके ढेरके ढेर भगवानपर चढ़ाये गये। उस ढेरका हर फूल हँस रहा था।

जैसे वह हास्य यही कह रहा था कि हमारा जीवन सार्थक हो गया!

भगवान भी हँस रहे थे। भक्तिसे किसका मन प्रसन्न नहीं होता?

● ● ●

२४

वायुकन्या

उर्विकाने ऊपर आकाशकी ओर देखा। तारकाएँ कौन कहेगा उन्हें ? जहाँ तहाँ कमल ही कमल खिले हुए थे। उसने खिन्न दृष्टिसे नीचे आसपास नज़र घुमायी। खिले हुए फूल ? छिः ! एक भी नहीं। सारी गूंगी कलियाँ ! उसने फिर ऊपर दृष्टि दौड़ायी। आकाशके कमल नाच रहे थे। उसे भ्रम हुआ कि गगनिका झूला झूल रही है और झोंकेकी हवासे ही इन कमलोंको डुला रही है। अनजाने उसका हाथ अपने अंचलकी ओर गया। अंचल हिला। परंतु सिर्फ़ पत्तोंकी सरसराहट हुई। वह कर्णकटु आवाज़ उससे सुनी नहीं जाती थी। जैसे दैव उसकी सारी आकांक्षा-ओंको पैरोंतले रोंदता हुआ ऊपर गगनिकाकी ओर दौड़ता जा रहा था।

सरसराहट थक गयी !

उर्विकाने उत्कंठासे पुकारा, – 'दीदी !'

झींगुरकी झंकार – छिः ! उसके मनकी निराशाका अस्फुट क्रंदन था वह ! अप्सराएँ आकाशके नील सरोवरमें जलविहारके लिये अष्टमीके चन्द्रकी नौका छोड़ रही थीं। उस रमणीय दृश्यको देखनेमें तल्लीन हुई गगनिकाको उर्विकाकी पुकार सुनाई पड़ गयी थी। परंतु उत्तर देनेके लिये गरदन कौन घुमाये ? दिव्य सौंदर्यके आस्वादसे क्या उसने समयके लिये वंचित-सा नहीं हो जाना पड़ेगा ?

उर्विका झल्ला गयी। उसके मनमें आया – 'हम दोनों ही वायुकन्याएँ हैं। संयोगसे गगनिकाको उच्च स्थान प्राप्त हुआ। इसलिये वह अक्षरशः चढ़ गयी। बहनकी पुकारको उत्तर देनेकी भी मनुष्यता उसमें नहीं? कितनी उद्धत!' उर्विकाके लाचार हुए मनका विस्फोट हुआ। वह चीखी, – 'दीदी!'

उलूककी 'घू घू'की तरह वह भयंकर स्वर कानोंमें पड़ते ही गगनिका चौंकी। उसने त्रास-पूर्ण पर कंपित स्वरमें पूछा, – 'क्या है री?'

'दीदी —'

'चुप रह! अब ये लाड़ नहीं चलेंगे। मुझसे यदि बातें करना है, तो मुझे दीदीजी कहना होगा, समझी?'

'पर तुम और मैं – दोनों बहनें —'

'मुझे यह रिश्ता याद नहीं।'

'अरी —'

'अगर 'अजी' कहे, तो क्या बत्तीसी झड़ जायेगी तेरी?'

'अजी दीदीजी, आप और मैं – दोनों ही वायुकन्याएँ हैं!'

'परंतु मेरा विवाह हुआ है सुंदर स्वर्गसे! तेरा पति – वह कुरूप मृत्युलोक है – उसका संपर्क भी मैं नहीं चाहती।'

'दीदीजी, मेरी बहुत इच्छा है कि ऊपर आऊँ, अपने अंचलकी हवासे आकाशके कमलोंको डुलावूँ —'

'और नहीं है तेरी कोई इच्छा?'

उर्विकाको लगा, कि किसी ऊँचे वृक्षपर पक्षियोंके पंखोंकी कर्णकटु फड़फड़ाहट हुई। परंतु वह गगनिकाके उपहासका हास्य था।

'दीदीजी, कम-से-कम घडी-भरके लिये तो मैं ऊपर आती हूँ, जी!'

'तू ऊपर आयेगी? और फिर मैं कहाँ जाऊँगी? यहाँ तो सिर्फ़ मुझे पर्याप्त हो उतना ही स्थान है!'

'तुम थोड़ी देरके लिये नीचे चली आओ!'

'तुम नहीं, आप!'

'आप थोड़ी देरके लिये नीचे आ जाइये न?'

'तेरी जगहपर?'

'हाँ।'

'बड़ी होशियार ही है न तू?'

'दीदीजी —'

ऊपर, चंद्रकी नौकामें बैठी अप्सराओंके डांडोंसे उछलनेवाली जललहरियोंके आगे, तारकाओंके कमल, बीच-बीचमें झूम रहे थे।

'दीदीजी —'

कंठ सूख जातेतक उर्विकाने पुकारा। परंतु गगनिकाने एक शब्दसे भी उसे उत्तर न दिया। उर्विका फफक-फफककर रोने लगी। कितनी ही देरतक उसके आँसू टप टप आवाज़ करते हुए पृथ्वीपर गिर रहे थे।

● ● ●

आकाशके कमल बंद होने लगे। पृथ्वीके फूल खिलने लगे। फूलोंकी सुगंधि और पक्षियोंके कलरवने उर्विकाके तप्त हृदयको थोड़ा शान्त किया।

पर वह क्षण-भरके लिये ही! उसने कोशिश की कि फूलोंकी सुगंधिको वह दृढ़तासे अपने हृदयसे चिपकाये रहे। परंतु वह ठहरा दुनिया-भरका नटखट! उसकी आँखों सामने ही वह गगनिकाकी ओर दौड़ता हुआ चला गया। पक्षियोंका भी वही हाल! वे ऊपर न जायें, इसलिये उर्विकाने मीठे मीठे गीत गाये। परंतु ऊपर गगनिका उन्हें आकाशके मेघोंके नये नये और रंगबिरंगी खिलौने दिखा रही थी। अपने अंगोंकी तरह सुंदर दिखायी देनेवाले खिलौनोंको देखकर पक्षी किस तरह चुप बैठ सकते थे? वे फुर्रसे उड़ गये।

बड़ी गिड़गिड़ाहटसे उर्विकाने गगनिकाको पुकारा, — 'दीदीजी!'

'क्या है?'

'अब भी क्या मैं उपर आऊँ?'

अमीरके शब्द जवाहरातकी तरह कीमती होते हैं। उर्विकाको कोई उत्तर प्राप्त न हुआ।

'दीदीजी — क्षण-भर — सिर्फ़ एक क्षण!'

'उर्विका, मैं इतनी भोली नहीं हूँ!'

उर्विका इस वाक्यका अर्थ ही न समझ पायी!

'ऊपर आऊँ क्या मैं, दीदीजी?'

'और मैं कहाँ ज़ाऊँ? नीचे? छिः! वह देख सूर्य कितना ऊपर आ गया।

धीरे धीरे ज़मीन जलने लगेगी। नीचे तो मुझे जीवित रहना कठिन हो जायेगा। तेरी जगह तुझे ही सलामत रहे, समझी उर्विका?'

'पर —'

'पर-वर मैं कुछ नहीं सुनना चाहती। बहन है, इसलिये इतनी बातें भी कर रही हूँ मैं! वरना —'

गगनिका अपनी केश-भूषा करने लगी। उर्विकापरके फूलोंकी सुगंधको उसने अपने केशकलापमें लगाया। आकाशके दर्पणके सामने बैठकर, उर्विकाके पक्षियोंके सुंदर पंखोंको फुलोंकी तरह उसने अपने केशोंमें लगाया।

उर्विका मन-ही-मन खार खा रही थी। प्रेम-भावसे नहीं, तो न सही — परंतु कम-से-कम कुछ धींगाधींगी करके भी ऊपर जा सकूँगी या नहीं, यह देखनेका उसने निश्चय किया। उसने बहुत हाथ-पाँव मारे! उसके रुद्रावतारको देखकर वृक्ष और लताएँ काँपने लगीं। हर तरफ़ खलबली मच गयी। परंतु किसी भी तरह उससे ऊपर जाते न बनता था। उसे गगनिकाके शब्दोंकी याद हो आयी — तेरा पति कुरूप मृत्युलोक है! मृत्युलोकसे बँधी हुई ब्याहकी गाँठ! वह टूटेगी कैसे? मृत्युतक मुझे नीचे ही रहना होगा! गगनिकाको उच्च स्थान देनेवाले दैवने ही मुझे नीचे दबोच दिया है। फिर हाथ-पाँव मारनेसे क्या लाभ? सिर फोड़ लेनेसे क्या ललाटकी रेखा कभी बदलती है? सच तो यह है, कि जो है उसीमें सुख मान लेना अच्छा है! इस निराशाके तत्त्वज्ञानसे उसके मनकी अस्वस्थता रुकी नहीं। परंतु शरीरकी छट-पटाहट ज़रूर ठंडी पड़ गयी।

• • •

घड़ी-घड़ीमें ज़मीन अधिकाधिक तपने लगी। उर्विकाका अंग जलने लगा। उस जलनसे विह्वल होकर उसने करुण स्वरमें गगनिकासे पूछा, — 'दीदीजी, क्या आपके पैर जल रहे हैं?'

गगनिका हँसी। ऊपरके शीतल लता-कुंजमें वह सुखसे पड़ी हुई थी।

'दीदीजी, दया कीजिये मुझपर। मेरा सारा अंग जैसे बिलकुल जला जा रहा है। ऊपर ले लीजिये मुझे।'

'अभी?'

'ओ माँ! बदनमें फोले आ गये, दीदी!'

गगनिका दूर दीखनेवाले मृगजलके भव्य दर्पणमें अपना मोहक रूप देखती हुई एक प्रेम-गीत गुनगुनाने लगी।

'दीदीजी, माँ माँ! अब बिलकुल नहीं सहा जाता, दीदीजी!'

उर्विकाको लगने लगा जैसे किसीने उसे तपे हुए तवेपर बैठा दिया है। इन कष्टोंसे छुटकारा पानेका एक ही मार्ग! ऊपर जाना। पर ऊपर जावें कैसे?

सुबहके शान्त समय उसने हाथ-पाँव पटके थे। परंतु वह सब बेकार हुआ था। उसीको फिरसे करनेमें क्या लाभ था?

परंतु प्राणोंके भयसे मनुष्य आखिर कुछ न कुछ तो करता ही है कि नहीं। अंग जलना शुरू हो जानेपर स्वस्थ कैसे बैठे? जलनसे बचनेके लिये उर्विका वेगसे इधर-उधर दौड़ने लगी।

कितनी ही देरतक किसी यंत्रकी तरह उसकी हलचल ज़ारी थी। उसे लगने लगा जैसे उसे गश आ रहा है। उसे लगा, इस श्रमसे ही बेहोश होकर मैं गिर पड़ूँगी और अन्तमें मर जाऊँगी। उसे पता नहीं चलता था कि वह क्या कर रही है। पर वह आँखें बंद किये हुए लगातार भाग रही थी। हाथ-पाँव पटक रही थी।

कितनी ही देरके बाद उसने आँखें खोलकर देखा। आकाश पहलेसे अधिक समीप आ गया था। अंगकी जलन भी लुप्त हो गयी थी। उसने देखा कि वह एक शीतल लताकुंजके द्वारमें खड़ी हुई है। उसने कुतूहलसे नीचे देखा।

गगनिका आड़े-टेढ़े हाथ नचाकर चिल्ला रही थी,—'उर्विका, ऊपर आने दे न, मुझे? घड़ी-भरके लिये—कम-से-कम एक क्षणके लिये ही!'

●●●

२५
मित्रता

आत्माएँ दो,पर प्राण एक – इस प्रकार स्वर्गलोकमें उनकी ख्याति थी। अमृत पीना हो, कल्पवृक्षके तले होनेवाले भोजनमें भाग लेना हो अथवा हरसिंगारके फूलोंको चुनकर उन्हें अप्सराओंको अर्पण करना हो – किसी भी विषयमें उन दो आत्माओंमें भेदभाव अथवा मत्सर कभी भी पैदा न हो सका।

उनका पुण्यसंचय एकसाथ ही समाप्त हुआ। तब मृत्युलोकमें उन्हें एकदम रवाना कर देनेका निर्णय हुआ। दोनों ही आनंदित हुईं। उन्होंने भगवानसे प्रार्थना की, – 'देव, हमें किसीका भी जन्म दें। पर एक ही ठौर – और बिलकुल नज़दीक नज़दीक हम दोनोंको पैदा करें। एक दूसरेके सहवासमें, हम मृत्युलोकमें भी स्वर्गसुख प्राप्त कर लेंगीं।'

भगवानने हँसकर उनकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया।

• • •

उन दोनोंको अरण्यमें वृक्षोंका जन्म प्राप्त हुआ। दोनों वृक्ष एक दूसरेसे चिपके हुए उगे। परंतु एक वृक्ष ऊँचा बढ़ गया और उसकी शाखाओंका खूब विस्तार हुआ। दूसरा बाढ़ रुक जानेके कारण छोटा रह गया। छोटे वृक्षको हमेशा धूप लेनेकी इच्छा होती। वह गिड़गिड़ाकर ऊँचे वृक्षसे कहता, – 'भैया, तुम

अपनी टहनियाँ ज़रा दूर हटा लो! कम-से-कम थोड़ी-सी तो धूप मुझे मिल जाने दो!'

बड़े वृक्षकी शाखाएँ उपहाससे अपने हाथ नचा देतीं जिससे वे थोड़ी हिल जाया करतीं। इससे अधिक और कुछ न होता! उसने छोटे वृक्षको कभी भी धूप न मिलने दी।

छायामें बढ़ा हुआ वह वृक्ष शीघ्र ही मर गया।

भगवानने इस आत्मासे पूछा, – 'तुम अपना अगला जन्म कहाँ चाहती हो?'

इस दूसरी आत्माके मनमें खलबली मच गयी। उसने खूब विचार किया। अन्तमें स्वर्गलोककी अपनी मित्रताका स्मरण कर, उसने निश्चय किया कि 'पहली आत्माके लौट आनेपर वह जहाँ जायेगी वहीं मैं जाऊँगी।'

• • •

दोनों आत्माओंको हरिणका जन्म मिला। अरण्यमें घास-पानीकी कोई कमी न थी। दोनों ही मनमाने खाते-पीते, नाचते-विचरण करते, कूदते-फंदते और छलाँगें भरते। स्वर्गसुख भी इससे अधिक और क्या होता है? परंतु स्वर्गकी अपेक्षा यहाँ लड़नेके अवसर अधिक आया करते थे। एक बार उन दोनोंमें बहस छिड़ गयी कि उन दोनोंमें अधिक सुंदर सींग किसके हैं – और मामला रक्तपाततक पहुँच गया था!

दोनों बड़े हुए। एक दिन एक हरिणीके विषयको लेकर उनमें बहस छिड़ गयी। दोनोंको वह तिलोत्तमा जैसी सुंदरी लगी। उस दिन सब लोगोंको यह भय लगने लगा कि उस अरण्यमें कहीं सुंदोपसुंदके इतिहासकी पुनरावृत्ति न हो जाय!

परंतु ऐसे वैमनस्यके प्रसंग कुल मिलाकर बहुत थोड़े ही हो आया करते।

एक दिन अरण्यमें शिकारियोंने प्रवेश किया। प्राणोंके भयसे पशुओंके दल दौड़ने लगे। ये दो मित्र भी एकसाथ भाग रहे थे। प्राणसंकटमें भी एक दूसरेको न छोड़नेका इन दोनोंने निश्चय कर लिया था।

कहींसे एक शिकारी उन दोनोंकी दिशामें आया। एक हरिणको वह दिखायी दिया। भागते भागते वह पट-से ज़मीनपर गिर पड़ा। पहलेको लगा – अपना मित्र मर गया – अब उसकी पूछताछ करनेसे क्या लाभ है? दूसरे ही क्षण उस दौड़नेवाले हरिणके शरीरमें बाण घुसा। ज़मीनपर पड़ा हुआ हरिण तुरंत उठकर उल्टी दिशामें भाग गया।

मर गये हुए हरिणकी आत्मासे भगवानने पूछा, – ‘ अब तुम अगला जन्म कहाँ चाहती हो ? ’

स्वर्गलोककी मित्रताकी धुँधली-सी याद अभी भी उसके मनको उल्लसित कर रही थी। पीछे खींचनेवाले मनको झिटकारकर उसने उत्तर दिया, – ‘ दूसरी आत्माको आने दीजिये। फिर हम दोनोंको एक ही स्थानमें बिलकुल नज़दीक नज़दीक जन्म दे दीजिये ! ’

● ● ●

एक रानीके गर्भसे जुड़वाँ भाई होकर उन आत्माओंको जन्म प्राप्त हुआ। बचपनमें दोनों राजकुमारोंके वैभवमें रत्ती-भर फ़र्क़ न पड़ा। दोनोंको लगा – ‘ स्वर्गकी तरह यहाँ भी हमारा प्रेम अब अभंग रहेगा। ’

राजकुमार बड़े हुए। युवराज कौन हो इस विषयपर चर्चा होने लगी। धर्मशास्त्रका एक मत था – राजासाहबका दूसरा ही था – और लोगोंका – पर लोगोंका मत पूछता कौन था ?

सेनापतिकी सुंदर कन्या हमेशा राजमहलमें आया करती। दोनों राजपुत्र उसे अपना दिल दे बैठे। बातचीतके सिलसिलेमें उन लोगोंको पता चला, कि जो युवराज बनेगा उसीसे वह लड़की विवाह करेगी।

एक दिन दोनों राजकुमार शिकारके लिये जंगलमें गये। राजमहलसे निकलते ही उनकी नज़रें हिंस्र पशुओं सरीखी दीख रही थीं। दोनोंने भर्रायी हुई आवाज़में एक दूसरेसे कहा, – ‘ आज बहुत बड़ा शिकार मिलेगा। ’

सायंकालको दोनों राजकुमारकी लाशें राजमहलमें लायी गयीं। कहा जाता था कि घने जंगलके कारण दोनोंको ऐसा लगा कि उस तरफ़ जंगली जानवर है और उन दोनोंने एक समय बाण छोड़ दिये। हमेशाकी अपेक्षा वह निशाना अधिक ठीक सध गया !

● ● ●

भगवानने उन दोनों आत्माओंसे पूछा, – ‘ अब तुम दोनों अपना जन्म कहाँ चाहती हो ? ’

दोनों ही एकदम बोल उठीं, –‘ कहीं भी दें, परंतु एक दूसरेसे दूर – बहुत दूर ! ’

● ● ●

२६
छोटा पत्थर

नीचे कलकल निनाद करता बह रहा सोता, ऊपर शीतल छाया फैलानेवाले वृक्ष! कितना रमणीय स्थान! इतना सौंदर्य होते हुए भी उस शिलाखंडको पूजनेकी सनक किसीके भी मनमें न आयी। एक दृष्टिसे ठीक ही था वह! छोटे बच्चेको ईश्वर मानते हैं न? छोटा पत्थर भी उसी प्रकार ईश्वर हो सकता है! परंतु इतना बड़ा शिलाखण्ड ईश्वर कैसे हो सकता है?

अन्तमें शिलाखण्डको ही एक उपाय सूझ पड़ा। बड़प्पन कोई ऐसी बात तो है नहीं, जो रास्तेपर पड़ी रहती हो! उसने अपने अंगसे एक टुकड़ा काट लिया। स्वयं उसे जो वेदना हो रही थी उसकी ओर ध्यान न देकर वह बोला, – 'इस टुकड़ेको ईश्वर बन जाने दो। फिर मुझे ईश्वरकी शक्ति आप-ही-आप प्राप्त हो जायगी।'

उसने उस छोटे टुकड़ेको सोतेके जलमें फेक दिया। नित्य पानीमें पड़े रहनेके कारण वह बड़ा उज्ज्वल और चमकदार हो गया। एक दिन ऐन दोपहरको एक प्रवासी वहाँ आया। सोतेमें स्नान करते हुए उसने देखा कि पानीके भीतर कुछ चमक रहा है। वह एक चमकदार छोटा-सा पत्थर था! समय काटनेका वहाँ दूसरा साधन क्या था? वह उस छोटे पत्थरको निकालकर बाहर ले आया। उसे छायामें रख दिया और जंगलके बहुतसे फूल इकट्ठा करके उसपर चढ़ा दिये।

संयोगकी बात! प्रवासीने वह स्थान छोड़ा ही था तभी जंगलमें शिकारके लिये आया हुआ एक राजा रास्ता भूलकर उसी स्थानमें आ पहुँचा। राजा थक तो गया ही था, साथ ही कोई शिकार हाथ न लगनेके कारण निराश भी हो गया था। उस रम्य स्थानको देखकर उसे बड़ा आनंद हुआ। ' धन्य धन्य है ईश्वरकी लीला! ' – उसके मनमें विचार आया। इसी समय उसकी दृष्टि फूलोंसे आच्छादित उस छोटे पत्थरकी ओर गयी। वह हँसकर बोला, – ' ऐसी सुन्दर सृष्टिको पैदा करनेवाला ईश्वर! पर बेचारा खुले स्थानपर पड़ा हुआ है यहाँ! '

राजाने सहज-भावसे देखा। सोतेके दूसरे किनारेपर एक सुंदर हरिण था। उसने ठीक निशाना साधा। ' इस ईश्वरने ही शिकार दिया मुझे! ' कहते हुए राजाने बड़े भक्ति-भावसे उस छोटे पत्थरको प्रणाम किया। यह स्पष्ट दीख रहा था कि वह देवस्थान जागृत था। फिर इस देवको खुलेमें कैसे छोड दिया जाये! राजाको क्या कमी? उसके मनके मंदिरोंके साथ ही सच्चे मंदिर खड़े हो जाते है!

थोड़े ही दिनोंमें संगमरमरके बने एक सुंदर मंदिरमें उस छोटे-से पत्थरकी विधीपूर्वक स्थापना हो गयी। सैंकड़ों भक्त लोग इस नये देवका दर्शन करने और मनौती मनानेके लिये आने लगे। प्रति दिन देवके सामने नारियलोंका ढेर लग जाता! पुजारी उन नारियलोंको सामनेवाले बड़े शिलाखंडपर फोड़ने लगा। बिचारे शिलाखण्डका अंग हर रोज़ दर्द करने लगा!

एक दिन शिलाखण्ड गिड़गिड़ाकर बोला, – ' भगवन, नैवेद्य तो आप खाते हैं और नारियलके घाव पड़ते हैं मेरी पीठपर! '

देवने हँसकर उत्तर दिया, – ' तुझ जैसा इतना बड़ा पत्थर दूसरे और किस कामका है? '

शिलाखण्डको बड़ा क्रोध आया। परंतु उसे भीतर-ही-भीतर पीकर वह बोला,– ' भगवन, मुझे भी तू अपने जैसा भगवान बना दे जिससे कम-से-कम नारियलके घावोंसे तो छुटकारा मिल जायेगा मुझे! '

मंदिरके भीतर बैठे हुए देवने बहुत देरतक विचार किया। ' यदि मैं लोगोंको यह सपना दे दूँ कि सामनेवाला शिलाखण्ड देव है, तो? तो लोग उसीका भजन करने लगेंगे – उसीको पूजेंगे। लोग कहेंगे, मंदिरका देव छोटा है। सामनेवाला देव

तो महादेवका अवतार है ? फिर मेरी ओर कोई झाँककर भी न देखेगा। मंदिरका यह छत्र भी मेरे सिरपर रहेगा ही, इसका क्या ठिकाना है ? '

यह देखकर कि भगवान चुप है शिलाखण्डने झल्लाकर कहा, – ' छोटू, भगवान बनते ही तेरी आँखें फिर गयीं, क्यों ? अरे, मेरे ही अंगका तू एक छोटा-सा भाग है। भगवान बनानेके लिये यदि मैं तुझे पानीमें न फेकता — '

' चुप बैठ रे, पत्थर ! ' – भगवान जोरसे बरस पड़ा, ' कहाँ देव और कहाँ पत्थर ! मैं छोटा पत्थर नहीं हूँ, बड़ा भारी देव हूँ। मेरा तुझसे क्या संबंध ? मैं हूँ स्वर्गमें सिंहासनपर बैठनेवाला और तू है पृथ्वीपर मिट्टीमें लोटनेवाला ! '

रातको देवालयमें शयनारती आरंभ हुई।

भक्तगण देवको सुला रहे थे, छोटा पत्थर – छिः देव – बातकी बातमें सो गया।

शिलाखण्डको रात-भर नींद न आयी। वह निरंतर भीतर-ही-भीतर क्रोधसे जल रहा था।

सुबहके वक्त ऐसा भ्रम हुआ जैसे मंदिरके नीचेकी ज़मीन हिलने लगी है। भक्त लोग इधर उधर दौड़ने लगे। पुजारी डर कर भाग गया। परंतु जाते समय भगवानके गहनोंको अपने साथ ले जाना अवश्य न भूला।

देव डरकर चिल्लाने लगा, – ' अरे शिलाखण्ड, ओ दादाजी — '

उत्तरमें शिलाखण्ड सिर्फ़ हँसा।

भूकम्पसे मंदिर लड़खड़ाकर गिर पड़नेका समाचार शीघ्र ही सर्वत्र फैल गया। देवकी खोज़ करनेके लिये भक्तगण आये। देखा तो मंदिरके सामनेवाले शिलाखण्डके टुकड़े टुकड़े हो गये थे !

और देव ?

उन हज़ारों टुकड़ोंकी राशिमें पड़े हुए उस छोटे पत्थरको कोई भी न पहचान सकता था !

● ● ●

२७

लक्ष्मीपूजन

क्षीरसागरमें भगवान् विष्णुने करवट बदली। लक्ष्मीको बड़ा आनंद हुआ। उसे लगा – देव, अब जल्दी ही जागेंगे।

लक्ष्मीको जो आनंद हुआ था, वह नारदकी दृष्टिसे न छूट सका। वे हँसते हुए बोले, – 'लक्ष्मीमाई, यही सच है कि स्त्रियाँ बड़ी उतावली होती हैं! पहले उन्हें यह जल्दी पड़ती है कि विवाह कब होता है! विवाह हो गया कि लड़का कब होता है; लड़का हो गया, तो अब वह बड़ा कब होता है – हाँ, तुम जैसी देवियाँ ही जहाँ इतनी उतावली —'

लक्ष्मीने हँसते हुए नारदकी ओर देखा। परंतु नारद ठहरे त्रिभुवनका पानी पिये हुए ब्रह्मचारी! वे थोड़े ही लक्ष्मीके फंदेमें आ सकते थे!

वे आगे बोले, – 'आज लक्ष्मीपूजन है मृत्युलोकमें! तुम्हें पड़ी है वहाँ जानेकी जल्दी! परंतु कुछ भी हो, विष्णु भगवान्, अभी ग्यारह दिनतक और नहीं जागेंगे!'

'और ग्यारह दिन?'

'हाँ! आषाढ़की ग्यारसको सोये हैं वे। अब कार्तिककी एकादशीको ही जागेंगे!'

'छिः! देखो तो अभी जागते हैं!'

'यह देखकर कि विष्णुने फिरसे आँखें बंद करना शुरू कर दिया है, लक्ष्मी उनके पास जाकर बोली, – 'सुनते हैं?'

'क्या?'

'चलिये, ज़रा मृत्युलोकतक चक्कर लगा आयें!'

'क्यों, क्या कोई अवतार-ववतार लेना है? जरा नींद तो पूरी होने दो। फिर देखेंगे!'

'अवतार नहीं लेना है।'

'फिर?'

'आज मेरी पूजा है वहाँ!'

'तुम्हारी पूजा? लगता है, मेरे सो जानेके बाद तुमने वहाँकी व्यवस्था बहुत अच्छी रखी!'

'उस पूजाको देखनेके लिये —'

'पूजा देखनेको व्यर्थका चक्कर लगानेकी क्या ज़रूरत है? चाहो तो उसे मैं यहीं किये देता हूँ!'

'चलो हटो। आप तो कुछ भी कह देते हैं! चलियेगा न मेरे साथ!'

नारद मनमें कह रहे थे, – 'परमेश्वर हुए तो क्या हुआ, उन्हें भी स्त्रीका हठ पूरा करना ही पड़ता है।'

और नारदका यह तर्क ही ठीक निकला।

● ● ●

मृत्युलोककी सीमापर पहुँचतेतक विष्णु भगवानकी नींद साफ उड़ गयी थी। वे लक्ष्मीसे बोले, – 'तुम अपने भक्तोंके घर जाओगी। फिर मुझे अपने भक्तोंको दर्शन नहीं देना चाहिये क्या?'

'मेरे भक्त और आपके भक्त क्या अलग हैं?'

'देखें, इस बीचकी अवधिमें क्या क्या हो गया है वहाँ? हम एक दूसरेके साथ रहे तब तो ठीक ही है। नहीं तो वापस लौटते समय तुम मुझे खोज़ने आ जाना!'

'कहाँ?'

'लक्ष्मीनारायणके मंदिरमें! मेरे सब भक्त वहीं मिलेंगे मुझसे।'

● ● ●

राजमहलमें लक्ष्मीपूजन हो रहा था। स्वयं अपनी पूजाके उस ऐश्वर्यको देखनेका

मोह लक्ष्मी संवरण न कर सकी। वह दौड़ती हुई गयी। जी भरकर उस समारोहको देख लेनेके बाद उसने पीछे मुड़कर देखा – विष्णुका कहीं भी पता न था।

वह राजमहलसे बाहर निकली। बाहर सर्वत्र दीपमालाएँ जगमगा रही थी। अमावसका अँधेरा भी उसने डरकर जाने कहाँ भाग गया था!

सरदारोंकी कोठियोंमें, व्यापारियोंके आलीशान मकानोंमें पंडितोंके घरोंमें – सब जगह लक्ष्मी गयी। सर्वत्र उसीका पूजन हो रहा था। परंतु उसे विष्णु अवश्य कहीं भी दीखायी न दिये।

उसे लगा – 'महाशय लक्ष्मीनारायणके मंदिरमें अपने भक्तोंके बीच खो गये होंगे।' वह दौड़ती हुई मंदिरकी ओर गयी। किसी पुष्पवृक्षकी तरह देवके सामनेकी दीपमाला खिली हुई थी। छोटे-छोटे घंटोंका लगातार हो रहा टिनटिन नाद गुंजारवकी तरह प्रतीत हो रहा था। देवकी मूर्तिके आगे जल रही अगरबत्तियोंकी सुगंध फूलोंको भी लज्जित कर रही थी। लोग चिऊँटियोंकी तरह मंदिरमें जा रहे थे और बाहर निकल रहे थे।

लक्ष्मी बिलकुल भीतर चली गयी। वह विष्णुकी मूर्तिके पास जाकर खड़ी हो गयी। परंतु उसे विष्णु कहीं भी नहीं दिखायी देते थे। उसने मनमें कहा, – 'यदि वे यहीं कहीं नज़दीक होते तो उनके हाथके कमलकी सुगंधि मुझे आये बिना न रहती। फिर महाशय गये कहाँ?'

उसके सामने समस्या खड़ी हो गयी – उसे यह भी शक हुआ कि नींद अधूरी होनेके कारण महाशयजी लौटकर क्षीरसागरमें शेषशैयापर कहीं सो तो नहीं गये हो?

वह क्षीरसागरमें वापस आयी। परंतु वह शेषशैया खाली ही पड़ी थी।

लक्ष्मी फिर मृत्युलोकमें आयी। मनके वेगसे वह नगर – नगरमें घूमी। परंतु विष्णु कहाँ होंगे, इसकी उसे कोई कल्पना ही न होती थी।

नगरके धनियोंकी कोठियों और खुशहाल लोगोंके घरोंको छोड़कर वह टूटे-फूटे मकानोंवाले मुहल्लेकी ओर मुड़ी। एकदम उसे परिचित कमलकी सुगंध आयी। उसने एक घरमें झाँककर देखा।

घरमें अँधेरा था। अँधेरेमें ही एक बच्चा रो रहा था। उसकी माँ मुँहसे 'क्यु क्यु' आवाज़ करती हुई कह रही थी, – 'कल सुबह मुझे काम मिल जायेगा! फिर मैं अपने मुन्नेके लिये दुद्दू लें आऊँगी —'

लक्ष्मीने बीचहीमें कहा, – 'ए अम्मा, दीया जला ले न जिससे बच्चेका रोना बंद हो जायेगा!'

'तेलके लिये अगर पैसे होते तो उनसे बच्चेके लिये दूध ही न ले आती, बहन?' – अँधेरेमेंसे उत्तर आया।

लक्ष्मीने देखा – विष्णुके हाथके कमलकी पखुड़ियाँ कमरेके द्वारमें पड़ी हुई थीं। पर विष्णु?

वह फिर दौड़ पड़ी। बिलकुल नगरके बाहर चली गयी वह! एक ऊँची टेकड़ीसे उसे शंख की गंभीर आवाज़ सुनाई दी। उसने पास जाकर देखा! जेलकी तरह बहुतसे कमरोंवाली एक इमारत थी वहाँ। एक कमरेकी खिड़कीसे उसने झाँककर देखा। एक तीस वर्षका तरुण मनुष्य बिस्तरपर पड़ा हुआ तड़प रहा था। बीच बीचमें वह बड़बड़ा रहा था, –'भगवन, अपना पेट जलानेके लिये मैंने दिनको काम किया, रातको काम किया! परंतु हमारे भाग्यमें सिर्फ कष्ट ही लिख रखे हैं आपने! तब उन कष्टोंको बरदाश्त करनेके लिये आप अच्छे मज़बूत लोहेके शरीर क्यों नहीं दे देते हमें?'

एकदम उसने एक विचित्र धक्का दिया! लक्ष्मी भयभीत होकर वहाँसे भागी।

अब भी शंखकी आवाज़ उसके कानोंमें घूम ही रही थी। वह दूर, बहुत दूर निकल गयी। उसे जहाँ तहाँ खेत ही खेत दिखायी देने लगे। एकदम किसी चीज़को पैर लग जानेसे वह लड़खड़ाई। उसने झुककर देखा – विष्णुके हाथकी गदा!

उस गदामें बंधा हुआ एक पत्र हवाके प्रत्येक झोंकेके साथ फड़फड़ा रहा था। लक्ष्मीने उस पत्रको खोला और वह उसे पढ़ने लगी —

'यह बहुत ही अच्छा हुआ कि मेरी नींदसे तुमने मुझे जल्दी जगा दिया। संसारको व्यवस्थित रूपसे चलाना मेरा काम है – मेरी जिम्मेवारी है। परंतु विश्रामके मोहसे वह मैंने तुम्हें सोप दी...तुम अपने भक्तोंकी स्तुतिसे अंधी हो गयी हो। तुम्हारी पूजाके लिये वे मेरे भक्तोंको बलि दे रहे हैं! परंतु यह सब तुम्हें दिखेगा कैसे? किसानोंकी झोंपड़ियोंमें, मज़दूरोंके टूटे-फूटे मकानों और चालोंमें तुम क़दम रखनेके लिये ही तैयार नहीं हो।

'तुम्हारे साथ मैं राजमहलमें गया। वहाँ मेरा एक भी भक्त मुझे दिखायी

नहीं दिया। मैं बड़ी आशा लेकर लक्ष्मीनारायणके मंदिरमें गया। मेरी कल्पना थी कि हम दोनोंके भक्त वहाँ मिलेंगे। तुम्हारी मूर्तिका श्रृंगार देखने आये हुए लोग ही वहाँ मुझे दिखे। राजमहलमें सबको प्रवेश करनेकी आज्ञा न थी, वरना ये लोग मंदिरकी ओर फटकतेतक नहीं। मैंने उसी समय मंदिरकी ओर पीठ फेर दी। अपने भक्तोंके कष्टोंको दूर किये बग़ैर अब मैं क्षीरसागरको वापस नहीं लौटूँगा। पद्म, शंख, गदाका इस समय मुझे कोई उपयोग नहीं। एक चक्र काफ़ी है। जहाँ वह एक बार घूमने लगा कि ... '

आँसुओंसे आँखें भर आनेके कारण लक्ष्मीको आगेके अक्षर दिखायी न दिये। परंतु इसी समय घर घर लक्ष्मीपूजनके लिये जलाये गये दीये अवश्य एकदम शान्त हो गये।

• • •

कालप्रवाह बह रहा था।

एक दिन एक विलक्षण चमत्कारकी बात लोगोंमें चर्चाका विषय हो गयी। लक्ष्मीनारायणके मंदिरकी लक्ष्मीकी स्वयंभू मूर्ति पूर्णतया बदल गयी थी। उसके शरीरपर अलंकार न थे, उसका कमलासन गायब था, उसकी आँखोंके चंचल भावका स्थान भक्तिने ले लिया था। सबसे बड़ा चमत्कार तो इससे आगे था। मंदिरपर खुदे हुए 'लक्ष्मीनारायण' अक्षर लुप्त होकर वहाँ 'दरिद्रनारायण' अक्षर चमकने लगे थे।

• • •

२८

चील और मोर

ऊपर चील चारों ओर मंडरा रही थी।

नीचे मोर मज़ेमें अपने ही आसपास नाच रहा था।

दोनोंका समय नहीं कटता था।

मोरने कहा, –'चील जीजी, तुम्हारे आगे हवाई जहाज़को कौन पूछता है?'

चीलने कहा, –'मोर भैया, तुम्हारे पंखोंके सामने रत्नोंका क्या मूल्य?'

• • •

परिचयका मित्रतामें रूपान्तर होनेके लिये बहुत बातोंकी ज़रूरत हो, यह बात नहीं है।

मोर कहा करता, –'आकाशके तारे कितने सुंदर दीखते हैं!'

चील उत्तर देती, –'पृथ्वीके फूलों उतने ही।'

ऐसे समय उन्हें इसका साक्षात्कार हो जाता कि दोनोंमें एक ही दिव्य तत्त्व भरा हुआ है।

बातोंके सिलसिलेमें चील कह दिया करती, –'पृथ्वीकी नदियाँ कितनी सुंदर दीखती हैं!'

मोर उत्तर देता, –'परंतु उसका पानी आकाशसे ही आता है न?'

इस समय उन्हें ऐसा आभास होता कि चराचरमें एक ही तत्त्व भरा हुआ है।

प्रत्येक प्राणीमें यदि एक ही तत्त्व सहजमें खेल रहा है, तो एक प्राणीका दूसरेको मामूली खरोंच देना भी क्या महापाप नहीं है ?

दोनोंको यह बात आप-ही-आप जँच गयी।

चील मोरके पंखोंपर सुखसे सोने लगी।

मोर चीलके नखोंसे खेलने लगा।

दोनों घनिष्ट मित्र हो गये।

• • •

एक दिन चील और मोर जब इस चर्चामें व्यस्त थे कि सर्वत्र एक ही परमात्मा भरा हुआ है, तभी सामनेसे एक सर्प सरसराता हुआ जाने लगा।

चीलने उसे देखा।

मोरने भी उसे देखा।

चील चटसे उड़कर उसपर झपट पड़ी।

मोर भी चपलतासे कूद पड़ा।

'मेरा भक्ष्य है यह!' – चील चिल्लायी।

'मेरा भक्ष्य है यह!' – मोर ज़ोरसे चीख पड़ा।

दोनोंकी प्राणांतक लड़ाईमें सर्प कभीका खिसक गया था।

जख्मी चीलसे आकाशमें उड़ते नहीं बनता था।

जख्मी मोरको अपने स्थानसे टससे मस होते नहीं बनता था।

पहले एक दूसरेकी ओर देखते समय उनकी आँखोंमें फूल खिला करते थे। अब वहाँ शोले दहकने लगे।

दोनोंने एक ही समय प्राण त्याग दिये।

डरकर भाग गया हुआ सर्प लुकता-छिपता लौट आया। उसने देखा कि चील चुप, और मोर भी चुप!

सर्प मन-ही-मन पुटपुटाया, – 'प्रत्येक प्राणीमें एक ही तत्त्व खेलता रहता है, यह सच है!'

• • •

२९

विकास

कलकल निनाद करता हुआ पानी बहने लगा। कोई गायक अपने कंठसे बाहर निकलनेवाले मधुर स्वरमें तल्लीन हो जावे, उस प्रकार उस कलकल निनादसे पर्वत-राजकी समाधि लग गयी।

परंतु उसकी यह समाधि अधिक समयतक न टिकी।

जंघापर बैठी लड़कीके पैरोंके कड़ोंकी छुम छुम उसे पहले सुनायी पड़ रही थी। परंतु थोड़ी देरके बाद उसे लगा – 'कहीं नर्तकीका नृत्य हो रहा है! मुझे जो आवाज़ सुनायी दे रही है वह उसके पैरोंके पैंजनकी है!'

पर्वतने आँखें खोलकर देखा।

कलकल निनाद करता बहनेवाला पानी खलखल करता हुआ दूर चला जा रहा था।

पर्वतने नदीको पुकारा, – 'बेटी —'

नदीने मुड़कर पीछे देखा। वह लहरोंका फेन न था; उसका हास्य था।

पर्वतने पूछा, – 'कहाँ जा रही हो?'

'दूर, बहुत दूर!'

'मुझे छोड़कर?'

'हाँ! यहाँ रहकर मेरे जीवनका विकास न होगा!'

• • •

नदी वेगसे दौड़ने लगी।

उसका पात्र पद पदपर बड़ा होने लगा।

कोई उसकी पूजा करने लगे।

कोई चाँदनीमें उसके प्रवाहमें नौकाविहार करने लगे।

नदी अभिमानसे आगे दौड़ने लगी।

दौड़ते दौड़ते उसे दूरसे पानीकी खलखलाहट सुनायी पड़ने लगी! उसने अपने किनारेके वृक्षोंसे पूछा, – 'कौन गा रहा है?'

वृक्षोंने उत्तर दिया, 'महानदी! तुम जाकर अब महानदीमें मिल जाओगी।'

नदी जहाँके तहाँ रुककर क्रोधसे बोली, – 'दूसरी नदीमें मिलकर मेरे जीवनका विकास न होगा।'

वृक्षपर बैठे पखेरू किलकिलाए, – 'महानदीसे फिर तुम समुद्रमें जाकर मिल जाओगी!'

नदी नाक-भौंह सिकोड़कर बोली, – 'समुद्र! खारा पानीका वह बड़ा पोखरा! और उसमें जाकर मैं मिलूँगी? छिः! वहाँ मेरे जीवनका विकास न होगा।'

• • •

एक बड़ा मोड़ लेकर नदी दूसरी ही दिशासे बहने लगी।

कितना रुक्ष प्रदेश था वह! जैसे वह भूभाग जानता ही न हो कि हरा रंग नामकी कोई चीज़ दुनियामें है!

नदीकी खलखलाहट सुनते ही हज़ारों लोग दौड़ते हुए उसके किनारेपर आये।

कोई कह रहे थे, – 'भगवानने हमारी आशा पूरी की!'

कोई कानाफूसी कर रहे थे, – 'यहाँ नहरें निकालो जिससे इन पत्थरोंमें भी फूल लगेंगे!'

नहर बननेका काम शुरू होते ही नदी उमड़ पड़ी। वह क्रोधसे भन्नाकर बोली, – 'इस तरह मेरे जीवनका विकास कैसे होगा? उधर तुम्हारे खेत लहलहा-येंगे, फसलें पकेंगी, पर इधर तो मेरा पात्र सूख जायेगा न?'

• • •

उधर महानदी, उसके उसपार समुद्र, इधर ये नहरें बनानेवाले कृषक!

इन सबको टालकर नदी दौड़ने लगी!

परंतु अब उसकी गति मंद हो गयी थी।

उसने आगे देखा – एक बहुत बड़ी मरुभूमि फैली हुई थी। उसने दायीं ओर दृष्टि दौड़ायी —

बायीं ओर देखा – कोई तूफ़ान शुरू हो गया था। सपाट स्थानपर जल्दी जल्दी रेतकी टेकड़ियाँ खड़ी हो रही थीं।

उसे लगा कोई जादूगरनी यह सब कर रही है! वह चिल्लाकर बोली, – 'मैं और कुछ नहीं चाहती! मैं अपना विकास चाहती हूँ!'

उसे भ्रम हुआ जैसे दशोंदिशाएँ बिकट हास्य कर रही हैं। पर वह राक्षसका हास्य न था; बालूकी प्रचण्ड आँधियाँ थीं।

● ● ●

आज-कल उस चिलचिलाती हुई मरुभूमिसे सफर करनेवाले लोगोंको एक बिलकुल छोटा-सा सोता दीखता है। उस सोतेके आसपास उगी हुई हरियालीको देखकर उन्हें बड़ा आनंद होता है। उस कोमल हरियालीको सहताये बिना कोई भी प्रवासी आगे नहीं बढ़ता। हरियालीके मृदु स्पर्शसे उसकी मुद्रापर जब आनंदकी छटा चमकने लगती है, तब उस नन्हे सोतेमें छोटी तरंगें उठती हैं और हँसते हँसते एक ही शब्द गुनगुनाने लगती हैं, – 'विकास।'

● ● ●

३०

देव और सीढ़ियाँ

कितनी ऊँचाईपर था वह मन्दिर !

ऊँचाईके परिमाणसे ही देवकी लोकप्रियता होती है क्या, कौन जाने !

उस देवके दर्शनके लिये दूर-दूरसे हज़ारों लोग आने लगे।

हरएक सीढ़ीको वंदन कर सारा भक्त समुदाय ऊपर जाया करता।

इस बन्दनाके कारण सीढ़ियोंको लगने लगा— 'ऊपर मन्दिरमें बैठे हुए देवसे हमारी ही योग्यता अधिक है ! यदि हम न होतीं, तो भक्तोंको देवका दर्शन दुर्लभ हो जाता !'

एक सीढ़ी बोली, — 'हम हैं इसी लिये तो इस देवकी इतनी इज्जत हो रही है—प्रशंसा हो रही है। वरना इतनी ऊँचाईपर उसका मुँह देखनेके लिये हाथ-पाँव पटकता हुआ कौन जाता ?'

दूसरी सीढ़ीने कहा, — 'वैसे देखा जाये तो देवमें और हममें क्या फर्क़ है ? उसकी मूर्त्तिका पत्थर संगमरमरका है, हम भी काले पत्थरकी हैं। परंतु अब काले-गोरेका भेदभाव नष्ट होना ही चाहिये।'

सीढ़ियोंकी इस तर्कशुद्ध विचारसरणीको सुनकर सब भक्त हँसते हुए ऊपर जाते। परंतु उनमेंसे एकने भी सीढ़ियोंपर अपने पासके पुष्प नहीं चढ़ाये।

सीढ़ियाँ नाराज़ हो गयीं, मन-ही-मन जलने लगीं, क्रोधावेशमें उन्होंने स्वयं अपने ही टुकड़े टुकड़े कर डाले।

देवदर्शनके लिये आनेवाले भक्तोंको रास्तेमें आड़े-टेढ़े फैले हुए पत्थरोंकी ठोकरें लगने लगीं; बहुतोंके पैरोंसे खून बहने लगा।

सब भक्तोंने निश्चय किया–'ये सीढ़ियाँ बहुत पुरानी हो गयी हैं। इनसे भक्तोंको बड़ी तकलीफ हो रही है। मार्गमें पड़े हुए इन सब टुकड़ोंको बटोरकर बाहर फेंक देना चाहिए और नयी सीढ़ियाँ बनाना ही अच्छा होगा।'

सीढ़ियोंके टूटे हुए टुकड़े एक तरफ फेंक दिये गये। नयी सुंदर सीढ़ियाँ बना दी गयीं।

सुबह-शाम जब देवकी आरतीकी आवाज़ कानोंमें पड़ती तब इन टूटे हुए पत्थरोंका टुकड़ा टुकड़ा तड़पने लगता!

और इसी समय देवदर्शनको जानेवाले भक्त नयी सीढ़ियोंकी ओर सराहना-भरी दृष्टिसे देखते हुए ऊपर जाते!

● ● ●

३१
बड़ी गलती

सूर्यकी ओर देखकर उस घड़ीको हमेशा हँसी आ जाती! कहते हैं कि पहले मंदिर बनाये जाते थे सूर्यनारायणके! और आज भी इसे नमस्कार करनेके लिये कहा जाता है! ऐसी कौनसी खासियत है उसमें? आखिर एक प्रकारका गोला ही तो है। न रंग न रूप!

रूपका प्रश्न निकलता तो घड़ी स्वयं अपने सौन्दर्यकी ओर अभिमानसे देखती। कितना कोमल और चमकदार अंग है! और वे रेडिअमके काँटे! जैसे आनंदसे गाते हुए दौड़नेवाले भाई ही हैं।

अभिमानके आवेशमें सूर्यकी तरफ़ नाक चढ़ाकर घड़ी कहती, – 'है एक जड़भरत और चुप्पा! मैं कैसे चौबीसों घंटे गाती रहती हूँ। परंतु यह? जीवनमें कभी मुँह नहीं खोलता! बारह घंटेमें ही थक जाता है यह मुस्तंडा! हज़रत रात-भर कहाँ सोते रहते हैं इसका पता तक नहीं चलता! नहीं तो मैं! छोटी मूर्ति, पर बड़ी कीर्ति! आधी रातको समय पूछ लो मुझसे – एक क्षणमें बता दूँगी - बारह बजकर पाँच मिनट और पन्द्रह सेकंड हुए हैं। सच पूछा जाय तो आकाशका सूर्यका स्थान मेरा ही नहीं क्या? परंतु निसर्ग मनुष्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, यह पगली कल्पना अभीतक बनी हुई है न इस दुनियामें! हट्! सूर्यकी तरह असमयमें ऊगने और डूबने जैसी बड़ी गलती कोई पागल घड़ी भी न करेगी!'

एक दिन रातको बारह बजे घड़ी एकदम बंद हो गयी। निरंतर नाचनेवाले सुनहरे काँटोंकी हलचल एक क्षणमें थम गयी। मृतबालककी तरह दीख रही थी वह। प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा हुई। परंतु किसी भी तरह घड़ी चलती न थी।

एक दिन सुबह सूर्यकी किरणें नित्यकी भाँति घरमें आयीं! वे घड़ीपर भी पड़ी। उसमें बारह बजे हुए साफ़ दीख रहे थे!

●●●

३२
राजकवि

उन तीन कवियोंमें राजकवि किसे बनाया जाय, यह निश्चय करना बड़ा कठिन काम था।

महाराजके परिवारके एक हट्टे-कट्टे मनुष्यने सलाह दी, – ‘यह गठीले दंडका कवि ही उस पदके लिये योग्य है।’

एक सुंदर दासीने एक बार डरते-डरते सूचित किया, – ‘वह सुकुमार कवि ही उस पदको अधिक अच्छी तरहसे सुशोभित करेगा।’

महाराज लोगोंके मन सुन लेते। पर उनका मन उलझनमें पड़ गया था। फूलों, तारों, सुंदर स्त्रियों, इत्यादिके वर्णन तीनों कवि प्रतिदिन करते। उनमें अधिक अच्छा कौनसा होता अथवा अधिक ख़राब कौनसा होता, यह किसी भी तरहसे महाराज समझ न पाते।

एक दिन वनभोजनका कार्यक्रम निश्चित हुआ। नित्यके बदले एक दूसरा ही स्थान इस कामके लिये चुना गया। नगरसे बहुत दूर था वह पर्वत! बहुधा कोई वहाँ न जाया करता। परंतु उस पर्वतमें एक अत्यंत सुंदर देवालय खोदकर बनाया गया था।

तीनों कवियोंके साथ महाराजने उस देवालयमें प्रवेश किया। कितना सुंदर दीख रहा था वह। जैसे किसी मज़बूत शरीरमें वास करनेवाला भावुक हृदय ही हो!

पहले कविको स्फूर्ति हुई। वह बोला, – 'कितना सुंदर पत्थर है यह! निसर्गसे बड़ा संसारमें कोई नहीं है।'

दूसरा कवि देवकी मूर्तिको प्रणाम करता हुआ बोला, – 'यह देवकी मूर्ति यदि यहाँ न होती, तो इन पत्थरोंको इतनी शोभा कभी आती ही नहीं। देवकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ क्या है इस संसारमें ?'

तीसरे कविने शान्तिपूर्वक कहा, – 'इस सौंदर्यका श्रेय न पत्थरको है और न देवको भी है। मनुष्यकी बुद्धिका विलास है यह !'

'सच है, राजकवि' – उसकी ओर देखकर स्मित करते हुए महाराजने कहा।

● ● ●

३३
बाँध

कितने वेगसे वह पर्वतसे दूर हो गयी!

खलखल निनाद करती हुई वह पृथ्वीपर दौड़ने लगी!

जैसे कोई नर्तकी ही अभिसारिका होकर चली जा रही थी।

उसकी खुली आँखोंके सामने एक ही स्वप्न बार-बार चक्कर काट रहा था,– नीली लहरोंसे ठहाका मारकर हँसनेवाला सागर!

वह मनमें कह रही थी—

'उषाको स्वप्नमें अपने प्रियतमकी छवि दिखायी दी। परंतु उसे खोज़नेके लिये जानेकी उसकी हिम्मत न पड़ी! लेकिन मैं ज़रूर अपने प्रीतमको खोज़नेके लिये निकल पड़ी हूँ।'

उसके अंगका रोम-रोम स्वप्नमें दीख रहे सागरकी स्मृतिसे पुलकित हो रहा था।

हर मोड़पर वह धीरेसे झुककर देखती। उसे लगता–'उस पार सागर छिपा बैठा होगा। यदि मैं दौड़ती हुई जाऊँ, तो वह मुझे एकदम अपनी भुजाओंमें कसकर भर लेगा। यदि ऐसा हो गया, तो मैं उसे जी-भर देख भी न सकूँगी।'

कई योजन पीछे छूट गये। परंतु सागरके हास्यकी खलखलाहट उसके कानोंमें न पड़ी। वह जंगलोंमेंसे लगातार दौड़ी जा रही थी।

रास्ता भूलकर थका हुआ प्रवासी उसका पानी पीते-पीते कहता,–'जंगलोंमें बहनेवाली इस नदीका जीवन बिलकुल व्यर्थ है। उधर पानी नहीं है इसलिये फसलें सूखी जा रही हैं; अन्न नहीं है इसलिये लोग तड़प रहे हैं, और इधर पानीका यह बड़ा प्रवाह जाने कहाँ बहता हुआ चला जा रहा है।'

नदी हँसते हुए पुटपुटायी,–'पूरा अरसिक है यह मनुष्य। बेचारा प्रेमकी मधुरताके स्वादको न जानता होगा! जानते हो, मैं कहाँ जा रही हूँ? सागरसे मिलने!'

अन्तमें सरिता सागरसे जाकर मिली। दोनोंका जीवन एकरूप हो गया। नदी पहले समझ न पायी कि मेरे मुँहमें खारापन कहाँसे आ गया।

किसीने कहा,–'दो जीवोंके मिलनसे ऐसा होता ही है।'

सागरके दृढ़ आलिंगनमें अपने मुखमें आये हुए खारापनको वह धीरे धीरे भूलने लगी।

परंतु पर्वतसे लेकर सागरतकके नित्यके प्रवासमें उसे रह-रहकर लगता,–'क्या, मेरा जीवन इसी कामका है? कई योजन दौड़कर आखिर मैं क्या प्राप्त करती हूँ? एक दीर्घ चुम्बन और एक दृढ़ आलिंगन। उस चुम्बनमें प्रवासकी थकानको दूर कर देनेकी शक्ति है; उस आलिंगनमें सारी दुनियाको भुला देनेवाला जादू है। पर —'

उसकी विचारमालिका यहीं टूट जाती। उस प्रवासीके शब्द उसके कानोंमें गूँजने लगते,–'जंगलमें बहनेवाली इस नदीका जीवन बिलकुल व्यर्थ है। उधर पानी नहीं है, इसलिये फसलें सूखी जा रही हैं, अन्न नहीं है इसलिये लोग तड़प रहे हैं —'

उसे लगने लगा कि 'मेरा जीवनप्रवाह कहीं गलत दिशाकी ओर तो नहीं जा रहा है?' परंतु —

अपने मनके क्रान्तिकारी विचार उसे न सुनायी दें, इसलिये वह आप-ही-आप ज़ोर ज़ोरसे गीत गाने लगी –'प्रीति ही जीवनकी सफलता है। एक चुम्बनमें जो सुख है, वह साठ हज़ार वर्षोंकी तपस्यासे भी न मिलेगा।'

• • •

शताब्दियाँ बीत गयीं। नदी उसी तरह बह रही थी, हर रोज़ जाकर सागरसे मिल रही थी और यह मान रही थी कि इस मिलनसे मेरा जीवन सार्थक हो गया।

एक दिन बहुतसे मनुष्योंने उसकी इस प्रेम-समाधिको भंग कर दिया। जब उसने देखा तो वह ताड़ गयी कि ये सब लोग बाँध बनाकर मुझे रोक रखनेका निश्चय कर रहे हैं। वह क्रोधसे आगबबूला होकर ज़ोर ज़ोरसे चिल्लाने लगी।

परंतु मानवी शक्तिके आगे उसे झुकना पड़ा।

बाँध तैयार हो गया। अपनी प्रीतिके आड़े आनेवाले उस बाँधको उसने कितना कोसा होगा इसका कोई हिसाब नहीं!

● ● ●

कई महीने बीत गये। बाँध देखने आनेवाले लोग पानीके इस विशाल विस्तारकी ओर देखकर कहने लगे, — 'इस पानीके कारण आसपासकी ज़मीनमें सोना पैदा होने लगा है।'

यह महसूस होनेपर कि मेरे पानीकी बूँद बूँद इन्सानोंको ज़िंदा रख रही है, उसे उस बाँधके प्रति स्नेह होने लगा।

सागरको संदेह हुआ कि अब पहले जैसी उत्सुकतासे नदी मुझे चुम्बन नहीं देती, पहले जैसे आवेगसे आकर वह मेरे बाहुपाशमें नहीं कूद पड़ती। उसने उसपर ताना कसा, — 'शायद हमपर अब प्रेम कम हो गया है तुम्हारा!'

उसने उत्तर दिया,—'सच्चा प्रेम कभी भी कम नहीं होता।'

'तो फिर?'— सागरने अकड़कर पूछा।

नदीने हँसते हुए उत्तर दिया,—'दुनियामें प्रेमसे भी अधिक मीठी — अधिक श्रेष्ठ —ऐसी एक चीज़ है!'

'कौनसी?'

'सेवा!'

● ● ●

३४

देवता

राजाने नया मन्दिर बनवाया।

उस मन्दिरमें संगमरमरकी बनी सुंदर मूर्त्ति विराजमान हुई।

मूर्त्तिके समीप ही एक भव्य अक्षयदीप रखा गया।

हरएकको, किसी भी समय, दूरसे भी मूर्त्तिका दर्शन हो जाये, इतना उज्ज्वल था उसका प्रकाश!

अक्षयदीपका दीया सोनेका था। वह चोरी न जाये, इसलिये मन्दिरके द्वारमें एक पहरी नियुक्त कर दिया गया।

दीयेकी बातींके लिये सफेद शुभ्र कपासके अनेक नमूनोंको मँगवाकर उनमेंसे उत्कृष्ट जातिका कपास चुना जाता था।

और अक्षयदीपका तेल—इतना शुद्ध और स्वच्छ होता कि गंगाजलको भी उससे ईर्षा होती!

समय असमय राजा देवदर्शनके लिये मन्दिरमें आने लगा।

• • •

एक दिन उसने सहज-भावसे एक बार अक्षयदीपकी ओर ध्यानसे देखा।

सोनेका दीया चमक रहा था। दीयेमें पाँच शुभ्र ज्योतियाँ नाच रही थीं। पर—

परंतु एक ज्योतिके पास कहींकी एक रद्दी सींक पडी हुई थी।

राजाके मनमें आया – ‘ इस दरिद्री पुजारीके पास सौन्दर्यदृष्टि ही नहीं है। इस सारी ऐश्वर्य-पूर्ण सामग्रीमें इस सींककी क्या ज़रूरत ? दाँत साफ करनेके लिये कहींसे भी एक सींक उठा लाया और रख दी इस दीयेमें ? मूर्ख कहींका ! ’

राजाने सींक उठाकर बाहर फेंक दी।

महलमें वापस आते ही राजाने पुजारीको संदेश भेजा, – मंदिरके सुंदर अक्षय-दीपमें इतनीसी भी सींक न रखी जाये। यदि वहाँ फिरसे सींक दिखी, तो पुजारीको वध-स्तंभपर लटका दिया जायगा।

• • •

थोड़ी देरके बाद पुजारी दौड़ता हुआ आया। परंतु महाराज भोजनपर बैठे थे।

फिर दो घड़ीके बाद वह भागता भागता आया। परंतु महाराज विश्राम कर रहे थे।

और दो घड़ीके बाद वह फिर आया। इस समय उसका चेहरा बिलकुल काला पड़ गया था। ‘ कुछ भी करो और महाराजसे मेरी भेंट करा दो। ’ – कहकर उसने महलके अधिकारीके चरण पकड़ लिये।

अधिकारीने उत्तर दिया, – ‘ यह संभव नहीं है। महाराज हालहीमें दाहिनी करवटसे बायीं करवटपर मुड़े हैं। ’

बेचारा पुजारी ! फिर दो घड़ीके बाद दौड़ता हुआ आया। इस समय वह थरथर काँप रहा था। वह ज़ोरसे चिल्लाया, – ‘ महाराज, महाराज — ’

पर महाराज एक नयी नर्तकीका नृत्य देखनेमें तल्लीन हो गये थे !

• • •

नृत्य समाप्त होनेपर राजा देवदर्शनके लिये गया।

जब वह मंदिरके मध्यभागमें गया जहाँ प्रभुकी मूर्त्ति रखी थी, तो उसने देखा वहाँ अमावस जैसा अँधेरा छाया हुआ है।

पुजारीपर बड़ा क्रोध आया उसे ! प्रभुकी संगमरमरकी मूर्त्ति, सोनेका दीया – सारी चीज़ें अँधेरेमें डूब गयी थीं।

पुजारीको मृत्युदंडकी सज़ा वह सुनानेवाला था तभी उस अंधकारसे गंभीर आवाज़ आयी, – ‘ राजा, सच्चा अपराधी तू है, पुजारी नहीं। ’

क्या, प्रभुकी मूर्त्तिकी जबान खुल गयी है ? राजा कुछ समझ न पाया। वह भयभीत होकर सुनने लगा।

'राजा, अक्षयदीपके दीयेमें एक क्षुद्र सींक देखकर तुझे लगा कि तेरे मन्दिरके सौन्दर्यमें कमी आ गयी। तूने पुजारीको यह आज्ञा दी कि अक्षयदीपके दीयेमें सींक न रखी जाये। परंतु तुझे इसकी कल्पना भी नहीं कि इस मंदिरका, मेरी मूर्त्तिका और इस सोनेके दीयेका सारा सौन्दर्य उस एक सींकपर अवलंबित है!'

राजाके मनके भयका स्थान अब आश्चर्यने ले लिया। वह कानोंमें प्राण बटोर-कर सुनने लगा। —'सोनेके दीयेकी ज्योतिपर भी काजल आ जाता है। उस काजल-को झाड़नेका काम करनेवाली सींकको तूने मूर्खतासे मंदिरके बाहर फेंक दिया। यहाँका सच्चा देव मेरी मूर्त्ति नहीं, बल्कि वह मामूली सींक है!'

बाहर फेंक दी हुई सींकको राजा बड़े आदरपूर्वक मंदिरमें ले आया और उससे उसने ज्योतिका काजल झड़ा दिया।

फिरसे सोनेका दीया चमकने लगा।

देवकी मूर्त्ति हँसने लगी।

● ● ●

३५

चित्रगुप्तके दफ्तरमें

सूर्यमण्डल पीछे रह गया, लेकिन यमदूतोंके पाशोंमें बंधे हुए अंगुष्ठमय जीव अब भी पीछे मुड़कर देख रहे थे। उनकी वह छटपटाहट – जैसे किसी मछुवेके द्वारा पानीमेंसे हालहीमें बाहर निकाली हुई मछलियाँ!

दिव्य संगीतके मधुर स्वर कहींसे सुनायी पड़ने लगे। पाशोंमें बंधे हुए मानवी जीव तड़पते हुए पृथ्वीकी दिशामें देख रहे थे। परंतु वे दोनों यमदूत ज़रूर उस संगीतसे पागल होकर स्वर्गमार्गकी ओर देखने लगे।

खिन्न निःश्वास छोड़कर पहला दूसरेसे बोला, – 'लगता है यह रंभा गा रही है।'

दूसरेने उत्तर दिया, – 'रंभा हो अथवा उर्वशी हो। अपने राम तो गाना सुने बिना आगे एक क़दम नहीं रखेंगे।'

पहलेकी मुद्रा सचिन्त हो गयी। मृत्युलोकसे यमराजके न्याय-मंदिरतक पहुँचनेमें कितनी देर लगती है, क्या यह बात चित्रगुप्त न जानता होगा? परंतु उस मीठे संगीतका मोह कैसे रोका जाये? मृत्युशैयापर पड़े हुए रोगियोंकी हिचकियाँ और उनके रिश्तेदारोंका करुण क्रंदन, यमराजके न्यायमंदिरमें नरककी सज़ा मिलते ही मानवी प्राणियोंके द्वारा चिल्लाना-चीखना और नरककी भयंकर सज़ा भोगनेवाले अभागे जीवोंकी चीखें – यही था यमदूतोंके जीवनका संगीत। बेचारे मृत्युलोकके

पुलिसवालोंकी हिकमतें भी जानते थे! थिएटरमें बिना पैसे देकर प्रवेश करनेकी कला मृत्युलोकके न्यायाधीशके दूतोंको ही सिद्ध हुई होती है, वह यमलोकके ऐरों गैरों नत्थू खैरोंका काम नहीं!

सूर्यकी किरणें अदृश्य रीतिसे पृथ्वीके जलको आकर्षित कर लेती हैं, उसी तरह स्वर्गीय संगीतके स्वर उन यमदूतोंको अपनी और खींचकर ले गये। हाथमें रखे पाशोंको मार्गके किनारे रखकर वे दोनों उस संगीतको सुननेके लिये स्वर्गकी तरफ़ रवाना हो गये।

यह देखते ही कि यमदूत काफ़ी दूर निकल गये हैं, पहले पाशसे करुण शब्द आये, – 'अभी भी मुझे कोई पृथ्वीपर ले जाकर छोड़ दे तो —'

'मैं भी नाचता हुआ आऊँगा, भैया!' – दूसरे पाशसे शब्द आये, अँधेरी रातको घनी घासके बीचमें चमकनेवाले जुगनूकी तरह पाशमें बंधे वे दो जीव दीख रहे थे।

'तुम्हारा नाम क्या है?' – पहले जीवने पूछा।

'नाम?' – दूसरे पाशके जीवने हँसकर कहा, 'बस यही एक बात याद नहीं है मुझे।'

'वही गत मेरी भी हो गयी है। मैं कौन हूँ मुझे याद नहीं – मेरा रूप कैसा था वह भी ध्यानमें नहीं। बाकी सब बातें याद आ रही हैं मुझे! मेरे आँगनमेंका एक ऊँचा ताड़ —'

'ताड़! ताड़ी। अरे यार ताड़ीकी यादसे तो मेरे मुँहमें पानी भर आया है।'

'मैंने ताड़ी कभी नहीं पी। परंतु कुछ भी हो, पर इस परलोकमें तुम और हम एक हैं। मुझे जैसे ताड़की याद आती है उसी तरह तुम्हें भी हो रही है! दोनोंको यदि यहाँसे भागनेको मिल जाये —'

'तो क्या ही मज़ा आये, भई? एक-दो दिनमें ताड़ी निकालनेका वार्षिक जलसा होनेवाला था हमारे गाँवमें। भगवानने क्या ही बुरे वक्तपर उठा लिया मुझे!'

'मेरे गाँवमें भी यह जलसा एक-दो-दिनके बाद ही हो रहा है। वाह, हम दोनों तो बिलकुल पड़ोसी हो गये। अब यमराजके दफ़तरमें हमें एक दूसरेके साथ ही रहना चाहिए, समझे?'

'अरे भैया, जिस तरह साथ आये उस तरह साथ ही रहें। पर क्यों, भाई, यहाँपर छाछमें पकाई हुई मछलीकी रसीली साग मिलेगी क्या?'

'छाछ कैसे मिलेगा, यह एक बड़ा सवाल खड़ा हो गया है मेरे सामने! हाँ! अगर स्वर्ग भी मिल जाये तो किस कामका? कहते हैं न 'तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्!'

'क्या? क्या कहा, भाई? तुम्हारी बात मैं समझा नहीं।'

'समझकर भी क्या करोगे अब? स्वर्गमें हरसिंगारके फूल मिल जायेंगे। परंतु सुरपन्नागके? छिः, हमारी 'इस'को कितने पसंद थे वे?'

'मेरी घरवालीकी सारी जान कटसरियापर! अब देखनेको भी न मिलेंगे ये फूल।'

'कहते हैं स्वर्गमें कल्पवृक्ष होते हैं। परंतु हमारे आँगनके 'माणकुर'की कलमका स्वाद कुछ और ही है!'

'मेरे द्वारके सामनेका वह रसीला कटहल —'

'और बारिशका मज़ा भी कहाँ देखनेको मिलेगा यहाँ? स्वर्गमें पानी बरसेगा कहाँसे? आँगनमें लगे नारियलके पेड़पर जब पानीकी बूँदें टप टप आवाज़ करती हुई गिरने लगतीं तो—अहाहा! ऐसा लगता जैसे मंत्रघोष हो रहा हो!'

'आकाशमें जब गड़गड़ाहट होती तो ऐसा लगता जैसे कोई ढोल पीट रहा हो। है न?'

यमदूतोंकी आहट सुनायी पड़ने लगी। दोनों पाशोंसे अत्यंत मंद स्वरमें शब्द निकले,—'सब बातोंमें हम एकमत हैं। एक दूसरेको छोड़ना नहीं है अब। गलेकी सौगंद है।'

उनके अंतिम शब्द लौट रहे यमदूतोंके कानोंमें पड़े। उनसे अपनी हँसी न रोकी गयी। जैसे वह हँसी यही पूछ रही थी कि शरीर-विहीन जीव गलेकी सौगंद लें, तो इसका क्या मतलब होता है?

यमदूतोंने जल्दी जल्दी अपने अपने पाश उठाये और वे दौड़ते हुए ही यमलोककी ओर रवाना हुए। वैतरणीके किनारे आकर नौकापर सवार होते ही दूतोंने दोनों पाशोंको एकत्र रख दिया। एक पाशसे धीरेसे शब्द आये,—'अपने गाँवकी नौका इससे बड़ी होती है न?'

दूसरे पाशसे अस्पष्ट-सी तान सुनायी दी —

'ताऱ्या वल्हाव रे वल्हाव रे'[1]

पहले पाशसे उद्गार आये,—'ज़रा ज़ोरसे कहो यार। क्या ही प्यारा गीत है!'

---

१ एक नाविक गीत—'मल्हाह, डांडा चलाओ रे डांडा चलाओ।'

यमदूतोंके भयसे, दूसरे जीवने वह गाना न गाया। नौकाके किनारे लगते ही यमदूतोंने फिरसे अपने अपने पाशोंको उठाया और दौड़ते हुए चित्रगुप्तके दफ़्तरमें आकर हाज़िर हुए।

चित्रगुप्तने माथेपरकी ऐनक नाकपर खिसकायी और पूछा, – 'कितने जीव?'

'दो!'

'कैसे मरे?'

'दुर्घटनासे।'

'दोनों भी?'

'जी हाँ। दोनों दुर्घटनाके ही शिकार हुए।'

पाशमें फँसे हुए जीव बड़ी उत्कंठासे सुनने लगे। नाम और स्वरूपकी तरह उन्हें अपनी मृत्युका भी स्मरण न था।

'कौनसी दुर्घटना थी?' – चित्रगुप्तने प्रश्न किया।

पहला यमदूत अपने पाशको दिखाते हुए बोला, – 'यह है ब्राह्मण!'

दूसरेने अपना पाश ऊपर उठाया और कहा, – 'यह है अछूत!'

'एक ही समय इन दोनोंकी कहाँ दुर्घटना हो गयी? क्या, दोनों शराब पीकर किसी मोटरके नीचे दब गये थे?' – चित्रगुप्तने आश्चर्य-भरे स्वरमें पूछा।

'दुर्घटना मोटरसे नहीं हुई। बल्कि आर्यभूमीके कोंकण प्रान्तके एक देवालयमें हुई?' – पहले दूतने कहा।

'अछूत लाटियाँ लिये देवालयमें प्रवेश कर रहे थे और ब्राह्मण लाटियाँ लिये उन्हें रोक रहे थे। उस मारपीटमें इन दोनोंने एक दूसरेके सिर फोड़ डाले!' – दूसरा दूत बोला।

'हरामी!' -- दोनों पाशोंसे एकदम एक ही शब्द बाहर निकला।

●●●

३६

सुंदर चित्र

विशेषांकके लिये चित्रकी माँग! और वह भी सर्वश्रेष्ठ मासिकपत्रकी तरफ़से। फिर —

ब्रह्मानंद कोई अलग थोड़े ही होता है! कृषककी सुंदर कन्याको स्वयं अपने रूपका ज्ञान न रहता हो, यह बात नहीं। परंतु यदि कोई राजपुत्र उसकी मँगनी करने आये, तो क्या उसके मनमें आश्चर्यकी लहरें नहीं उमड़ उठेंगी? उस तरुण चित्रकारकी स्थिति इसी तरह हो गयी।

उसके मनःचक्षुके सामने भविष्यकालका एक गगनचुम्बी मंदिर खड़ा हो गया। वह बोला, – 'आज मुझे इस सुंदर मंदिरकी नींव भरनी है। ऐसा मनोहारी चित्र बनना चाहिए कि —

सुबह-शाम वह समुद्रके किनारे जाकर बैठने लगा, उसने वद्य अष्टमीका ऐन आधी रातका चंद्रोदय देखा, टेकड़ीपरसे दीखनेवाली आसपासकी यक्ष-भूमिका भी उसने निरीक्षण किया, परंतु उसका मन कहीं भी न लगता था। भूखे शिशुको उसकी दीदी, चाची या मौसी कोई भी कितना ही सहलायें, फिर भी उसका रोना कैसे बन्द होगा? उसे तो माँ ही जब अपने अंचलके नीचे —

उसकी तृषित कला-दृष्टिको उसकी माँ दिखायी दी! खेतकी पगडंडीसे गुज़रते

हुए उसने सहज-भावसे दाहिनी ओर देखा। बोनी कुछ समयके पहले ही पूरी हो गयी थी। हरे खेतके एक मध्यभागमें कुछ कबूतर बड़ी शानसे बैठे हुए थे। दूरसे देखनेवालेको यह भ्रम होता कि खेतके बीचहीमें किसीने सफेद शुभ्र फूलोंकी राशि रख दी है। चित्रकारके पैर धीरे धीरे उस ओर मुड़ गये। कबूतर बीच बीचमें गर्दन मोड़कर इधर उधर देख रहे थे; बीचहीमें चोंचोंसे कुछ चुग रहे थे। हरे गलीचेके मध्यभागमें हो रही उनकी कोमल हलचलकी नृत्यकुशलता देखकर, चित्रकार मुग्ध हो गया। ऊँचे नारियलके पेड़ोंकी पार्श्वभूमि, हालहीमें अंकुरित हुई धानका सौम्य हरा रंग, सफेद शुभ्र कबूतर—कितना सुंदर दृश्य! अमेरिकाके किनारेपर क़दम रखते हुए कोलंबसको कितना आनंद हुआ होगा, इसकी चित्रकारको अब कल्पना आयी।

चित्रकारको दुख हुआ कि मैं कवि नहीं हूँ। कितना मनोहारी दृश्य था वह निरभ्र आकाशमें चमचम चमक रहा तारकापुंज, रमणीके अंचलपर लहरा रही बड़े बड़े मोतियोंकी माला, कितनी ही सुंदर कल्पनाएँ उन कबूतरोंको देखकर उसे सूझीं! उसने सोचा—मेरी आहट पाते ही कबूतर भुर्रसे उड़ जायेंगे। इसलिये वह थोड़ा दूर ही खड़ा रहा।

उसे लगा—'यह दृश्य यदि मैं चित्रित कर सका तो—कितने सुकुमार पक्षी! और उनकी हलचल भी कैसी प्यारी प्यारी! इस चित्रकी मोहिनी—'

संतान-हीन स्त्री सुंदर बालककी ओर जिस उत्कंठित दृष्टिसे देखती है, वह इस समय उसके रसिक नेत्रोंमें दृग्गोचर हो रही थी।

'हूः हूः हूः!'—इन कठोर उद्गारोंसे उसकी कलासमाधि भंग हो गयी। काँछ लगाये धोती पहने हुए एक कालाकलूटा आदमी दूरहीसे उन कबूतरोंको डराता हुआ चित्रकारकी ओर आ रहा था। उस कर्कश स्वरको सुनाकर अपनी समाधिको भंग करनेवाले मनुष्यकी ओर कोई क्रोधी ऋषि जिस तरह देखे, उस तरह चित्रकार उस गँवार आदमीकी ओर देखने लगा। कृषककी भाँति दीखनेवाले उस मनुष्यके निकट आते ही चित्रकार क्रोधसे बोला,—'अरे पगले—'

'मुझे पागल कहते हो? और तुम शायद बड़े होशियार हो?'—वह बड़े चिड़चिड़ेपनसे बोला।

'कितने अच्छे बैठे थे बेचारे पक्षी!'

'हाँ, बिलकुल फोटो खिंचवानेके लिये ही तो बैठे थे न वे?'

'मैं उनका चित्र बना रहा था न?'

'तुम्हारा तो चित्र बन जाता, परंतु मेरे बाल बच्चे भूखे मर जाते, उनका क्या होता?'

चित्रकार आश्चर्यसे उसकी ओर देखने लगा। वह मनमें कह रहा था – कलाको सजीव करनेवाले कबूतरोंका और इस गँवार आदमीके बाल-बच्चोंकी मृत्युके क्या संबंध?

'तुम पागल हो गये हो—' वह उपहाससे कृषकसे बोला।

'मैं नहीं, तुम्ही पागल हो गये हो। इतनी देरसे देखते खड़े थे, पर तुमसे इतना न हो सका कि कबूतरोंको तो उड़ा देते? कल ही मैंने बीज बोया है। ये कबूतर बीज खा जायें, तो मेरे बाल-बच्चे भूखे ही मर जायेंगे न?'

• • •

विशेषांकमें चित्रकारका उसी सुंदर स्थलका चित्र प्रकाशित हुआ। वह सबने पसंद भी किया। परंतु उस चित्रके कबूतर खेतमें शानसे नहीं बैठे हुए थे, बल्कि डरकर, भुर्रसे आकाशमें उड़ रहे थे।

• • •

३७

ऋद्धि-सिद्धिका स्वयंवर

‘ बेटियो, लड़कियोंकी जातिको हठ शोभा नहीं देता। यदि मैं तुम्हारा यह अप्रस्तुत हठ चलने दूँ, तो कल लोगोंको मैं मुँह नहीं दिखा सकूँगा। ’—राजासाहब ज़रा क्रोधसे ही बोले।

‘ विवाह तो हमारा होगा। लोगोंका नहीं। ’ - ऋद्धि और सिद्धि दोनों बड़ी ठमकसे बोलीं।

‘ परंतु लोकगंगामें यदि तूफ़ान आ गया तो वह बड़ा भयंकर होता है। उसके प्रवाहके विरुद्ध जानेसे क्या लाभ है ? ’

‘ अगर तूफ़ान आ जाये, तो आने दीजिये, हमारी बलासे ! यदि दो जुड़वा बहनें एक ही पतिको वरना चाहें, तो इसमें दुनियाका क्या बिगड़ जाता है ’ – ? ऋद्धि पिताजीके कंधेपर गर्दन रखकर बोली।

‘ भगवानकी इच्छा है कि हम दोनों एकत्र रहें। इसलिये तो उसने हमें जुड़वा बहनें बनाया। पिताजी, ऋद्धिके बिना मुझसे एक क़दम उठाते नहीं बनेगा और भोजन भी नहीं कर सकूँगी मैं ! ’ – सिद्धि सजल नेत्रोंसे बोली।

‘ और मेरी आँखोंके आँसू तो बिलकुल ही नहीं रुकेंगे। पिताजी ! यदि आप हम दोनोंको एक ही जगह न देना चाहते हों, तो हमारा स्वयंवर ही रोक दीजिये। आप इस झंझटमें पड़िये ही नहीं। हम दोनों कुँवारी ही रहेंगी ! ’

'ऋद्धि, कल तेरी गोदमें जब नन्हा-मुन्ना खेलने लगेगा, तब तुझे अपनी बहनकी याद भी नहीं आयेगी ! समझी ?'

'यह क्या ठठोली कर रहे हैं आप ? एक पर्वतसे निकलनेवाली नदियाँ भिन्न भिन्न समुद्रोंमें जाकर मिलती होंगी, एक लताके फूल भिन्न भिन्न देवताओंपर जाकर चढ़ते होंगे, परंतु एक ही माँके गर्भसे आयी हुई ये ऋद्धि-सिद्धि एक दूसरेको छोड़कर कभी दूर न होंगी।'

'लड़कियो, तुम्हारा परस्पर स्नेह देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है। परंतु दो बहनें दो सौतोंकी तरह रहें, यह ज़रा अजीब-सा ही लगता है।'

'पिताजी, हम जैसी जुड़वाँ बहनें कोई एक दूसरेकी छातीपर नहीं चढ़ बैठेंगी ! मैं सौगंद खाकर कहती हूँ कि मैं सिद्धिको अपनी बहनकी तरह ही रखूँगी।'—ऋद्धिने कहा।

'और मैं भी वचन देती हूँ कि मैं ऋद्धि बहनके चरणोंपर चरण रखकर ही चलूँगी।'—सिद्धिने कहा।

• • •

सब ओर हाथीपरसे घोषणा की गयी। ऋद्धि और सिद्धिका महाराजने स्वयंवर रचा है।

यह सुनते ही अविवाहित तरुणोंको तो छोड़ ही दीजिये, पर जिनकी आधी लकड़ी श्मशानमें पहुँच गयी थी, उन वृद्धोंमें भी खलबली मच गयी। बूढ़े लोग नकली दाँत लगाकर फिरसे तरुण बनने लगे। खिज़ावके व्यापारियोंकी पाँचों उँगलियाँ घीमें हो गयीं। तरुण लोग नये नये तर्ज़की पोशाकें, मूँछोंके नमूने और ऐनककी फ्रेमोंकी खोज़में लग गये !

स्वयंवरके प्रणको श्रवण करते ही सबके सिरपर वज्राघात हो गया ! शर्त यह थी कि प्रत्येक विवाहेच्छु पुरुष जाकर ऋद्धि-सिद्धिका दर्शन करे और उनकी पसंदकी परीक्षा दे। ऋद्धि-सिद्धि सात परदोंकी ओटमें बैठी हुई थीं। हर परदेके पास एक एक दासी खड़ी हुई थी। इन सब दासियोंको यह अधिकार दे दिया गया था कि वे चाहे जिस पुरुषको, ऋद्धि-सिद्धितक पहुँचनेसे पहले ही, वापस भगा दे सकती थीं ! उन दासियोंके नाम भी कितने विचित्र और भारी भरकम थे ! एक-का नाम था प्रयत्नवती, तो दूसरीका नाम था उत्साहवती ! !

• • •

बहुत लोगोंका यह खयाल था, कि एक तो स्त्री और ऊपरसे राजकन्या! इसलिये सुंदर वेश और मूल्यवान अलंकारोंके जालमें उन्हें फँसना ही चाहिए। परंतु नादिया बैलकी तरह सजधजकर गये हुए असाधारण वरोंको बहुधा पहले ही दरवाज़ेसे निराश होकर लौट आना पड़ा! परंतु, दासियोंकी नज़र बचाकर कहिये अथवा उनकी मुट्ठियोंको गरम करके कहिये, किसी भी तरहसे उनमेंके दो अभीतक भीतर पहुँचे थे। एककी पूरी पोशाक़ सम्पूर्ण रूपसे ज़रीकी थी। दूसरा हीरे और माणिकोंसे पूरी तरह मढ़ा हुआ था। इस गर्वमें चूर कि ऋद्धि और सिद्धि हम दोनोंको ही वरमाला पहनायेंगी, वे दोनों उनके सामने जाकर खड़े हो गये।

रंगमंचपर अभिनय करनेवाले राजपुत्रको भी मात देनेवाले उनके वस्त्र और अलंकारोंको देखकर, ऋद्धिने एकदम प्रश्न किया,– 'क्या, तुम दोनों किसी नाटक मंडलीमें काम करते हो?'

पोशाक़जी — छि! छि! छि! मैं हमेशा नाटक देखने जाया करता हूँ। परंतु मुँहमें रंग लगाकर नाचना मुझसे न होगा भई! रंगमंचपर कितनी देरतक प्रतीक्षा करते खड़ा रहना पड़ता है; हाथ-पैर नचाने पढ़ते हैं; मुँहको इधर-उधर घुमाना पड़ता है! अपने शरीरको हिलानेकी कसरत यदि मैं करने लगा, तो मेरे सारे कपड़े पसीनेसे गंदे हो जायेंगे न?

जौहरी— पोशाक़जीने सोलह आने बात कही! अभिनेताओंको कितने ज़ोरसे चिल्लाना पड़ता है। इस भयसे कि कहीं आवाज़ न बैठ जावे, मैं अपने नौकरोंपर भी कभी नहीं चिल्लाता! अजी, स्वप्नमें भी डरकर यदि चिल्लाऊँ तब भी इसी अन्दाज़से चिल्लाता हूँ कि मुझे कोई कष्ट न हो!

सिद्धि— हाथ, पाँव और मुँहको बिलकुल कभी भी न हिलानेका तुमने इरादा कर लिया है क्या?'

पोशाक़जी— मनुष्यको आखिर जरूरत ही क्या है इन सुकुमार चीज़ोंको हिलाते रहनेकी? हाथको थालीसे मुँहतक आने-जानेकी जो लगातार कसरत करनी पड़ती है, उसके कारण देखिये न, वह किस तरह सूख गया है! विवाह होनेके बाद मैं यह अमीराना तरीका ही अमलमें लाऊँगा कि पत्नी पतिको खिलाया करे!

जौहरी— मुँहकी भी वही दुर्दशा है! अन्न चबाते हुए, गुटकते हुए उसे बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। यदि राजकन्याएँ अपने पिताजीसे कहकर यह

कानून जारी करा दें कि दिनमें सौ शब्दोंसे अधिक शब्द मुँहसे न निकाले जायें, तो बड़ा अच्छा होगा।

ऋध्दि— मुँह, हाथ और पाँवकी तरह सिर चलानेके विरुद्ध भी तुम लोग होंगे ही?

पोशाक़जी— बेशक, 'सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम्!' जब हाथ और पाँवकी हम इतनी फिक्र रखते हैं, तब सिरकी तो हम इतनी चिंता करेंगे कि उस तरह हिफ़ाजत करनेकी कल्पना भी किसीके मनमें न आयेगी।

जौहरी— मैं अच्छे वैदिक कुलका हूँ। मेरे पिताजी दशग्रंथी थे; परंतु वेदपाठके समय सिर लगातार ऊपर-नीचे होगा, इसलिये वेदका एक अक्षर भी मैं नहीं पढ़ा।

सिद्धि— कसरतका कहाँतक शौक़ है तुम्हें?

पोशाक़जी— पृथ्वीके मूल्यकी पोशाक़ शरीरपर होते हुए शरीरसम्पत्तिकी परवाह कौन करता है? मनुष्य सांड़की तरह भले ही गर्रा जाये, पर झूल पहने हुए नादिया बैलकी तरह वह शोभायमान दिखेगा क्या?

जौहरी— मैं यह बिलकुल नहीं मानता कि शरीरमें हाथीकी ताकत अथवा गेंडेका चीमड़पन होनेसे मनुष्य बड़ा हो जाता है। मनुष्य कैसा फूलकी तरह सुकुमार दीखना चाहिए!

पोशाक़जी— साथ ही यह बात भी नहीं कि हम कसरत न करते हों। मेरी कसरत सर्वांगके लिये लाभदायक है।

ऋद्धि— वह क्या है?

पोशाक़जी— इस भारी पोशाक़को हमेशा शरीरपर धारण करके घूमते रहना।

सिद्धि— मूल्यमें भारी पर वजनमें हलकी ही है यह!

पोशाक़जी— हाथमें करेला (बड़ा मुगदल) धरे रहनेकी अपेक्षा, शरीरपर एकके बाद एक पचीस ज़रीके कपड़े धारण किये रहना क्या अधिक शक्तिका लक्षण नहीं?

जौहरी— मेरे व्यायामका तो कोई प्रश्न ही नहीं है। मेरे बदनपर जो हीरे और माणिक लदे हैं, उन्हें पहन लेना लेंचेपेंचे आदमीकी शक्तिके बाहर है।

ऋद्धि— अच्छा, तो अब आप तशरीफ ले जाइये।

पोशाक़जी— हमने स्वयंवर जीत लिया न?

ऋद्धि— हम तुम्हारा फिरसे मुँह भी देखना नहीं चाहतीं। माँबापके पैसोंपर गुलछर्रे उड़ानेवालोंसे और मुफ्तका माल खानेवालोंसे प्रेम करनेके लिये ऋद्धि-

सिद्धि पैदा नहीं हुई हैं। प्रयत्नवती, इन्हें धक्के देकर यहाँसे एकदम निकाल तो दे। मुओंको पत्थर होना चाहिए था, सो गलतीसे मनुष्य जन्म पा गये हैं!

इस हुक्मको सुनते ही पोशाकजी और जौहरी भागने लगे। पर उनके भागनेकी गति चिऊँटीकी चालसे कुछ अधिक न थी!

• • •

आलस्यराज और **उद्यम**को छोड़कर नगरके सारे तरुण आ चुके; परंतु ऋद्धि-सिद्धिके पास किसीकी भी दाल न गली। पहले हज़रत 'आज जाऊँगा', 'कल जाऊँगा', सोचते रहनेके कारण नहीं आये थे, और दूसरे हज़रतको अपने कामके मारे विवाहका विचार करनेकी फुरसत ही न मिली। जब आलस्यराजने यह सुना कि मुझे और उद्यमको छोड़कर सारे तरुण निराश होकर लौट आये हैं, तब कभी न आयी हुई आशा उसके मनमें उत्पन्न हुई। इस विश्वाससे कि एक राजकन्या यदि उद्यमके गलेमें वरमाला पहनायेगी, तो दूसरीकी मेरे ही गलेमें पड़ेगी, वह ऋद्धि-सिद्धिके दर्शनके लिये रवाना हुआ। आँखें आधी-सी खुली हुई हैं, मुँहसे बीच-बीचमें जुम्हाइयाँ ले रहा है, शराबीकी तरह लड़खड़ाते हुए पैर किसी तरह आगे बढ़ रहे हैं, शरीरके वस्त्र आँधीमें उड़ रहे पत्तोंकी तरह दीख रहे हैं—इस हालतमें आलस्यराजकी उद्यमसे दरवाज़ेमें ही भेंट हो गयी। उद्यमके एक हाथमें हथौड़ी, कतनी आदि हथियार थे। उसकी काँछ लगाकर ठीक तरहसे कसी हुई धोतीको देखकर आलस्यराज बोला,—'अरे पगले, तू पत्नी प्राप्त करने आया है कि शत्रुको जीतने? यहाँ क्या उसे आरेसे काटना है या कि उसके सिरपर हथौड़ी ठोकना है? पागल है रे बिलकुल! पूरा पागल! उलटे पैर लौट जा और मेरी तरह पोशाक करके आ जिससे यदि ऋद्धि नहीं तो न सही पर कम-से-कम सिद्धि तो तुझे मिल जायेगी।'

उद्यम कुछ न बोला। परंतु आलस्यराजकी ओर देखकर उसने मंद स्मित किया।

पहले द्वारपर आशावती खड़ी थी; उस दरवाज़ेसे दोनों भीतर चले गये। परंतु उत्साहवतीके दूसरे द्वारपर उद्यमका बड़ा सम्मान हुआ; इसके विपरीत आलस्यराजको भगा दिया गया। यह देखकर कि मैं पीछे रह गया, आलस्यराज चिल्लाया,—'अरे हरवाहे, अरे आरेवाले, ओ हथौड़ीवाले, मुझे यह दासी भीतर नहीं आने दे रही है रे!'

उद्यमको हँसी आ गयी और आलस्यराजके लिये अनुनयविनय करके वह उसे

भीतर ले गया। प्रत्येक द्वारपर यही अनुभव लेते हुए, जिस तरह गाड़ीके साथ आँगनके चोंगेकी भी यात्रा हो जाती है, उस तरह ऋद्धि-सिद्धिके सामने आलस्यराज उद्यमसह जाकर खड़ा हो गया।

इन परस्परविरोधी दो चित्रोंको देखते ही ऋद्धि-सिद्धि भी स्तंभित हो गयी। इस ख़्यालसे कि आलस्यराज पहले बोलेंगे उद्यम चुप ही था; परंतु यह देखकर कि जुम्हाइयोंके कारण उसे बात करनेकी फ़ुरसत मिलना असंभव है, उद्यमने ही अंतमें बातचीत आरंभ की।

उद्यम—हम दोनों स्वयंवरके लिये आये हैं।

ऋद्धि—स्वयंवरके लिये हथौड़ी क्यों लाये?

उद्यम—इसलिये कि भावी वधूको मेरे आगामी वैभवकी कल्पना आ जावे—

सिद्धि—ऋद्धि-सिद्धि जैसी राजकन्याएँ किसी हरवाहे, लुहार अथवा बढ़ईके गलेमें वरमाला पहनायेंगी क्या कभी?

आलस्यराज—उद्यम! देख लिया तूने अपनी हथौड़ीका प्रताप!

उद्यम—राजकन्या, उद्यमके घर ऋद्धि-सिद्धि जैसी राजकन्याओंको भी पानी भरना पड़ेगा। प्रेम जिस तरह स्त्रियोंका, उस तरह पराक्रम पुरुषका जन्मसिद्ध हक़ है।

ऋद्धि—यदि पराक्रम ही दिखाना था, तो साथमें कम-से-कम तलवार लानी थी!

उद्यम—तलवारके कारण दुनियाके दुखोंमें भराव पड़ता है; परंतु हलके कारण दुनियाके सुखोंमें बढोत्री होती है! खूनकी नदियाँ बहानेके पराक्रमसे मुझे पानीकी नहरें बहाकर फसलें पैदा करना और माता अन्नपूर्णाको प्रसन्न करना, बड़ा पुरुषार्थ लगता है। पर-राज्यके निरपराधी लोगोंको नवानेकी अपेक्षा लोहेको नवाना, ग़रीबोंको मामूली अपराधोंके लिये फाँसीपर चढ़ानेकी अपेक्षा, उन्हें भरपूर वस्त्र प्राप्त करानेके लिये सूत कातना, घर और नगरोंको बेचिराग़ करनेकी अपेक्षा, उन्हें सुंदर रीतिसे बनाना ही, मुझे अधिक महत्त्वका मालूम होता है।

आलस्यराज—अरे पगले, यह सब करेगा तो कठिन परिश्रमसे मर जायेगा न?

उद्यम— निरुद्योगी जीवनकी अपेक्षा उद्योगसे कठिन परिश्रम द्वारा आयी हुई मौत हज़ार गुनी श्रेष्ठ होती है।

आलस्यराज—राजकन्याओ ! मृत्युको इस प्रकार जानबूझकर गले लगानेवाले पतिको कौनसी चतुर सौभाग्यकांक्षिणी स्वीकार करेगी, यह आप ही मुझे बताएँ ! मैं अधिक बात करना पसंद नहीं करता । इसलिये —

ऋद्धि—पसंद नहीं करते या करते नहीं बनता ?

सिद्धि—तुम अपनी कुछ जानकारी भी तो बताओ हमें !

आलस्यराज—यह आलस्यराज सिर्फ़ गद्देसे तकियेपर और तकियेसे गद्देपर लेटा रहनेवाला है । मेरा धैर्य इतना बड़ा है कि, साक्षात गंगाजी मुझपर आ जायें, तो उसमें डूब जानेका भय न रखकर मैं अपने स्थानपर जहाँके तहाँ पड़ा ही रहूँगा ।

सिद्धि—कुछ कसरत-वसरत भी करते हो कि नहीं ?

आलस्यराज—हाँ, क्यों नहीं ? जब नींद उचट जाती है, तो लगातार करवटें बदलता रहता हूँ !

सिद्धि—बस, इतनी ही ?

आलस्यराज—इसके अलावा जुम्हाइयाँ लेना, हाथ-पाँव लंबे करना, चुटकियाँ बजाना इत्यादि कसरतें भी मैं हमेशा करता रहता हूँ ।

ऋद्धि—तुम राजकन्याओंकी मँगनीके लिये आये हो, इसलिये विपुल धन प्राप्त होनेवाला कोई उद्योग ज़रूर ही करते होंगे जिससे अपनी सम्पन्न पत्नीको संपूर्ण रीतिसे सुखी रखनेमें समर्थ हो सको ।

आलस्यराज—क्या कहा ? उद्योग ? अजी, उद्योगसे तो मेरी कट्टर शत्रुता है । मैं स्वयंवरके लिये आया हूँ, सो सिर्फ़ इस इरादेसे कि घरजमाई बनूँगा ।

ऋद्धि—हमारी रायमें तुम उद्यमराजके पासंगमें भी न उतरोगे !

आलस्यराज—मैं कौन अपने साथ हथौड़ी लाया हूँ ? यदि मैं राजकन्याओंकी इस सनकसे परिचित होता तो अपने साथ सूली भी ले आता ।

सिद्धि—यदि यह करते तो बड़ा अच्छा होता । तुम्हें यहाँसे वापस लौटनेके कष्ट ही न होते !

आलस्यराज—यानी, क्या आप दोनों मुझे ही बरमाला पहना देतीं ?

ऋद्धि—छि ! छि ! सूली ले आते, तो तुम्हें उसीपर चढ़ाकर वापस जानेकी तुम्हारी सारी तकलीफ़ें बचायी जा सकती थीं !

आलस्यराज—अरे बाप रे ! अच्छा, कम-से-कम मेरे हाथकी इन रेखाओंको ही देख लीजिये । ज्योतिषीजीने कहा है कि मेरी भाग्यरेखा बड़ी प्रबल है ।

ऋद्धि — परंतु तुम्हारी हथेलीसे उद्यमराजकी कलाई ही अधिक भाग्यवान है। आलस्यराज, हाथ जोड़कर बैठे रहनेवालेके हाथकी रेखाएँ उसे कैसा साथ देंगी? स्त्रियाँ पुरुषके माथेसे सीनेकी ओर, और हथेलीसे कलाईकी ओर ही अधिक देखती हैं। मैं उद्यमराजको ही माला पहनाऊँगी।

अलास्यराज — खैर, ऋद्धि यदि उद्यमको मिल गयी, तो फिर सिद्धि मुझे प्राप्त होनेमें क्या हर्ज़ है?

सिद्धी — यह कभी नहीं होगा। ऋद्धिसे भी सिद्धिके लिये अधिक तपस्या करनी पड़ती है। मैं भी उद्यमराजको ही वरूँगी।

ऋद्धि–सिद्धिके बीचमें मामूली वेशमें खड़े हुए उद्यमराजको देखकर आलस्य-राज झल्ला उठे और उन्हें ऐसा लगा कि उद्यमराजको कच्चा चबा जाऊँ। परंतु यह करनेके लिये मुँह खोलनेके कष्ट भी कौन उठाये!

हज़रत आँखें मलते हुए गुमशुम खड़े रहे!

● ● ●

३८

दो आभास

‘ड्राइवर!’ - मोटरमें बैठी हुई तरुणी चिल्लायी।

वेगसे दौड़ रही मोटरके शीशेसे उसने सड़कके किनारे एक सफेद राशि देख ली थी।

मोगरेकी कलियाँ – उनकी उस मंद-मधुर सुगंधकी स्मृतिसे ही उसके शरीरपर आनंदके रोमांच खड़े हो गये थे।

गाड़ीके रुकते ही उसने अपने नये मनीबैगसे एक रुपया निकाला। ड्राइवरकी ओर उसे फेंकती हुई वह बोली, – ‘मोगरेकी कलियाँ ले आओ।’

बड़ी चपलाईसे उस रुपयेको झेलकर, ड्राइवर नीचे उतरा।

तुरंत ही वापस आकर निराश चेहरेसे वह बोला, – ‘बाईसाहबा —’

‘बहुत महँगी दे रहा है क्या? एक रुपयेकी ही ले आ!’

‘मोगरेकी कलियाँ नहीं हैं वे, बाईसाहबा! मुरमुरे हैं!’

तरुणीने जाते-जाते उस सफ़ेद राशिकी ओर तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा।

इसी समय शहरके दूसरे सिरेपर एक भिखारिन धीरे धीरे क़दम बढ़ाती हुई चली जा रही थी। प्रकाश दिखा कि वह चौंक जाती। उसका हर दिनका यह अनुभव था कि वस्त्रकी अपेक्षा अँधेरा ही मेरी लज्जाकी अधिक अच्छी रीतिसे रक्षा कर सकता है।

ललचाई हुई आँखोंसे वह इधर उधर देख रही थी। केलेका एक फूला हुआ छिलका उसे दिखायी दिया। उसे लगा किसी अमीरने बिलकुल उतर गया हुआ केला सड़कपर फेंक दिया होगा। उसने फुर्तीसे उस छिलकेको उठा लिया। लेकिन उसमें नाखून-भर भी गूदा न था। छिलका फेंक देनेके लिये उसने अपना हाथ ऊपर उठाया, लेकिन तुरंत ही उसने वह छिलका अपनी झोलीमें रख दिया।

दूर रास्तेके किनारे उसे मुरमुरे बेचनेवाला एक मनुष्य बैठा हुआ दिखायी दिया। वह दबेपाँव उसके पीछे जाकर कुछ दूरीपर खड़ी हो गयी।

मुरमुरेवाला बीड़ी जलानेके लिये सड़कके उस पार गया। यह देखते ही किसी गिद्धकी तरह वह उस राशिपर झपट पड़ी। भरी हुई मुट्ठीको उसने उसी तरह मुँहमें ठूँस लिया। तुरंत ही थूःऽ थूःऽ थूःऽ करके उसने मुँहका लोंदा थूँक दिया। मोगरेकी कलियाँ थीं वे !

भिखारिनने जाते-जाते उस सफ़ेद शुभ्र राशिकी ओर तिरस्कारसे देखा।

● ● ●

३९

पृथ्वी, स्वर्ग और नरक

धर्मार्थ नौका चलानेके सिवा, केवट और कोई भी दूसरा काम न किया करता था।

और यदि उसने दूसरा कोई काम करना चाहा भी होता, फिर भी उसको करनेके लिये उसे अवकाश ही नहीं मिलता। सुबह पौ फटनेसे पहले ही, दोनों किनारोंपर यात्रियोंकी भीड़ लग जाती थी। इस पारके मनुष्योंको उस पार ले जाना और उस पारके मनुष्योंको इस पार ले आना—इसी काममें उदय हुआ सूरज पूर्वमें पश्चिमकी तरफ जाकर अस्त हो जाया करता था। जो कुछ यात्री दे देते, वही उसका भोजन था! किसीके द्वारा त्याग दिया हुआ फटा पुराना वस्त्र, उसके पहननेका कपड़ा था!

शाम होती कि वह बिलकुल थक जाया करता था। आवाजाहीके रुकते ही वह नौकाको किनारेपर ले आता और उसीमें सो जाता! नींदमें कभी कभी उसे सपना दीखता। उस सपनेमें उसे बच्चे या स्त्रीका चेहरा दिखा करता, जिसे उसने छोटे नदीमें डूबनेसे बचाया था।

इस निःस्वार्थी आत्माके पुण्यका इन्द्रको भय लगने लगा। उसके मनमें आने लगा—कल यदि यह मेरा इन्द्रपद ले ले तो?

सब देवोंकी सलाह लेकर, उसने कलिको पृथ्वीपर भेज दिया।

सायंकाल हो गयी थी। कलि एक मुसाफिरका वेष धारणकर, केवटके पास आया। केवट बिलकुल थक गया था।

कलिने उससे कहा, – 'भले आदमी, तुम इतनी मेहनत करते हो! परंतु इसका फल तुम्हें क्या मिलता है?'

केवट सिर्फ़ हँसा।

कलि मधुर वाणीसे बोला,– 'तुम्हारी नौकामें बैठकर कितनी ही रूपवती स्त्रियाँ यात्रा करती हैं। परंतु क्या अभीतक किसी स्त्रीने डाँड चलाते चलाते थक गये हुए तुम्हारे हाथोंको घंटा-भर दबाया है कभी?'

केवटने गर्दन हिलाकर नकार दर्शाया।

कलि बोला, – 'बाबा, संसार इसी तरह कृतघ्न है! ये यात्री तुम्हारी नौकामें बैठे बैठे मिठाइयाँ खाते हुए यात्रा करते हैं, पर उन्होंने कभी कोई मीठी चीज़ तुम्हें खानेको दी है क्या! वे तो उड़ायें मज़ेसे मीठी मीठी चीज़ें और तुम्हें देते हैं बासी रोटियोंके टुकड़े!'

केवटके मनमें आया – वास्तवमें यह जग बड़ा कृतघ्न है। ऐसे कृतघ्न जगमें रहनेके बदले —

'परंतु यह जग छोड़कर जाऊँ कहाँ?'

कलिने उसे दूसरे जगका मार्ग दिखाया। उस जगका नाम – स्वर्ग!

● ● ●

केवटको लगने लगा कि यह नया जग पहले जगकी अपेक्षा कितना अधिक कृतज्ञ है। वह मुश्किलसे चार क़दम ही आगे बढ़ता कि किसी लताकुंजसे कोई अप्सरा मुस्कराती हुई आगे आती और उसकी ओर तिरछी नज़रसे देखकर कहती,– 'महाराज, आप बहुत थक गये होंगे। दासीकी सेवा स्वीकार कीजिये!'

उत्तरका मौक़ा न देकर ही वह उसे लताकुंजमें ले जाती। वहाँ जब उसकी बाहें उसके गलेमें पड़ जातीं, तो केवटको यह भ्रम होता कि कुंजके भीतर खिले हुए फूलोंकी सुगंधपर मैं तैर रहा हूँ।

प्रत्येक लताकुंजमें एक एक अप्सरा इस रीतिसे उसका स्वागत किया करती। यही नहीं, बल्कि रंभा, उर्वशी, मेनका, घृताची आदि बड़ी बड़ी अप्सराओंको अब लड़ाईका एक नया ही विषय मिल गया – 'केवट किससे प्रेम करता है?'

केवटको स्वयं ही यह कभी कहते न बना। जिस अप्सराके बाहुपाशमें वह होता, उसे लगता कि उसी अप्सरासे उसका प्यार है। परंतु उसके दूर होते ही उसे विश्वास हो जाता कि वह प्रेमका सिर्फ़ एक मधुर आभास था।

अमृत पीना और अप्सराओंके आलिंगनमें कालक्रमण करना—वहाँ इतना ही उद्योग था उसे। यह बात न थी कि उसे कभी अपनी धर्मनौकाकी याद न आती हो। एकाध बार उसे उसकी याद हो आती थी। परंतु अब ऐसा मालूम होता कि वह किसी पूर्वस्मृतिमें खो रहा है, तो उसकी सेवामें रहनेवाली अप्सरा अपने बाहुपाशको और भी अधिक दृढ़ कर लिया करती। उस पाशमें वह दिव्य स्मृति चकनाचूर हो जाती।

• • •

इस तरह कितने दिन बीत गये इसका केवटको पता तक न चला।

परंतु एक दिन ऐसा उदय हुआ कि उसकी ओर एक भी अप्सराने झूँककर नहीं देखा। किसीने भी ठुमकते-ठुमकते आकर उसके आगे अमृतका प्याला नहीं रखा!

इस स्थित्यन्तरका अर्थ ही वह नहीं समझ पा रहा था।

बड़े प्रयाससे उसने कलिसे भेंट की। कलि उसे प्रणाम करता हुआ बोला,—'अब यही हमारी और तुम्हारी अन्तिम भेंट है।'

'इसका मतलब?'—केवटने पूछा।

'स्वर्गका तुम्हारा अन्तिम दिन है आज! कल तुम —'

'कल मैं कहाँ जाऊँगा?'

'नरकमें!'—बिकट हास्य करता हुआ कलि बोला, 'तुमने उपभोग लेकर अपने पुण्यको समाप्त कर दिया है! फूल जब निर्माल्य हो जाते हैं तब उन्हें फेंक देते हैं न? उस तरह तुम्हारे समान मनुष्योंका भी निर्माल्य —'

कलिने आगे क्या कहा, इसे केवट सुन भी न सका। उसके कानोंमें नरकमें पड़े हुए अभागे प्राणियोंकी चीखोंकी प्रतिध्वनियाँ गूँजने लगी थीं।

• • •

दूसरे दिन देवदूत केवटको लेकर स्वर्गद्वारके बाहर आये और उसे यमदूतोंके हवाले कर दिया।

केवट यमदूतोंसे बोला, – 'नरकमें क़दम रखनेसे पहले मेरी इच्छा है कि एक बार मैं पृथ्वीपर हो आऊँ!

यमदूत भी चाहते ही थे कि कहीं घूमें!

● ● ●

केवट नदीके किनारे अपनी धर्मनौकाकी ओर दौड़ता हुआ ही आया। उसने देखा – नौका चलानेके लिये कोई न होनेके कारण यात्रियोंमेंसे ही एक यात्री उसे चला रहा था। उससे ठीकसे चलाते नहीं बनती थी।

नौका एकदम झुक गयी। एक नन्हा बच्चा पानीमें गिर पड़ा। उसकी माँकी चीख उठी।

केवट पानीमें कूद पड़ा। बात-की-बातमें वह उस बच्चेके नज़दीक पहुँच गया उसने बच्चेको बाहर निकाला। बच्चा बहुत घबड़ा गया था, परंतु वह जीवित था।

केवटको विलक्षण आनंद हुआ। उस बच्चेकी माँका प्रसन्न चेहरा देखते ही उसके मनने कहा – 'अमृतकी मिठास और अप्सराओंका लावण्य इस आनंदके आगे फीके हैं।'

यमदूतोंने किनारेसे पुकारा, – 'केवट, चलो जल्दी! देर न लगाओ।'

केवट किनारेपर आया।

उसे देखते ही वे यमदूत चौंक पड़े!

एक दूसरेसे बोला, – 'हम एक गलत आदमीको ही पकड़ ले जा रहे हैं इसके आसपासका पुण्यका प्रकाश देखो। स्वर्गमें जानेका अधिकार है इसे!'

'मेरा स्वर्ग यहीं है!' – केवट हँसकर बोला।

'कहाँ?' – यमदूतने पूछा।

केवटने पानीकी नौकाकी ओर देखा। दृष्टिके पीछे पीछे उसका शरीर दौड़ता – हुआ गया। पैरोंकी हलचल थमते ही डाँड चलानेवाले हाथोंकी हलचल आरंभ हो गयी।

४०

प्रार्थना

प्राचीन कालकी बात है।

उस समय आकाशमें स्वच्छंदतासे उड़नेवाले पक्षियोंको हवाई जहाज़की घर्रघर्र आवाज़ नहीं सुनायी पड़ती थी, और पृथ्वीपर खिलनेवाले फूलोंको आकाशसे गिरनेवाले बमके गोलोंका भय नहीं लगता था।

उस समय जिस प्रकार भद्र पुरुषोंके 'संस्कृति-संरक्षक मण्डल' नहीं थे, उसी तरह किसानोंके मोर्चे और मज़दूरोंकी हड़तालें भी न थीं।

जँगलोंमें झोपड़ियाँ बनाना, जितनी ज़मीन जोती जा सकती हो उतनी जोतकर उसमें फसलें पैदा करना, और काम करते समय गाते-गाते और गाते समय काम करते करते जीवनमें रंग जाना — इतना ही उस समय अधिकांश लोगोंको मालूम था।

इन झोपड़ियोंमें रहनेवाले किसान सगे भाईसे भी अधिक प्रेमसे एक दूसरेके साथ बर्ताव करते। एकके पैरमें काँटा चुभ जाता, तो सबकी आँखोंसे आँसू टपकने लगते। एकको मधुमक्खियोंका छतना मिल जाता, तो प्रत्येक झोपड़ीके मनुष्योंको रोटीके साथ शहद खानेको मिलता।

• • •

बछड़े खेतोंमें घुसकर भुट्टोंको मुँह लगा देते, फिर भी सब कहते, — 'थोड़ा उन्हें भी खा लेने दो! उनमें भी हमारी तरह प्राण हैं।'

पक्षी आकर पके हुए अनाजपर टूट पड़ते, फिर भी वे कहते, – 'ले जाने दो थोड़ा उन्हें भी! उनमें भी तो हमारी तरह जान है।'

एक दिन बड़े जटाजूट और बड़ी लंबी दाढ़ीवाला एक गंभीर मनुष्य इन झोपड़ियोंके नज़दीक आया। बिलकुल भूखा था वह। उसने अन्नकी याचना की। सब किसानोंने कहा, – 'थोड़ा उसे भी खा लेने दो न? हमारी तरह उसके भी प्राण हैं।'

• • •

दूसरे दिन वे उसे खेतोंमें काम करनेके लिये बुलाने लगे। वह साधु बोला, – 'मैं काम नहीं करूँगा।'

सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने हँसते हुए पूछा, – 'फिर आखिर तुम करोगे क्या?'

साधुने उत्तर दिया, – 'प्रार्थना!'

प्रार्थना शब्दका अर्थ उन किसानोंमेंसे एककी भी समझमें न आया।

साधु हँसकर बोला, – 'तुम मूर्ख हो। गँवार हो! बिना पानी बरसे तुम्हारी फसलें पकेंगी भी?'

सब बोल उठे, – 'नहीं! कभी नहीं पकेंगी!'

'वह पानी कौन बरसाता है?' – साधुने प्रश्न किया।

'आकाश।' – सबने उत्तर दिया।

साधु उपहाससे बोला, – 'मूर्ख! अनाड़ी! आकाश पानी नहीं गिराता। ईश्वर पानी बरसाता है। आकाशके भीतर वह बैठा हुआ है। जब उसे क्रोध आता है तब बिजली चमकती है, वह हँसता है तो चाँदनी खिल जाती है। हर रोज़ उस ईश्वरकी प्रार्थना करो। अन्यथा वह पानी नहीं बरसायेगा, तुम्हारी फसलें पकेंगी नहीं।'

साधुने आँखें मूँद लीं। उसने हाथ जोड़े और मुँहसे बड़े बड़े शब्दोंको कहना आरंभ किया। किसी भी तरह किसान लोगोंसे उन शब्दोंको कहते नहीं बनता था। उन्होंने चुपचाप हाथ जोड़कर आँखें मूँदकर ईश्वरकी प्रार्थना की।

• • •

उन झोपड़ियोंमें प्रतिदिन नियमसे प्रार्थना होने लगी।

उस साल पानी जैसे चाहिए था वैसा ठीक ही गिरा।

किसानोंको लगा,– प्रार्थनासे ईश्वर प्रसन्न हो गया।

हरएक किसानने तय किया कि हमें खानेको दो कौर कम मिलें फिर भी हर्ज़ नहीं, पर साधु महाराजकी पूजा, यज्ञ और प्रार्थना आदि सब ठीकसे चलते रहना चाहिए। इसलिये हरएक साधुको अधिकसे अधिक अनाज देने लगा।

शीघ्र ही और भी बहुतसे साधु वहाँ आ गये और झोपड़ियाँ बनाकर रहने लगे।

उन सबकी प्रार्थनाओंको देखकर किसानोंको लगता – अब ईश्वर हमपर कभी नाराज़ न होगा!

• • •

आगामी तीन-चार सालोंमें एक बार भी उनपर भगवानकी नाराज़गी न हुई!

परंतु भगवानकी नाराज़गी न होते हुए भी, उनमेंसे हरएकपर, कभी अधपेट रहनेका मौक़ा आने लगा। अहोरात्र प्रार्थना करके ईश्वरको प्रसन्न रखनेवाले उन सब साधुओंको, जितना वे माँगे उतना अनाज देना हरएक किसान अपना कर्तव्य समझता था। परंतु – उन सबकी सुबह शाम चल रही प्रार्थनाको सुननेपर भी, ईश्वर दुगना अनाज पैदा क्यों नहीं करता, यह शंका अवश्य अब हरएकके मनमें पैदा होने लगी।

• • •

और शीघ्र ही एक ऐसी वर्षा ऋतु आयी कि —

ग्रीष्मके दिन गिन गिनकर समाप्त हुए थे इसी लिये उसे वर्षा ऋतु कहना चाहिए। अन्यथा वह भयंकर ग्रीष्म ऋतु ही थी। आकाशसे लगातार अंगारे बरसने लगे। उन अंगारोंने धरतीकी हरियालीको जलाकर राख कर दिया! वृक्ष-वेलियोंके कंकाल देखकर, पहले उनसे प्रेमालाप करनेवाली हवा गर्म आहें भरने लगी। हरएकको लगने लगा कि हम पृथ्वीपर नहीं हैं, बल्कि उल्टी कढ़ाईके भीतर बंद कर दिये गये हैं और उस कढ़ाईके तले दावानल जल रहा है।

किसानोंकी आँखोंमें पानी आ गया।

परंतु आसमानकी?

छिः! वहाँ काले मेघोंकी धुँधली-सी छाया भी नहीं दीख रही थी।

किसान साधुओंकी शरणमें गये।

साधुओंने यज्ञ आरंभ किया।

यज्ञकी ज्वालाएँ आकाशसे जाकर भिड़ गयीं। परंतु आकाशके भीतर बैठे हुए ईश्वरको उसकी आँच न लगी!

साधुओंने अहोरात्र सामुदायिक प्रार्थना शुरू की।

उनकी प्रार्थनाकी आवाज़ आकाशतक जाकर पहुँची। परंतु उसके भीतर बैठे हुए ईश्वरके कानोंमें वह न पड़ी।

• • •

बाहरकी आग किसानोंके पेटतक जा पहुँची। साधु लोग भोजन कर लेनेके बाद भूखे किसानोंको बराबर आशीर्वाद देते जा रहे थे। लेकिन आशीर्वादसे दुनियाकी कौनसी आग शान्त हुई है?

एक साहसी किसान आगे बढ़ा और बोला,–'इन साधुओंके झोपडोंमें अभी भी बहुत अन्न बचा हुआ है। उसपर कुछ दिनतक हमारी गुज़र चल सकती है। आगेकी बात आगे देखी जायेगी।'

जब किसानोंके दलने अन्नकी माँग की तब साधुओंका नेता चिल्लाया, –'इस साल नहीं तो न सही, परंतु कम-से-कम आगामी वर्ष तो पानी अवश्य गिरना चाहिए। वह गिरे, इसलिये अहोरात्र प्रार्थना करनी पड़ेगी। ऐसी प्रार्थना कर सकनेकी शक्ति हमारे शरीरमें बनी रहना चाहिए–शरीरमें शक्ति बनी रहनेके लिये—'

उसके इस वक्तृत्वको सुननेके लिये एक भी किसान स्थानपर न रहा। वे सब मिलकर उसकी झोपड़ीपर टूट पड़े।

दरवाज़ा रोके खड़ा हुआ वह साधु बोला, –'पीछे हटो, पीछे हटो। मेरे बदनको छुओगे, तो ईश्वर कुपित हो जायगा!'

पल-भर आँखें मूँदकर उसने ईश्वरकी प्रार्थना की। परंतु एक भी किसानने हाथ न जोड़े।

दूसरे ही पल साधु आँखें खोलकर देखता है तो हरएक किसान अपनी अपनी कुल्हाड़ी हाथमें लिये झोपड़ीमें घुसनेके लिये तैयार हो गया है।

साधुके छक्के छूटे। थर थर काँपता हुआ वह बोला, –'मुझे न मारो। मेरी एक ही प्रार्थना है। मुझे—'

क्षण-भर आँखें मूँदकर उन्हें फिरसे खोलते हुए और दूसरे साधुओंको पुकारते

हुआ वह बोला, –'आओ, आओ, जल्दी आओ। इन सब लोगोंके चरणोंपर गिर पड़ो। इनकी प्रार्थना करो।'

किसान और दूसरे सब साधु उसकी ओर चकित होकर देखने लगे।

साधुका वह नेता बोला, –'अभी अभी ही मुझे ईश्वरका साक्षात्कार हुआ है। ईश्वर अब आकाशके भीतर नहीं है – वह उतरकर पृथ्वीपर आ गया है – और इन किसानोंमें समा गया है।'

तुरंत ही उस साधुने किसानोंको साष्टांग नमस्कार किया। दूसरे साधुओंने भी उसका अनुकरण किया।

किसानोंने अपने हाथकी कुल्हाडियाँ दूर फेंक दीं।

● ● ●

४१
दो पतंग

एक पतंग खूँटीपर फड़फड़ा रहा था। दूसरा दीयेके इर्दगिर्द चक्कर काट रहा था।

ऊपरसे आवाज़ आयी, – 'पतंग!'

अग्निकी परिक्रमा करनेवाले ऋत्विजकी तरह दीपज्योतिके आसपास परिक्रमा करनेवाला छोटा पतंग उस पुकारको सुनते ही एकदम ठहर गया। उसने गरदन उठाकर ऊपर देखा।

खूँटीपरका पतंग बोला,-- 'बेटा पतंग, पागलकी तरह उस दीयेपर इस प्रकार झपट्टा न मारो।'

छोटे पतंगने हँसकर पूछा,– 'पागल कौन? तुम या मैं?'

बड़ा पतंग फड़फड़ाता हुआ बोला, – 'मैं भी पतंग हूँ और तुम भी पतंग हो। हम दोनों एक कुलके हैं। इसी लिये मैं तुम्हारे लिये इतना बेचैन हो रहा हूँ। पगले, वह दीया – आग – भयंकर आग है वह!'

'यह ज्योति कितनी सुंदर है! क्या, प्रत्येकके हृदयकी ज्योति इसी प्रकार होगी?' – छोटे पतंगने कहा।

'बेवकूफ़ हो तुम।' – खूँटीपरके पतंगभैया बोले, – 'पतंगका जन्म हवापर माजसे तैरते रहनेके लिये हुआ है। क्या, तुमने कभी देखा है कि मैं कितना ऊँचा उड़ता हूँ? नारियलके पेड़की चोटियाँ, मन्दिरोंके कलश – सब चीज़ें मेरे सामने

चौनी लगने लगती हैं। और कुछ दिनोंके बाद तो आकाश भी मेरे लिये चौना हो जायेगा!'

छोटे पतंगका मन द्विधा हुआ। बड़ा पतंग आज नहीं तो कल गगनको छू लेगा, सूरजके बिलकुल नज़दीक पहुँच जायेगा। और मैं? मैं धरतीपरकी एक मामूली ज्योतिके आसपास —

कहाँ सारे जगको प्रकाशित कर देनेवाला सूरज और कहाँ स्वयं अपने तलेका भी अँधेरा दूर न करनेवाली दीपज्योति! छोटा पतंग बड़े पतंगकी ओर बड़े आदरसे देखने लगा।

हवाके तालपर दीपज्योति नृत्य करने लगी। छोटे पतंगको आभास हुआ कि स्वच्छ आकाशमें बिजली चमक रही है। दीपज्योतिके साथ साथ उसका भी हृदय ऊपर नीचे होने लगा। उसके मनके सामने यह कल्पना चमक गयी कि दीपज्योतिका प्रत्येक अंगविक्षेप मेरे हृदय-संगीतकी एक मधुर तान है।

उसने ऊपर देखा। पतंगभैया फड़फड़ता हुआ उसकी भर्त्सना कर रहा था।

उसने सामने देखा। दीपज्योति बीच-बीचमें उसे इशारेसे अपनी ओर बुला रही थी।

छोटे पतंगने पूछा, — 'पतंगभैया, क्या मुझे अभी बताओगे तुम कितना ऊँचा उड़ते हो?'

'अभी?' — खूँटीपरसे अस्पष्ट शब्द आये।

'हाँ, अभी। देखो, हवा कैसी मस्त बह रही है इस वक्त?'

'पर — पर —'

'पर क्या?'

'परंतु मेरी डोर पकड़नेके लिये तो यहाँ कोई नहीं है!'

'डोर?' — छोटे पतंगने तिरस्कारसे ऊपर देखते हुए कहा, 'जब कोई दूसरा हाथमें डोर पकड़े, तब कहीं तुम उड़ो? तुम्हारी डोर तुम्हें ही मुबारक रहे। दूसरोंके हाथोंका खिलौना होकर —'

साँय साँय बहनेवाली हवाके साथ साथ दीपज्योतिने मुड़कर पतंगकी ओर देखा। ज्योतिके हृदयमें पतंग और हवाके हृदयमें ज्योति अदृश्य हो गयी।

उस अँधेरेमें सिर्फ़ खूँटीपरकी फड़फड़ाहट भर सुनायी पड़ रही थी!

● ● ●

४२

दूसरा अवतार !

उस पोखरेमें मछली और मेंढककी पल-भरमें घनिष्ठता हो गयी।

जब मछली किसी पनडुब्बीकी तरह तैरती, तो मेंढक उसीकी तारीफ़के पुल बाँध देता। जब मेंढक छलाँगें भरता तो मछली कहती, – 'वाह वाह, क्या कहने! क्या हनुमानजीकी तरह उछले हो, भैया?' स्वर्ग सिर्फ़ दो अँगुल ऊपर रह गया था!

पहले मैत्रीकी कच्ची गाँठ होती है। परंतु जब मन मिल जाते हैं तो पक्की गाँठ होनेमें क्या देर लगती है? दोनों ही बड़े धार्मिक वृत्तिवाले थे। मछली बड़े अभिमानसे हमेशा ही यह कहा करती थी कि जलप्रलयके समय मनूकी (नौकाको जिस महात्माने सहायता पहुँचायी थी उसके हम लोग औरस वंशज हैं। मेंढकको औरस या दत्तक – इस विषयमें थोड़ा शक होता था, यह बात दूसरी है।) उसे पूरी तरह विश्वास था कि मनु-स्मृतिका श्रेय मनुकी अपेक्षा हमारे पूर्वजको ही अधिक है। मेंढकको अन्तर्ज्ञानसे यह पता चल गया था कि पूर्व-जन्ममें वह एक महर्षि था। वर्षाकालके आरंभमें उसके मुँहसे स्फूर्तिसे बाहर निकले हुए सूक्त ही क्या यह सिद्ध नहीं कर रहे थे?

परंतु संसारके सुख भागते हुए बादलोंकी छायाकी तरह होते हैं। धीरे धीरे पोखरेका और उसके साथ ही मछलीके मुँहका पानी सूखने लगा! नज़दीक ही एक

गहरा कूआँ था। अब उसका आश्रय लिये बगैर कोई चारा नहीं है, ऐसा मछली-को विश्वास हो गया। मेंढकको छोड़कर जानेकी उसे बिलकुल हिम्मत नहीं पड़ती थी। परंतु बेचारी करती क्या? दुनियामें मेंढक बहुत हैं, परंतु अपनी जान एक ही है– इस तरह पूर्ण विचार करके वह एक बर्तनके ज़रिये चोरीसे कूएँमें उतर पडी।

मछलीके कूएँके भीतर जाते ही मेंढकको बिलकुल ही अच्छा न लगता था। वह कूएँके किनारे जाता और बार बार भीतर झाँककर देखता। गहरा –बहुत गहरा था वह कूआँ! जैसे कालपुरुषका जबड़ा ही हो। बदनपर खड़े हुए रोंगटोंकी परवाह न कर वह मछलीसे पूछता, –'और कौन है भीतर?'

'सिर्फ़ एक कछुआ।'

'स्वभाव कैसा है उसका?'

'सज्जन! अत्यन्त सज्जन। ईश्वरका पहला अवतार मैं, और दूसरा वह! मैं नहीं जानती थी यह बात। उसीसे पता चला। जैसा पहला, वैसा ही दूसरा। दोनों ही ईश्वरके अवतार। उनमें ऐसा कौनसा अधिक फ़र्क हो सकता है?'

मेंढक इस अवतार-मालिकासे परिचित था। एक बार दो छोटे लड़के उसको पत्थर मारते हुए पोखरेके किनारे खड़े थे। पत्थर मारते हुए वे अपने स्कूलका सबक भी याद करते जाते थे।

'पहला अवतार मत्स्यावतार। दूसरा अवतार कूर्मावतार।'

मेंढकको यह सब याद हो आया। उसके मनमें यह मोहक कल्पना भी चमक गयी कि मैं भी ईश्वरका कोई अवतार हूँ – कम-से-कम हो जाऊँगा।

'मेंढकभैया!' –मछलीने प्रेमसे पुकारा।

'क्या है जी?'

'बहुत दिन हो गये। तुम्हारे सूक्त नहीं सुने। भीतर आ जाओ न?'

'आ तो जाऊँ। पर मुझे कछुएका डर लगता है।'

'पागल हो तुम। अजी, उससे क्या डरना? परमेश्वरका दूसरा अवतार है न वह? मैं पहला अवतार नहीं हूँ क्या? जैसी मैं, वैसा ही वह।'

मेंढकने एक बाल्टीके द्वारा बड़े शौक़से कूएँके भीतर प्रवेश किया। परंतु पानीके पृष्ठभागपर आकर सूक्त कहनेके लिये उसने अपना मुँह खोला ही था कि एकदम कछुएने पीछेसे आकर उसे कसमसाकर काट खाया। क्षणार्धमें सूक्तका रूपान्तर

आक्रन्दनमें हो गया। भयभीत होकर मेंढक कूएँकी तलीमें पहुँचा। थोड़ी देरके बाद उसने सिर ऊपर निकाला। कछुएने तुरंत उसका पीछा किया।

मेंढकका आक्रंदन सुनकर मछलीने पूछा,–' मेंढकभैया, लगता है यहाँकी आब-हवा तुम्हें बरदाश्त नहीं होती, तुम्हारी आवाज़में बहुत फ़र्क हो गया मालूम हो रहा है। या ये कोई नये ही सूक्त हैं ?'

उसे उत्तर देनेके लिये मेंढकने मुँह खोला। परंतु कछुएके काट खानेके कारण उसके मुँहसे इस तरहकी आवाज़ निकली जैसे किसीने गला दबा दिया हो। उसे पूर्ण रूपसे ज्ञात हो चुका कि ईश्वरके पहले और दूसरे अवतारोंमें भयंकर अन्तर होता है।

मछलीने कहा,–' मेंढकभैया, मुझे खोया-खोयासा लग रहा है। तुम्हारे वे मीठे सूक्त — '

कछुएके काटनेकी ओर ध्यान न देकर मेंढक चीख उठा,– ' उन्हें अब अगले जन्ममें ! '

' यह कैसी अशुभ बात मुँहसे निकाल रहे हो जी ? '

' मैं नहीं कह रहा हूँ यह। '

' फिर ? '

' मुझसे कोई कहलवा रहा है ! '

' कौन ? '

' यह ईश्वरका दूसरा अवतार ! '

मछलीको विश्वास हो गया कि कूएँमें आते ही मेंढकका दिमाग़ घूम गया है और उसने अफ़सोसकी एक आह भरी।

●●●

४३

जीवन और कला

मनमें संचित कर रखे हुए क्रोधको कभी न कभी तो बाहर निकालना ही था। पृथ्वीका भी यही हुआ। वह क्रोधसे थरथर काँपने लगी। क्षणार्धमें उसके शरीर-परके सुंदर मंदिरोंके अलंकार टूटकर नीचे गिर पड़े। क्रोधावेशमें उसे यह भी होश न रहा कि अपने हरे सालूका अंचल स्कंधसे खिसक गया है। अपने हृदयको थोड़ा खोल देनेसे ही जो जगको जीवन देनेवाला अमृत देती, उसीके हृदयसे आज विषैले स्रोत उमड़ने लगे।

उसके क्रोधके कारणका पहले किसीको भी पता नहीं चलता था। और वह चलता भी कैसे ? रुधिर-प्रिय मंगल, स्थितप्रज्ञ बुध, तत्त्वनिष्ठ गुरु और विलास-मग्न शुक्र – ये सब ठहरे पराये पुरुष ! रमणी क्या पराये पुरुषसे कभी अपने हृदयकी बात व्यक्त कर सकेगी ? ऊपरसे, इन सब पुरुषोंमेंसे नज़दीक ऐसा कौन था कि जिससे भावनावेशमें वह अपनी गुप्त बातें कह देती ?

परंतु प्रेम और क्रोधको कितना ही छिपाया जाये पर वे गुप्त नहीं रह सकते। पृथ्वीके क्रोधका कारण धीरे धीरे स्पष्ट होने लगा। सूर्योदय होते ही उसकी शान्ति जाति रहती। रातको चन्द्रमाका स्वागत करनेके लिये पहना हुआ बूटेदार सालू वह उतार डालती और तपस्विनीकी तरह एक सफ़ेद साड़ी पहनकर वह सूर्यका

स्वागत करती। लेकिन सायंकालको जब सूर्य चला जाता, तो विविध स्वर्गीय रंगोंके सालुओंकी तहें हटाकर देखनेमें उसे अवर्णनीय आनंद होता। चन्द्रमाकी रुचिका ख्याल कर, अंतमें वह बूटेदार नीला सालू ही पहन लेती यह सच है परंतु जब चन्द्रमा दीखने लगता तब दिनको मूक रहनेवाले उसके हृदय-सागरमें ज्वार आ जाता। उस ज्वारकी लहरोंके कणकणसे उसके कानोंमें नीचे लिखा गीत गूँजता रहता —

'प्रणयाविण जगिं शून्य जिणें
वसंतविरहित जशीं वनें' [१]

पृथ्वीको क्रोध आया था सिर्फ एक बातपर ! ठीक निश्चित समयपर आने-जानेवाले रुक्ष, क्रोधी और नीरस सूर्यकी मुझे परिक्रमा करनी पड़ती है और मेरे आसपास चक्कर काटनेवाले चन्द्रमासे, अपने हृदयसागरमें उमड़नेवाली लहरोंको दिखानेके सिवा, और किसी भी प्रकारसे मैं अपना प्रेम व्यक्त नहीं कर सकती। चन्द्रमाकी चंचलता, उसका प्रतिदिन बदलनेवाला रूप, केवल करस्पर्शसे ही रुक्षताको रम्यतामें परिवर्तन करनेवाला उसका जादू – सब – सभी बातें कितनी मनमोहक ! इसकी तुलनामें उससे कई गुना बड़ा दीखनेवाला सूर्य – उसका एक भी तो कोई गुण दीखना था उसमें ! यह सूर्य हृदयके सत्वको शोषण कर लेनेमें अवश्य बड़ा कुशल है !

सूर्यका स्वागत करनेके लिये सृष्टिमाताके द्वारा सिखाये गये गायत्री मंत्रको पृथ्वी धीरे धीरे भूल गयी। रजनी और सागरिकाने उसे जो प्रेमगीत सिखाये थे उनको गुनगुनानेमें ही उसे आनंद आने लगा। उसे ऐसा हो जाता कि दिन कब समाप्त होता है और रात कब आती है। उसके मनकी यह हलचल सूर्यके ध्यानमें आ गयी। उसका यह विश्वास हो गया कि चन्द्रमाने ही उसे विलासलोलुप बना दिया है। क्रोधावेशमें चन्द्रमाको दण्ड देनेके लिये वह अनेक बार उसके नज़दीक गया।

चन्द्रमा भयसे छिप जाता। चन्द्रमाके विरहसे उस दिन पृथ्वीके हृदयसागरमें और भी अधिक तूफ़ानी लहरें उमड़ पड़तीं।

सूर्यने यह प्रयत्न भी किया कि पृथ्वी और चन्द्रमाको आमने-सामने खड़ा करके सारी बातें साफ साफ कह दी जावें। इस कल्पनासे कि मेरे कलंकित प्रणयका पता

१ 'प्रणयके विना जगमें जीना शून्यकी तरह है जैसे कि वसंत विराहित वन हों।'

पृथ्वीको चल जायेगा, चन्द्रमाका मुँह कालास्याह पड़ गया। परंतु पृथ्वीको लगा - चन्द्रमा सच्चा कलाकार है, उसका हृदय कितना कोमल है! मेरे दुःखकी कल्पनासे ही उसका मुँह काला पड़ गया है।

प्रणयी चन्द्रके प्रति पृथ्वीकी इस अंध आसक्तिको देखकर सूर्य निराश हो गया। सारे प्रेम-पाशोंको तोडकर उसने पृथ्वीसे बहुत दूर चले जानेका निश्चय किया।

• • •

सूर्य चल दिया। एक दिन गया, दो दिन बीते! पृथ्वीको चन्द्रमा कहीं भी नहीं दीखता था। वह ज़ोर ज़ोरसे पुकारने लगी, – 'आओ, कलाधर आओ, उस नीरस सूर्यकी झंझट सदाके लिये चली गयी। दिन और रात – आठों पहर अब हमें प्रणय-आनंद लूटना है। आओ सखे, मेरे राजा, दौड़ते हुए आओ।'

दिन हमेशाके लिये रात बन गया। युग बीत चुके। परंतु पृथ्वीको चन्द्रमाका फिर धुँधला-सा भी दर्शन न हुआ।

• • •

४४

नये राक्षस

चित्रगुप्तके कार्यालयके सामने लगी भीडको देखकर, नारदमुनिको बड़ा आश्चर्य हुआ। अनजाने उनके मनमें कुतूहल उत्पन्न हो गया।

फेनिल लहरोंमेंसे कोई नौका बड़ी कठिनाईसे अपनी राह निकाले, उस तरह जैसे तैसे वे भीतर पहुँचे।

चित्रगुप्तके सामने दो जीव खड़े हुए थे।

पहले जीवकी ओर ध्यानपूर्वक देखते हुए उसे लानेवाले यमदूतसे चित्रगुप्तने पूछा,– 'इसका नाम क्या बताया तुमने?'

यमदूतने उत्तर दिया,– 'बिलासपुरके नेता और साहूकार भाऊसाहब इनामदार!'

माथेपर शिकनें लाकर अपनी बहीको देखते हुए चित्रगुप्तने कहा,– 'बड़ी भूल कर दी तुमने। इस भाऊसाहब इनामदारको तो अभी बीस वर्ष और जीना है!'

यमदूत अपने आप ही हँसा। लेकिन तुरंत ही गंभीर होकर वह बोला,– 'यह अपमृत्यु है, महाराज।

'अपमृत्यु!'

'जी। यह एक औरतको अपनी मोटरमें बैठाकर ज़बरदत्ती भगाये लिये जा रहा था। वह औरत मोटरका दरवाज़ा खोलकर भाग जानेकी कोशिश करने लगी।

उसे पकड़नेके प्रयत्नमें गाड़ी चलानेका चाक इसके हाथसे छूट गया और गाड़ी बड़े वेगसे एक पेड़से टकरा गयी और'—

चित्रगुप्तको विश्वास हो गया कि इस मनुष्यके बारेमें यमदूतसे कोई गलती नहीं हुई है।

दूसरे जीवके पास खड़े हुए यमदूतसे उन्होंने पूछा,—'इसका क्या नाम है?'

'महादू जाधव।'

'गाँवका नाम?'

'विलासपुर।'

'धंधा?'

'काश्तकारी।'

चित्रगुप्तने अपनी बहीके पन्ने जल्दी जल्दी उलटाये और यमदूतकी ओर देख-कर वे बरस पड़े,—'बेवक़ूफ कहींके! इस महादू जाधवकी ज़िंदगी अभी छत्तीस साल और बची है!'

यमदूत अपने आप ही हँसा, परंतु शीघ्र ही गंभीर होकर बोला,—'यह भी अपमृत्यु है, महाराज।'

'अपमृत्यु?'

'जी हाँ! विलासपुरसे तीन मील दूर एक खेतमें महादू काम कर रहा था। शामको घर लौटते समय उसे रेलगाड़ीका एक पुल टूटा हुआ दिखायी दिया। इसी समय उसे रेलकी सीटी सुनायी दी। क्या करूँ, उसकी समझमें न आया। वह ज़ोर ज़ोरसे चिल्लाता हुआ रेलगाड़ीकी तरफ़ भागने लगा। ड्राइवरको लगा—कोई पागल चिल्ला रहा है! उसने गाड़ीकी रफ्तार कम न की। इस भयसे कि यदि गाड़ी आगे गयी तो वह पुलपरसे नीचे गिर पड़ेगी और सैंकड़ों आदमी अपनी जानसे हाथ धो बैठेंगे, महादू पागल हो गया। गाड़ी बिलकुल नज़दीक आ गयी, तब वह एकदम दो पाँतोंके बीचमें जाकर खड़ा हो गया। ड्राइवरने एकदम गाड़ीको रोकनेकी कोशिश की। परंतु वह उसे रोक न सका। और महादू—'

नारदमुनिका मस्तक इस दूसरे जीवके आगे नत हो गया।

• • •

भगवान विष्णुसे गप्पें हाँकते समय भी उन्हें महादूका विस्मरण न हुआ।

उन्होंने हँसते-हँसते भगवानसे प्रश्न किया,—'प्रभो, आजकल आपके अवतारकी

गड़बड़ कहीं भी नहीं सुनायी देती ! लगता है जैसे लक्ष्मी माताने आपको सौगंद खिला दी है।'

इतने मंद स्वरमें जिससे कि लक्ष्मी न सुन सकें, भगवान बोले,—'नारद, तुम ब्रह्मचारी हो, इसी लिये पत्नीकी सौगंदका तुम्हें इतना महत्त्व मालूम होता है।'

क्षण-भर ठहरकर विष्णु कहकहा लगाकर बोले,—'अभीतक तुम रावण और जरासंधके ज़मानेमें ही घूम रहे हो, नारद ! आजकल मृत्युलोकमें इतना सुधार हो गया है कि वहाँ दवाके लिये भी राक्षस न मिलेगा। फिर मेरे अवतारकी ज़रूरत ही क्या है ? कैसी नयी नयी कल्पनाएँ निकाल रहे हैं ये मनुष्य ! युद्ध बन्द हो, इसलिये एक राष्ट्र-संघ बनाया है, रूसमें मज़दूर और मालिक एक थालीमें भोजन कर रहे हैं, ओर भरतभूमिमें तो गांधी नामका एक साधु लोगोंको सत्य और अहिंसाका पाठ बरसोंसे पढ़ा रहा है !'

भरतभूमि, विलासपुर —

नारदमुनिको कुछ समयके पहले देखे हुए दो जीवोंकी याद हो आयी। वे दोनों विलासपुरके ही थे।

• • •

विलासपुरके मध्यवर्ति प्रांगणमें जनताका समुद्र लहरा रहा था ! कोई सभा ही हो रही थी। वहाँ नारदमुनिको लगा कि महादूके दिव्य त्यागकी सराहना करनेके लिये शायद विलासपुरकी जनता एकत्रित हुई होगी। वे भी जाकर उसमें शामिल हो गये।

सभाके अध्यक्ष महोदय कह रहे थे,—'इस शहरकी हर संस्था भाऊसाहबकी ऋणी है। नगरपालिका, बजरंग सिनेटोन और महिला-मंदिर तो आज अक्षरशः अनाथ हो गये हैं ! भाऊसाहबकी आकस्मिक मृत्युसे विलासपुरकी कितनी हानि हुई है —'

नारदजीके पास बैठा हुआ एक मनुष्य धीरेसे बोला,—'खासकर शराबकी दूकानोंकी —'

दूसरा कुहनीसे उसे धक्का देता हुआ बोला,—'और आजके अध्यक्ष जैसे भाऊसाहबके दोस्तोंकी ! इन दोनोंने मिलकर कितने खून हजम कर डाले हैं, कितने ग़रीबोंको चूस डाला है और कितनी औरतोंकी इज्ज़त धूलमें मिला दी है, यह —'

अध्यक्षजी अत्यंत गंभीर मुद्रासे कह रहे थे,—'भाऊसाहबका नाम आप लोगोंके

हृदयोंमें खुदा हुआ है। उनकी मूर्त्ति हमारी और आपकी आँखोंके सामने खड़ी हुई है। लेकिन आनेवाली पीढीको इस श्रेष्ठ पुरुषकी कल्पना कैसे हो? इसलिये मेरा नम्र निवेदन है कि इस चौकको 'भाऊसाहब चौक' नाम दिया जाय और उनकी एक सुंदर मूर्त्ति यहाँ स्थापित की जाये। मूर्त्तिके लिये लगभग दस हज़ार रुपये खर्च होंगे। फूल नहीं तो फूलकी पँखड़ी ही सही, इस न्यायसे मैं इस सत्कार्यके लिये पाँच सौ रुपये देता हूँ!'

कितनी ही देरतक तालियोंकी कड़कड़ाहट हो रही थी। कुछ समयके पहले अध्यक्षजीकी निंदा करनेवाले दो महाशय भी ज़ोर ज़ोरसे तालियाँ बजा रहे थे।

अस्वस्थ मनसे नारदमुनिने उन दो महाशयोंमेंसे एकसे पूछा, –'महादू जाधव कहाँ रहता था?'

'कहाँका निकाला तुमने यह महादू जाधव, साधुजी? तुम्हारे दोपहरके मिष्टान्नकी कहीं जुगत न लगती हो, तो भाऊसाहब इनामदारकी कोठी चले जाओ न? उनकी पत्नी आजसे दस दिनतक ग़रीबोंको भोजन करानेवाली है। हाँ, हमने भी तो अपने होटलसे दस दिनकी छुट्टी लेनेका निश्चय किया है!'

नारदमुनि निराश हो गये। उन्होंने उसी निराशाके बीच दूसरे व्यक्तिसे पूछा,– 'महादू जाधव कहाँ रहता था?'

सिर खुज़ाते हुए उसने उत्तर दिया, –'क्या, उस महादूको पूछ रहे हो जो कल रेलके नीचे कट मरा था? कौन जाने, महाराज? हाँ, यदि यह पूछो कि आजकी सभाके सभापतिजीका घर कहाँ है, तो पाँच सालका बच्चा भी आपको दिखा देगा। परंतु महादू जाधव —'

इतना कहकर उसने ऐसा बिकट हास्य किया कि नारदजीको आभास हुआ जैसे उनके सामने कोई महाक्रूर पशु अपना भयंकर ज़बड़ा खोले हुए खड़ा है।

जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाते हुए वे शहरसे जाने लगे। रास्तेमें जो भी मिलता उससे एक ही प्रश्न पूछते थे, –'महादू जाधव कहाँ रहता था?'

प्रत्येक उनकी ओर आश्चर्यसे देखता। उत्तर देनेवाले प्रत्येक व्यक्तिकी मुद्रापर यही भाव झलकता था कि इस साधुका दिमाग़ बिगड़ गया है और वह एक बेवक़ूफ़की तरह हमसे कोई भी अंटसंट प्रश्न पूछ रहा है; और प्रत्येकका उत्तर यही रहता, –'महादू जाधव? हम नहीं जानते, भई!'

नारदजीके मनमें आया कि चित्रगुप्तके कार्यालयमें महादू जाधवका नाम

सुनते हुए मुझसे कोई भूल तो नहीं हो गयी है ? इस विचारके मनमें आते ही नारदजी चकराये। उन्हें एकदम स्मरण हो आया, – 'टूटा हुआ पुल – रेलगाड़ी – महादू —'

वे रेलकी सड़कके किनारे किनारे जाने लगे।

विलासपूर दो मील पीछे रह गया। दूरसे उन्हें एक जगह एकदम बड़ी भीड़ दिखी। उनके मनमें आया, – 'महादूने जहाँ दिव्य आत्म-त्याग किया है वहाँ उसका स्मारक बनानेके लिये गाँवके कुछ लोग इकट्ठा हुए होंगे! भाऊसाहबके स्मारककी सभाके बराबर भीड़ न हो फिर भी —'

मुनिवर्य आश्चर्यसे स्तंभित हो गये!

टूटे हुए पुलकी मरम्मतका कार्य आरंभ हो गया था। मुनिजीको जो भीड़ दिखी थी वह मरम्मत करनेवाले मज़दूरोंकी थी।

• • •

नारदमुनिको हँसते देखकर विष्णु भगवानको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे हँसते हुए बोले, - 'क्यों, क्या हो गया है, नारद ?'

नारदमुनिने उत्तर दिया, – 'भगवान, आपकी सारी जानकारी एकदम गलत है। मृत्युलोकमें राक्षस नये नये रूप धारण करके अकड़ते हुए विचरण कर रहे हैं। चलिये, उठिये, जल्द अवतार लीजिये।'

• • •

४५
शांति-देवी

बड़ा विख्यात मूर्त्तिकार था वह। रातरानीके फूलकी तरह उसकी कला थी। जितनी कोमल और सुकुमार, उतनी सुगंधिको सहजभावसे दूरतक फैला देनेवाली।

उसके हाथसे कितनी ही सुंदर मूर्तियाँ निर्मित हुई थीं। राजधानीके हर चौककी मूर्तियाँ, राजप्रासादके महलकी प्रतिमाएँ, मंदिरोंकी रम्य और रुद्र मूर्त्तियाँ – हरसिंगारका बहार आ जाये, उस तरह उसकी कला लगातार खिलती आयी थी।

परंतु मूर्त्तिकार अवश्य मन-ही-मन असंतुष्ट था। अपनी अस्वस्थताका कारण क्या है इसका खुद उसे भी ठीक तरहसे पता नहीं चलता था। कभी उसे लगता – मेरी कलामें अभी भी कुछ अभाव है। अँधेरी रातमें आकाश-भर चाँदनी चमक रही हो, फिर भी चन्द्रकोरकी कमी आँखोंको एकदम खटकने लगती है। मेरी कलामें भी इसी तरहकी कोई कमी हैं —

उस अभावको खोज़ निकालनेका पागलपन ही उसपर सवार हो गया। कई रातें वह तड़पता हुआ जागकर बिताने लगा। बीच-बीचमें उसे झपकियाँ होतीं, कभी कभी एकाध मीठा स्वप्न उसकी अध-खुली आँखोंके सामनेसे घूमता हुआ निकल जाता। परंतु जिसे खोज़ रहा था वह उसे किसी भी तरह न मिलती थी। वह अपने आपपर ही क्रोधित हुआ – क्रोधसे पूरा पागल हो गया। एक बार तो

आधी रातको एकदम उठा। हाथमें एक हथौड़ी ली और अपनी प्रिय पत्नीकी पसंदकी एक मूर्तिके पास गया और उसकी ओर क्रूर दृष्टिसे देखने लगा। उसकी पत्नी उसी समय जाग गयी थी इसी लिये वह मूर्त्ति बच गयी!

खूब गरमी पड़े, आसमानमें बादलोंके कारण अँधेरा छा जाये, धूलके बादल उठें, परंतु पानी न बरसे – इस तरह उसके मनकी स्थिति हो गयी।

अन्तमें एक दिन पानी बरसा!

स्वप्नसे वह हँसता हुआ ही जागा। उसकी ध्येयमूर्ति उसे दीख गयी थी। उसकी मुद्रापर चमकनेवाला वह अद्भुत स्मित! उस स्मितकी छोटी छोटी छटा-ओंमें भी शरदकी पूर्णिमा नृत्य कर रही थी।

मूर्तिकार स्वयं अपनेको भूल गया। उसकी आँखोंकी सामने स्वप्नकी वह प्रसन्न मूर्ति गा रही थी। उस गीतके एक एक सुरको पाषाणमें अंकित कर रखनेके लिये वह छटपटाने लगा।

• • •

मूर्ति तैयार हो गयी। उसका वह अद्भुत मधुर स्मित – वह शान्त वात्सल्य-पूर्ण दृष्टि – सारे जगको हृदयसे लगानेके लिये उसके द्वारा आतुरतासे फैलाई हुई भुजाएँ —

मूर्तिकारके आनंदकी सीमा न रही। उसने मूर्तिका नामकरण किया — शान्तिदेवी।

सारे नगरमें हर मनुष्यकी जिव्हापर चर्चाका एक ही विषय था — नयी मूर्ति – शान्ति-देवी!

शीघ्र ही शुरू होनेवाली लड़ाईके विचारोंमें राजा व्यग्र था। परंतु वह भी अपने आप उस मूर्तिको देखनेके लिये आया। लौटते समय यह हँसकर मूर्तिकारसे बोला, – 'तुम्हें जल्द ही इसका इनाम मिलेगा!'

एक घंटेके भीतर राजसैनिकोंने मूर्तिकारका घर घेर लिया। एक गुनहगारकी तरह हाथोंमें हथ-कड़ियाँ पहनाकर वह जेलके भीतर एक अँधेरी कोठरीमें रवाना कर दिया गया।

कोठरीका द्वार बंद करनेवाले अधिकारीसे मूर्तिकारने कहा, – 'चाहो तो मेरे प्राण ले लो! परंतु मेरी वह नयी मूर्ति – वह शान्ति-देवी – उसे धक्का न लगाना।'

बाहरसे अजीब हास्य सुनायी पड़ा।

मूर्तिकारको लगा – मेरे हाथ-पाँवकी बेड़ियाँ ही खनखना रही हैं।

• • •

दिन निकल गये, महीने गुज़र गये, सालें बीत गयीं। मूर्तिकारको अपने गुनाहका पता कभी न चला। उसे उसकी परवाह भी न थी। जब उसका मन विषण्ण हो जाता तो वह अपनी नयी मूर्तिके चिन्तनमें मग्न हो जाया करता – बात-की बातमें वह अपने दुखको भूल जाता।

एक दिन अकस्मात उसकी अँधेरी कोठरीका द्वार खुला। उसके बदनपरकी कैदीकी पोशाक़ उतार दी गयी और उसके स्थानपर उसे बहुमूल्य कपड़े पहना दिये गये। बड़े सम्मानके साथ वह दरबारमें लाया गया। राजाके नज़दीक ही उसका आसन रखा गया था।

वह विलक्षण दंड – यह विचित्र सम्मान – मूर्तिकार हँसकर अपने आपसे बोला, – 'यही सच है कि राजा लोग छोटे बच्चोंसे भी अधिक सनकी होते हैं।'

उसने आसपास देखा।

मूर्तिकी पीठ ही उसकी तरफ़ थी। फिर भी उसके दर्शनसे उसके रोमांच खड़े हो गये। वह शान्तिदेवी थी। उसके मस्तकपर रत्नजटित मुकुट शोभा दे रहा था। उसके कंठमें मोतियोंकी मालाएँ लहरा रही थीं। सारा दरबार हाथ जोड़ कर उसकी पूजाके लिये तैयार हो गया था।

मूर्तिकारके आनंदका पारावार न था।

उसका हाथ पकड़कर राजा उसे मूर्तिके पास ले जाने लगा। मूर्तिकारने आनंदसे आँखें मूँद लीं।

राजा कहने लगा, – 'सरदारो, हमारी जीतका सारा श्रेय इस मूर्तिको है। इसने हमारे सैनिकोंको स्फूर्ति प्रदान की। इसने शत्रुसेनाके खूनकी नदियाँ बहा दीं।'

मूर्तिकारने चौंककर आँखें खोलीं। सामनेकी मूर्ति – वह उसीकी थी! परंतु उसके द्वारा स्वप्नमें देखी गयी मूर्ति और यह मूर्ति – छिः! दोनोंमें कोई साम्य न था। इस मूर्तिका हास्य राक्षसीय प्रतीत होता था, इस मूर्तिकी दृष्टि हिंस्र श्वापदकी थी। इस मूर्तिकी फैली हुई भुजाओंमें रक्तसे भरा हुआ एक नरमुंड था —

मूर्तिकारने राजासे कहा, – 'आपकी कल्पना बहुत सुंदर है! फिर भी इस मूर्तिमें अभी एक कमी रह गयी है। यदि वह पूरी हो जावे तो —'

किसीने हथौड़ी आगे बढ़ा दी ।

मूर्तिकार झटसे आगे बढ़ा और किसी पागलकी तरह उस मूर्तिपर हथौड़ीके घाव बरसाने लगा । मूर्तिके एक एक टुकड़ेके साथ उसकी मुद्रापर आनंदकी छटाएँ चमकने लगीं ।

● ● ●

४६

पारस

उसे हमेशा लगता कि मैं ईश्वर हूँ। परंतु संसारमें चमत्कार दिखाये बिना कोई नमस्कार नहीं करता और बिना नमस्कारके देवत्व प्राप्त नहीं होता।

वह कभी धूपसे प्रकाशित नहीं हुआ और न कभी चाँदनीमें चमका।

चाहे मूसलधार पानी बरसे अथवा नींबूके बराबर बड़े बड़े ओले गिरें; इन हज़रतका मौनव्रत कभी भंग न हुआ।

नोकदार पत्थर उसकी हँसी उड़ाते, – 'पूरा बुद्धू है रे तू!'

एक गिलोला उसके पाससे चक्कर खाता हुआ चला गया। परंतु वे हज़रत अपनी जगहसे टससे मस न हुए।

एक बार उसने पिघला हुआ चन्द्रकान्त देखा। परंतु वह स्वयं एक क्षणके लिये भी द्रवित नहीं हुआ।

कालरूपी पुरुष कवायद करनेवाले सिपाहीकी तरह क़दम बढ़ाता हुआ निरंतर चला जा रहा था

• • •

एक दिन रास्तेसे कुछ कैदी जा रहे थे। धूप इतनी तेज़ थी जैसे आसमानसे शोले बरस रहे हों! विश्रांतिके लिये वे कैदी उस पत्थरके आसपास फैले हुए

पेड़की छायामें बैठ गये। एक कैदीने गाना भी आरंभ कर दिया। उस गानेकी न कोई ठीक तर्ज़ थी, न ताल और न सुर। फिर भी सारे कैदी मस्तीसे झूमने लगे। जो सिपाही उन्हें ले जा रहा था वह भी यह भूल गया कि मैं कैदियोंपर पहरा कर रहा हूँ।

प्रेम-गीत था वह। उस गीतका प्रेमी कह रहा था,–'प्रिये, मैं पहले लोहेके समान था, परंतु तेरा स्पर्श होते ही मेरा जीवन स्वर्णमय हो गया!'

बड़े रंगमें आकर गाना सुननेवाले एक कैदीने हाथमें रखा हुआ फावड़ा सहजभावसे ऊपर उठाया और धीरेसे उस पत्थरपर पटक दिया। खन्नसे आवाज़ हुई। उस आवाज़से चौंककर सारे कैदी उस तरफ देखने लगे और क्या देखते हैं कि वह फावड़ा पीला दीखने लगा है! एक–दो–तीन — हरएकने अपना अपना फावड़ा उस पत्थरको लगाया। हरएकका फावड़ा सोनेका हो गया।

'ईश्वर, ईश्वर!'– सब कैदी आनंदसे चिल्लाये। लोहेको सोना बनानेवाले उस पत्थरको प्राप्त करनेके लिये हरएक कैदी कोशिश करने लगा। आध घंटा पहले जहाँ गानेका रंग चढ़ा था, वहाँ अब कराहें सुनायी पड़ने लगीं। एक दूसरेके सिरोंको फावड़ोंसे भंजन कर सारे कैदी ज़मीनपर ज़ख्मी पड़े हुए थे और मौतकी घडियाँ गिन रहे थे। सिपाहीने उस पत्थरको धीरेसे उठाया और अपने जेबके हवाले किया।

• • •

सिपाहीकी पत्नीसे उस पत्थरको हंसियेमें लगानेका मोह संवरण न हुआ।

सोनेके हंसियेको घरमें रखकर क्या करेंगे? सिपाही उसे सराफेमें ले गया। प्रत्येक सराफ कसौटीपर लगाकर उसकी परख करने लगा। वह अत्यंत शुद्ध सोना था। परंतु हरएकके सामने एक ही सवाल खड़ा हो जाता था – कुबेरके घरमें भी सोनेका हंसिया न होगा; फिर इस मामूली सिपाहीके घर वह कहाँसे आया?

हरएक सराफ उस हंसियेको लोहेके भाव माँगने लगा। सिपाही चिढ़ गया। अन्तमें एक सराफने पुलिसको खबर दे दी। हंसिया थानेमें और सिपाही जेलमें —

• • •

सप् – सप् – सप्—

कोड़े बरस रहे थे! परंतु सिपाही हँस रहा था। पीठकी धज्जियाँ उड़ गयीं। परंतु उसने अपना मुँह न खोला।

उसकी पत्नीको लाकर उसके सामने खड़ा किया गया। फिर कोड़े पड़ने लगे।

खूनकी फुहारें उड़ीं। उस औरतका मन भी उड़ा। आँचलमें बंधे हुए पत्थरको छोड़कर उसने वह ज़ोरसे थानेदारके मुँहपर दे मारा। बोली—'ले ले इस भूतको, और छोड़ दे मेरे पतिको!'

उस औरतकी बेवकूफ़ीपर पत्थर मन-ही-मन हँसा। ईश्वरको कोई भूत कहता है क्या?

औरतके द्वारा फेका गया पत्थर ठीक थानेदारके सिरपर लगा। वहाँ एक गहरा घाव हो गया और उसमेंसे खूनकी धार बहने लगी। खून बहते हुए ही उसने अपने जेबसे तालियोंका गुच्छा निकाला। हरएक ताली पत्थरको लगाते ही सोनेकी हो जाती थी। थानेदार खुशीसे नाचने लगा। उसे अपने घावका होश ही न रहा!

थानेदारके दो भाई थे जो एकसाथ रहते थे।

पहले भाईने पारसको हाथमें लेकर प्रत्येक लोहेकी वस्तुको उसे लगाना शुरू किया। कीले सोनेके हो गये। सींकचे सोनेके हो गये। ताले सोनेके बन गये। थानेदारका घर कुबेरका सुवर्ण-मंदिर बन गया! अपने मकानके सुनहली दरवाज़ों-की ओर अभिमानसे देखता हुआ वह भाई सोचने लगा—'घरकी सभी चीज़ें अब सोनेकी बन गयीं हैं। अब पारसका क्या उपयोग? छि, क्या ही अच्छा होता यदि मेरा शरीर भी लोहेका ही होता! इस पत्थरको लगाकर मैं उसे भी सोनेका बना लेता।' घरमें ऐसी एक भी चीज़ नहीं बची थी जिसको पारस लगाकर वह सोना बनाता, इसलिये उसे बड़ा दुख हुआ। वह पागल हो गया!

दूसरे भाईकी पत्नीको लगा—घरकी सब चीज़ें सोनेकी हो गयी हैं। परंतु पारस है बड़े भाईके पास। इसलिये कुछ भी हो लोग मेरे पतिकी अपेक्षा उसकी ही इज्ज़त अधिक करेंगे।

वह ईर्षासे जलने लगी। एक दिन बड़े देवरके दूधमें उसने धीरेसे ज़हर घोल दिया। दूसरे दिन भावजके द्वारा देवरकी हत्याका मुकदमा सुननेके लिये न्यायालयमें लोगोंकी अपार भीड़ लग गयी।

न्यायाधीशकी मेज़पर एक छोटासा पत्थर इस तरह रखा हुआ था कि सब उसे देख सकें। लोगोंको तअज्जुब था कि वह पत्थर वहाँ क्यों रखा गया है।

थानेदारकी भौजाईने अपना गुनाह स्वीकार कर लिया।

'इस काममें तुझे किसने मदद दी थी ?' – न्यायाधीशने पूछा। उसने उस पत्थरकी ओर अँगुली दिखायी। न्यायाधीश चकित हो गये। उस औरतने सिसकियोंके बीच उस पत्थरकी सारी रामकहानी कह सुनायी।

इस पत्थरका स्पर्श होते ही लोहा सोना बन जाता है!

हरएक दर्शकके मनमें यह इच्छा उत्पन्न हुई कि यह पत्थर मुझे कम-से-कम एक घड़ीके लिये ही मिल जाये।

सबकी श्रद्धा थी कि न्यायाधीशकी दिव्य दृष्टि है। वे क्या न्याय देते हैं इस ओर सबकी आँखें लगी हुई थीं।

पारसकी ओर ललचाई हुई आँखोंसे देखते हुए न्यायाधीश बोले, – 'पत्थरके रूपमें ईश्वर दुनियामें विचरण करता रहता है। इस ईश्वरकी पूजा मैं स्वयं अपने घरमें ही —'

पारस चिल्ला पड़ा, – 'मैं पत्थर नहीं, मैं ईश्वर नहीं, मैं राक्षस हूँ ?'

● ● ●

४७

एक तालाब

पूर्व दिशामें जब लालिमा प्रस्फुटित होती, तो उसका मनोहारी प्रतिबिंब उस तालाबके जीवनमें भी अंकित हो जाता। प्रभात वायुका मन्द झोंका उसके शरीर-को गुदगुदाने लगता। उसके मनकी एक एक कली धीरे धीरे खिलती जाती।

तीन-चार घड़ीके भीतर जलाशयका पृष्ठभाग प्रसन्न कमलोंसे भर जाता। उनमें-की कोई कोई कलियाँ हँसते हँसते इतनी मोहकतासे लजातीं कि दर्शकको इस उक्तिका सहजमें अनुभव हो जाता कि हास्यकी अपेक्षा लज्जामें ही अधिक सौंदर्य है।

गाँवके सब भक्त लोग इसलिये कि इनकी पूजा यथाविधि हो, उस तालाबके किनारे नियमसे आया करते। बहुत लोग जल्दी जल्दी जितने कमलोंकी उन्हें आव-श्यकता होती उतने तोड़ लेते। परंतु कोई एकाध उस तालाबके पृष्ठभागकी ओर देखकर अपना होश भूल जाता। उस मनोहर दृश्यसे उसे नयी नयी कल्पनाएँ सूझने लगतीं। उसे भ्रम होता कि सृष्टिदेवीने सलमा सितारेका काम किया हुआ एक सुंदर गलिचा मेरे सामने फैला दिया है। पत्तेकी ओटमें छिपी हुई अस्फुट कलीको जब वह देखता, तो उसकी आँखोंके सामने माँकी कोखमें मुँह छिपानेवाले लजीले बालककी मूर्ति खड़ी हो जाती। उसकी आँखोंमें नृत्य करनेवाली ऐसी

कल्पनाओंको देखकर, तालाबके आनंदकी सीमा न रहती । और जब दोपहरको समीपके शिवालयमें पूजा आरंभ होती, और अष्टोत्तर कमल चढ़ाकर भक्तगणोंके द्वारा बजाये गये घंटेका नाद कानोंमें पड़ने लगता, तो तालाबको लगता कि मेरा जीवन सार्थक हो गया ।

• • •

एक दिन जब तालाब इस प्रकारके आनंदमें खोया हुआ था, तभी एक बगुला वहाँ आया ।

तालाबकी ओर देखकर उसने नाक सिकोड़ ली ।

तालाब उसकी ओर आश्चर्यसे देखने लगा ।

बगुला मुँह बनाकरके बोला, – ' छिः ! छिः ! कितना गंदा पानी है यह ? मैं तो इसमें चोंच लगानेके लिये भी तैयार नहीं हूँ, भई ! '

तालाबके ध्यानमें यह बात आ गयी कि कमल तोड़नेवालोंके पैरोंसे मेरा पानी गंदला हो गया है ।

बगुला गंभीरतापूर्वक बोला, – ' मैंने सैंकड़ों नदियाँ देखी हैं, समुद्र भी देखा है; परंतु इतना गंदला पानी अवश्य कहीं भी नहीं देखा । गंगाका पानी कैसा स्फटिककी तरह शुभ्र है ! और यह पानी — '

तालाबके पानीको चोंच लगाकर, बगुलेने ऐसी मुद्रा बनायी जैसे उसे बड़ी घिन आयी हो ।

वह तालाबसे दूर दूर जाने लगा ।

उसे पुकारकर तालाबने कहा, – ' आज मुझे अपनी भूलका पता चल गया । चार दिन धीरज रखो । फिर देख लेना कि मेरा पानी भी गंगाकी तरह शुभ्र होता है या नहीं ! '

• • •

कमल ले जानेके लिये जानेवाले प्रत्येक मनुष्यसे तालाबने अपने कीचड़को निकाल डालनेकी हठ की । सबने उसे समझानेका प्रयत्न किया । परंतु वह कुछ भी सुननेको तैयार न हुआ ! यह ध्यानमें लाकर, कि तालाबने हमारी पूजाके लिये बरसोंसे कमल दिये हैं, भक्तगण कीचड़ निकालने लगे ।

• • •

तालाबमें कीचड़का-नामोनिशान भी न रहा ।

इस आनंदमें कि मेरा पानी गंगाकी तरह स्वच्छ हो गया है, तालाब मग्न हो गया।

परंतु शीघ्र ही कमलकी सब जड़ें सूख गयीं। तालाबमें एक भी कमल न खिलता था।

तालाबको अपना जीवन बिल्कुल रूखा और नीरस लगने लगा।

विपुलतासे प्राप्त होनेवाली मछलियोंको हड़प करते करते बगुला कहने लगा,— 'कितना स्वच्छ पानी है यह? जैसे गंगाजल ही हो!'

● ● ●

४८

ध्येयवादी !

ढकी मूठको सवा लाखकी क्यों कहते हैं, यह उसकी ओर देखकर सहज ही मालूम हो जाता था। साठ वर्षके आयुष्यमें उसने वह एक बार भी न खोली थी। इस स्वभावके कारण उसके हाथकी रेखाएँ परदानशीन औरतोंकी तरह दुनियाको अज्ञात ही रही थीं।

परंतु उसके हाथपर धनरेषा अत्यन्त स्पष्ट होगी, यह कहनेके लिये सामुद्रिककी आवश्यकता न थी।

सुवर्णके बारेमें वह सालमें केवल एक बार ही उदार रहा करता था! सिर्फ दशहरे[1]के दिन! पन्द्रह दिनमें एक दिन चाहे जितने मेहमान उसके घर आ जावें, उस दिन उसके मनको चिन्ता न रहती थी। वह दिन था एकादशीका।

ऐसा यह अलौकिक पुरुष मृत्युशैयापर पड़ा हुआ था। जिनके वंशकी जड़ें धनवंतरीसे लेकर अश्विनीकुमारतक पहुँचती थीं, ऐसे सब वैद्योंको आशाने उसके घर एकत्रित किया। ऐसे अनेक डॉक्टर भी आये जिनकी डिग्रियोंको

१ महाराष्ट्रमें विजयादशमीके दिन लोग एक दूसरेको सोना बाँटते हैं! शमी वृक्ष या कचनारकी पत्तियाँ सोनेके रूपमें बाँटी जाती हैं।

पढ़कर, होनहार विद्यार्थी अँग्रेज़ीकी पूरी वर्णमालाको सहजमें सीख सकते थे। सभीका विश्वास था कि मृत्यु इस मक्खीचूसको अपनी मुट्ठी खोलनेके लिये अवश्य ही बाध्य करेगी!

रोगीने कराहते हुए कहा, – 'मुझे दवा दो।'

आयुर्वेद और मटीरिया मेडिका खुशीसे नाचने लगे। डॉक्टरों और वैद्योंने तय किया कि इसने जन्मभर कभी कोई दवा नहीं ली है। इसलिये आज इससे उसका पूरा बदला लिया जाये। आनंदके समय मनुष्य मतभेद भूल जाता है, वह इसी तरह!

डॉक्टर और वैद्योंकी सेनाके नेताने रोगीसे पूछा, – 'काहेकी दवा चाहिए? अच्छे होनेकी, सालभर ज़िन्दा रहनेकी, या चार दिन ज़िन्दा रहनेकी?'

रोगीने मस्तकपर अपनी मुट्ठी दे मारी। इस अभिनयका मतलब समझमें न आनेके कारण, नेता महाशय इस तरह स्तब्ध हो गये जैसे उनके सर्वांगको लकवा मार गया हो।

रोगीने उन्हें अपने निकट बुलाकर प्रश्न किया, – 'मैं और कितने दिन ज़िंदा रहूँगा?'

'यदि दवा न लेंगे तो अधिकसे अधिक तीन-चार दिन; दवा लेंगे तो तीन-चार साल। और अगर मेरी दवा लेंगे, तो बिलकुल अमर ही हो जायेंगे। बिलकुल आठवें चिरंजीव!'

रोगीने विस्फारित नेत्रोंसे वैद्यराजकी ओर देखा। वे सफ़ेद न थे, फिर भी वैद्यराज घबड़ा गये। उन्हें अपने पास बुलाकर रोगीने उनके कानमें कहा, – 'मुझे दवा चाहिए तो है ज़रूर! परंतु मरनेकी चाहिए है। आज ही मरना है मुझे। तीन दिनके बाद मरे क्या, और आज मरे क्या —'

वैद्यों और डॉक्टरोंके नेताको विश्वास हो गया कि रोगीको सन्निपातने धर दबोचा है। वे बोले, – 'बिना दवा लिये भी तुम अभी तीन-चार दिन आसानीसे निकाल दोगे।'

'परंतु वे मैं नहीं निकालना चाहता!'

'क्यों?'

'तुम्हारा सिर! विद्वान लोग व्यवहारशून्य होते हैं, यही सच है! अजी, कल

मेरे बीमाका प्रीमिअम चुकानेकी अंतिम तारीख है। आज मर जाऊँगा तो प्रीमिअम देनेकी ज़रूरत न रहेगी। तीन दिनके बाद मरना यानी —’

सारे डॉक्टर और वैद्योंने तुरंत ही तीन मिल दौड़नेकी स्पर्धामें भाग लिया।

● ● ●

४९

शिल्पकार

छोटा-सा गाँव था वह ! वहाँके बाल-गोपालोंने हाथीको कभी देखा ही न था। ज़मींदारका अजय शिल्पकला सीखनेके लिये राजधानी गया था। उसने किसीसे कह दिया कि वहाँ धनियोंकी स्त्रियाँ पैरोंमें मेहँदी रचाती हैं। पनघटपर एक दूसरेसे यह बात कहकर और पेट-भर हँसकर कई दिनोंतक उस गाँवकी स्त्रियोंने अपना मनो-रंजन कर लिया।

अजय शिल्पकार होकर गाँवमें रहने आया। परंतु किसी भी तरह अपनी कलामें उसका मन नहीं लगता था। वह अपने मित्रोंसे पूछता,–'इस गाँवमें ऐसा कौन सुंदर है जिसकी मूर्ति बनायी जाये?' धनियोंके प्रश्नोंके बहुधा उत्तर नहीं दिये जाते। अगर दिये भी जायें, तो उनका अनुकूल होना ही ज़रूरी होता है! लेकिन आखिर एक मित्र हिम्मत करके अजयसे बोला,–'तुम अपनी माँकी मूर्ति ही बनाओ न?'

अजयके माथेपर बल आ गये। उसे लगा उस मित्रने मेरा मज़ाक उड़ाया है। झुकी हुई, मुँहपर झुर्रियोंका जाल फैला हुआ, कपास जैसे सफेद और शुभ्र बाल ऐसी थी उसकी माँ! उसने क्रोधसे ही मित्रको उत्तर दिया,–'मेरी माँसे तो तुम्हारे परदादाके दादाकी ही मूर्त्ति अच्छी होगी!'

गाँवमें सड़क एक ही थी। उसपर साँवले रंगके पर तेजस्वी आँखोंवाले कितने ही बालक समय-असमय नाचा-खेला करते थे। परंतु उनकी ओर अजय तिरस्कार-भरी दृष्टिसे देखा करता। सिरपर गागर लिये हुए झूमती-झामती पनघटसे लौटनेवाली ग्रामीण तरुणियाँ तो उसे बिलकुल कुरूप ही लगती। उसे उस गाँवमें सौन्दर्य कहीं भी दिखाई नहीं देता था। उसकी शिल्पकला गूंगीकी गूंगी ही रह गयी।

एक दिन गाँवमें आनंदकी लहरें उमड़ने लगीं। कोई तेहवार न था और न फसली मौसमके दिन थे! कुछ भी न था। परंतु धर्मशालामें विनय नामका एक प्रवासी आया था। उसके पास बहुत-सी गुड़ियाँ थीं। धर्मशालाके नज़दीक खेलने-वाले बालकोंको उसने अपने पास बुलाया और उन्हें वे गुड़ियाँ दे दीं। वे लड़के दूसरे लड़कोंको बुला लाये। उन्हें भी गुड़ियाँ मिल गयीं। इतना काफ़ी था। उन नन्हे तारयंत्रोंके ज़रिए सारे गाँवमें घरघर यह समाचार प्रसारित हो गया कि गाँवमें देवता-मनुष्य आया है। कितने ही वृद्ध अपने सुपारी और तमाकूके बटुओंको अधखुले छोड़कर ही दौड़ते हुए धर्मशाला पहुँचे। पनघटपर पानी लाने गयी पनहारिनोंको लौटते समय रास्तेमें ही यह समाचार मिला तो वे जैसी थीं उसी अवस्थामें पानीसे भरी गगरियाँ सिरपर धारण किये हुए ही धर्मशालाकी ओर मुड़ गयीं। उस प्रवासीके आसपास बच्चोंकी भीड़ लग गयी। जैसे खिली हुई लताके इर्दगिर्द नाचनेवाली तितलियाँ ही हों।

एक दादाजी बोले, – 'यह सच्चा देवता-मनुष्य है, इसमें संदेह नहीं।'

एक माँने कहा, – 'कहाँसे लाये हो बेटा, यह माँकी ममता?'

किसी तरुणने हँसते हँसते आलोचना की, – 'नहीं तो अजय!'

यह आलोचना अजयके कानतक पहुँची। वह गुस्सेसे आगबबूला हो गया। यह सोचकर कि प्रवासी एक-दो दिनमें चल देगा, वह चुप रहा। परंतु प्रवासी गाँव छोड़कर जाना तो दूर रहा, इसके विपरीत, उसका महत्त्व और भी बढ़ने लगा। लड़के गाँवसे चिंधियाँ बटोरकर ले आते और उसे दे देते। वह बात-की-बातमें उनके लिये उस कचरेसे सुन्दर और मज़ेदार गुड़ियाँ बना देता। किसी बच्चेने उनसे गुड़ियाँ माँगी और उसने वह न दी ऐसा कभी न हुआ। विनयसे नयी नयी गुड़ियाँ प्राप्त होते रहनेके कारण लड़के प्रसन्न, लड़कोंकी प्रसन्नताके कारण उनकी माँ प्रसन्न, माँके प्रसन्न होनेके कारण घरोंमें सर्वत्र आनंदका साम्राज्य फैल गया उस गाँवमें।

यह देखकर अजय ज़रूर गुस्सेसे जलने लगा। मैं इतना बड़ा ज़मींदार हूँ, इतना प्रतिभा-संपन्न शिल्पकार हूँ! और मेरी ओर झाँककर भी न देख सारा गाँव एक भिखमंगे जीनसाजकी पूजा करता है! उसके सारे बदनमें जैसे आग लग गयी। वह जानबूझकर धर्मशाला गया। भगवानकी जैसे परिक्रमा करते हैं उसी तरह कितने ही बालक हाथोंमें गुड़ियाँ लिये हुए विनयके आसपास नाच रहे थे। एक गुड़िया बनाते बनाते विनयने सहजभावसे गरदन उठाकर ऊपर देखा। अजय उसे दिखायी दिया। विनय हँसते हुए बोला, – 'महाराज, आपके बच्चेके लिये दूँ एक गुड़िया ?'

'मैं कौन हूँ, जानता है तू ?'

विनयने गरदन हिलाकर 'हाँ' कहा।

'कौन हूँ ?'

'माली !'

अजयको लगा कि इसी समय और इसी जगह उससे इस अपमानका बदला ले लूँ। अजयकी उग्र मुद्राको देखकर विनय बोला, – 'महाराज ! क्रोध न कीजिये। इस तरहके चलते, फिरते और बोलते हुए फूल होंगे ही आपके घरमें।'

'मैं शिल्पकार हूँ।'

विनय विस्मयसे देखता ही रहा। उसने पूछा, – 'आपकी मूर्त्तियाँ मुझे देखनेको मिलेंगी क्या ?'

बिजली कड़कड़ाई, – 'इसी समय चल दो इस गाँवसे !'

'क्यों ?'

'अपने गाँवके लड़कोंके हाथोंमें ऐसी रद्दी गुड़ियाँ मुझसे नहीं देखी जातीं।'

'यदि उन्हें आपकी मूर्तियाँ देखनेको मिलें, तो वे इन गुड़ियोंकी ओर फूटी आँखसे भी नहीं देखेंगे।' – विनयने उत्तर दिया।

आगमें तेल पड़ा। गुस्सेसे भरा हुआ ही अजय घर लौटा। उसने एक अलौकिक मूर्ति बनानेका निश्चय किया। गाँवमें सर्वत्र यह समाचार फैल गया कि अजय एक विलक्षण सुंदर मूर्ति बना रहा है। लोग बड़ी उत्सुकतासे उस मूर्तिकी प्रतीक्षा करने लगे। विनयको भी खुशी हुई। वह बोला, – 'उस मूर्तिकी ओर देखते देखते मेरी गुड़ियाँ भी सुंदर होने लगेंगी !'

विनय प्रति दिन नयी गुड़ियाँ बनाता था और हर रोज़ लड़के उनके साथ

खेल खेलकर उन्हें पुरानी कर डाला करते थे। बहुत दिनोंके बाद मूर्ति तैयार हो गयी। अजय विनयके पास आया। तुच्छतासे हँसकर उसने पूछा,—'जबसे इस गाँवमें आये हो, तुमने कितनी गुड़ियाँ बनायीं ?'

'किसने गिनी हैं, महाराज? लता क्या जानती है कि उसपर रोज़ कितने फूल खिला करते हैं ?'

'क्या, तुमने एक भी अमर गुड़िया बनायी है आजतक ?'

'गुड़ियाँ अमर नहीं होतीं।'

'तुम्हारी जैसी गुड़ियाँ अमर न होती हों, परंतु मुझ जैसे मनुष्य होते हैं।'

'मनुष्य भी तो आखिर गुड़ियाँ ही हैं !'

'चुप रहो ! कल मेरी मूर्ति देखने आना और फिर जो बकना हो बका करना।'

मूर्तिके प्रदर्शनका समारंभ बड़ी धूमधामसे हुआ। पत्थरसे मनुष्यकी निर्मितीको उस गाँवने पहले कभी न देखा था। इसलिये मूर्तिको देखते ही हरएक पागल-सा हो गया। अजयकी मुद्रापर विजयका हास्य चमक उठा। पर वह क्षण-भरके लिये ही! लोगोंमें कानाफूसी शुरू हो गयी थी। 'मूर्ति हूब-हू विनयकी तरह दीखती है। है न ?' बातकी बातमें कानाफूसीका रूपान्तर जयघोषमें हो गया। 'विनय, विनय, विनयकी मूर्ति।' अजयने मूर्तिकी ओर देखा। ईर्षासे अंधी हुई उसकी दृष्टिको अभीतक इस बातकी कल्पना ही न आयी थी। इस मूर्तिका अजयकी अपेक्षा विनयसे ही अधिक साम्य था। मूर्ति बनाते समय भी उसकी ईर्षा-ग्रस्त मन विनयका ही चिन्तन कर रहा होगा !

अजयने उस मूर्तिको दूर ले जाकर जंगलमें फेंक देनेका अपने नौकरोंको हुक्म दिया। लोग उस मूर्तिको चाहते थे। वे मूर्तिको नहीं ले जाने देते थे। अजयने लाठियाँ चलवाकर उन्हें मूर्तिके पाससे भगा दिया। मूर्ति कहीं दूर जंगलमें फेंक दी गयी।

विनयने सोचा कि मेरे कारण ही गाँववालोंको यह त्रास हुआ है और इसलिये उस रातको बिना किसीसे बिदा लिये वह गाँव छोड़कर चल दिया। दूसरे दिन अजय उस वीरान हुई धर्मशालाके नज़दीकसे बड़े अभिमानके साथ जाने लगा। वह देखता कि गाँवके छोटे छोटे बालक जिस स्थानपर विनय बैठता था उसकी ओर शून्य दृष्टिसे देखते हुए खड़े रहते थे। कितनी ही स्त्रियाँ जानबूझकर वहाँ

आती थीं और जहाँ विनय बैठा करता उस स्थानको प्रणाम करके चली जाती थीं। अजयको उनके इस पागलपनपर हँसी आती थी।

एक दिन ज़रूर उसकी यह हँसी अस्त हो गयी। धर्मशालाके नज़दीक अपार भीड़ लगी हुई थी। उसमेंसे कष्टसे रास्ता निकालता हुआ अजय भीतर गया। देखता है कि जहाँ विनय बैठा करता था वहाँ एक मूर्ति रखी हुई है। अजयने जिस मूर्तिको जंगलमें फिकवा दिया था, वही मूर्ति थी वह। लोग खोजकर उसे वापस ले आये थे। आधेसे अधिक मूर्ति फूलोंसे ढक गयी थी। अजयको लगा—एकदम जाऊँ और उस मूर्तिको एक ठोकर लगाऊँ। उसने पैर उठाया भी—

इसी समय एक छोटा बच्चा उस मूर्तिके पास जाकर उससे चिपक गया। अपनी प्रिय आवाज़में वह बोला, –'मुझे एक अत्थीसी गुड़िया दे न, ए, दे न?'

वह बच्चा मूर्तिकी ओर कितनी आशासे देख रहा था! अजय गर्दन झुकाकर उस भीड़मेंसे चुपचाप अपने घरकी तरफ लौट गया

● ● ●

५०

हृदय

उसे अपनी निर्मलतापर बड़ा अभिमान था। घासकी छोटी-सी पत्ती भी यदि सिर ऊपर उठाती, तो उसे भी वह तुरंत उखाड़ देता। उस तरफ़ लगे हुए पेड़के पत्ते बीच-बीचमें झड़कर आँगनमें गिरते। लेकिन तुरंत ही उन्हें बीनकर वह बाहर फेंक दिया करता।

किन्तु आगे चलकर उसे वह आँगन खाली और सूना लगने लगा। वह निर्मल रहता, फिर भी उसे प्रसन्नता न होती।

एक दिन उसे एक सनक आयी। वह एक मोगरेकी लता ले आया और उसे आँगनके कोनेमें लगा दिया। अपने निर्मल मनको संतोष देते हुआ वह बोला,– 'जाने दो उस कोनेको। धनीको थोड़ा दान भी नहीं करना चाहिए क्या?'

मोगरेमें कलियाँ आयीं। वह दूरहीसे उनकी ओर देखा करता। कलियाँ खिलीं। अब अवश्य उससे दूर नहीं रहा जाता था। निकट जाकर उसने उन मुग्ध फूलोंको धीरेसे हाथमें लिया। अनजाने आँगनकी ओर उसकी पीठ हो गयी। सुगंधसे उन्मत्त हुए उसके मनको आँगनमें झड़कर गिरे हुए पत्तोंकी आवाज़ सुनायी भी न पड़ी।

●○●

५१
क्षितिज

पृथ्वी और आकाश !

दोनों सुंदर ! परंतु एक दूसरेसे कितनी दूर !

कविकी कल्पनाको यह दूरत्व खटकने लगा। उसे लगने लगा कि आकाश और पृथ्वीका मिलन कहीं अवश्य हुआ होगा। परंतु पृथ्वी-परिक्रमा करनेपर भी यह मधुर दृश्य उसे देखनेको न मिला।

उसकी कल्पनाने क्षितिजको निर्मित किया। वह क्षितिजको आकाश और पृथ्वीका मिलन कहकर उस रेखाकी ओर अँगुली दिखाने लगा। अनेक लोगोंने कविकी प्रतिमाकी सराहना की।

परंतु एक अनाड़ी मालीको यह कल्पना जँचती न थी। पृथ्वी और आकाश जहाँ एक दूसरेसे मिलते हैं, उस क्षितिजकी ओर अपने साथ चलनेका वह कविसे आग्रह करने लगा।

कवि बोला, – 'दूरहीसे देखना चाहिए उसे।'

जब मालीने पृथ्वी और आकाशकी भेटको प्रत्यक्ष दिखा देनेकी बात स्वीकार की तब कविजीके नवों रस सूखने लगे। उसकी बातका अर्थ ही वे नहीं समझ पा रहे थे।

माली उसे अपने बागमें एक सुंदर आमके पेड़के नीचे ले गया। पेड़पर लगे एक पके हुए सुंदर आमकी ओर उसने अँगुली दिखायी।

कवि क्षण-भर चकराया। दूसरे ही क्षण उसे लगा – मेरी अपेक्षा मालीकी बात ही सच है। पृथ्वी और आकाशके मिलनका मधुर फल ही है यह!

● ● ●

५२

चतुर भेड़

टेकड़ीपर बीचहीमें गड्ढा था! आसपासकी हरियालीकी ओर देखते हुए दौड़नेवाली भेड़ोंको वह कैसे दीख सकता था?

सबसे आगेवाली भेड़का एकदम सँतुलन खो गया और वह उस गड्ढेके भीतर गिर पड़ी। उसके पीछेवालीको लगा – इस गड्ढेके भीतर ही कोई खास बात होनी चाहिए। आगापीछा न सोचकर वह उस गड्ढेमें कूद पड़ी।

एक – दो – तीन – चार – पाँच।

धीरे धीरे गड्ढा भरने लगा। अंतिम भेड़ एक अंधेकी तरह आगे बढ़ी। परंतु गड्ढा पूरा भर जानेके कारण दूसरी भेड़ोंके ऊपरसे हाथ-पाँव पटकती हुई उसने जैसे तैसे गड्ढा पार किया।

तुरंत ही वह पीछे मुड़कर बोली, – 'मूर्ख कहींकी? क्या, रास्तेका गड्ढा भी नहीं दीखता?'

●●●

५३

युगान्तर

आद्ययुगके ऋषियोंको स्फूर्त्ति हुई। उनकी प्रतिभाने ईश्वरके स्वरूपको देखनेका प्रयत्न किया। वेद उत्पन्न हुए। किन्तु ईश्वरके विषयमें उन्हें 'नेति नेति' इतना ही ज्ञान हुआ!

जनता विस्मयसे बोली, – 'सच्चा तत्त्वज्ञान यही है!'

मध्ययुगके सज्जनोंको स्फूर्त्ति हुई। उन्होंने ईश्वरके स्वरूपको देखनेका बीड़ा ही उठा लिया। फिर क्या था? पत्थर भगवान बन गया; बंदर ईश्वर हो गया। उन्हें यह ज्ञान हुआ कि जल, थल, काष्ठ, पाषाणमें परमेश्वर है।

जनता आनंदसे चिल्ला उठी, –'सच्ची भक्ति इसे कहते हैं!'

वैज्ञानिक युगके वैज्ञानिकोंको स्फूर्त्ति हुई। पत्थरसे लेकर बंदरतक – सबके जीवनपर उन्होंने अपने अन्वेषणोंका प्रकाश डाला। परंतु उनमें परमेश्वर कहीं न दिखायी दिया। वे तुच्छतासे बोले,–'नेति नेति।'

जनता क्रोधसे उबल पड़ी, –'नास्तिक, नास्तिक!'

●●●

५४

रमणीय बचपन

घूमने जा रहे तीन लोग क्षणभर मुग्ध हो गये।

अमराईमें कोयल गा रही थी, 'कुहू कुहू'! पाँच वर्षका बालक नाचते-नाचते गाने लगा, 'कुहू कुहू'।

तीसकी उम्रके तरुणने हाथमें रखी छड़ीसे ज़मीनपर ताल देते हुए गुनगुनाना आरंभ किया —

'अवेळ तरिही बोल, कोकिळे —'[1]

साठसे ऊपर उम्रवाले वृद्ध महाशय अपना डंडा खट्से बजाते हुए बोले, - 'चलो जल्दी, घूमकर लौटनेसे बहुत देर हो जायेगी।'

दूसरे दिन शामको यही लोग, अमराईके पाससे जा रहे थे। बंदरोंका एक बड़ा दल 'हूप हूप'की कर्णकटु आवाज़ करता हुआ पेड़ोंपरसे इधर उधर कूद रहा था।

नानाजी बिना रुके ही आगे बढ़ गये। तरुणने उन दाँत दिखानेवाले बंदरोंकी

---

१ 'असमय है, फिर भी हे कोयल, तू बोल —'

ओर तिरस्कारसे देखा और छड़ी हिलाता हुआ वह आगे बढ़ने लगा। पलभरमें वह मुड़कर देखता है तो बालक पीछे ही रह गया है! वह चिल्लाया, - 'अरे, आ जल्दी —'

उसे उत्तर मिला, - 'हूप! हूप!'

●●●

५५

निसर्ग और मनुष्य

घरके पिछवाड़ेके हरे मैदानमें घूमने और नाचनेका उसे बड़ा शौक़ था!
उसकी माँ हमेशा कहती, – 'बेटा, घासमें इस तरह नाचना नहीं चाहिए!'

'क्यों?' – वह धृष्टतासे प्रश्न करता।

'घासमें साँप छिपे रहते हैं!'

अब जब वह घासमें खेलने जाता, तो अपने साथ एक लाठी ले जाता।

एक दिन उस कोमल हरियाली पर खेलते हुए उसने झटसे अपना पैर ऊपर उठाया। उसे लगा – मुझे साँपने ही डस लिया है। परंतु उसने पैर उठाकर देखा ही था – उसने देखा कि उसके पैरमें काँचका एक बड़ा तुकड़ा चुभ गया है।

उसे याद आयी – कुछ दिन पहले लालटेनका काँच फूट गया था। उसके टुकड़े उसने स्वयं ही खिड़कीसे बाहर घासके मैदानमें फेक दिये थे।

●●●

५६

एक पेड़

पेड़पर खिले हुए फूलोंकी सुगंध दशों दिशाओंमें छाने लगी।

रास्तेसे जानेवाला हरएक प्रवासी उस सुवाससे मुग्ध होकर क्षणभर रुके बिना आगे बढ़ता ही न था।

वृक्षोंपर लगे फलोंकी सुगंधसे मोहित होकर विविध रंगके पक्षी कलरव करते हुए उसके आसपास नाचने लगे।

फलों और फूलोंके आनंदकी सीमा न रही।

• • •

प्रत्येक दिन बागवान उन पेड़ोंकी जड़ोंको पानी दिया करता।

एक दिन फूलोंने उस बागवानसे कहा, – 'मालीभैया, तुम बिलकुल पागल हो! वहाँ नीचे मिट्टीमें पानी देते हो? हजारेसे हमपर फुहारें डालो, तो वे मोतियों चमकती रहेंगी!'

फलोंने भी वही आग्रह पकड़ा। उन्हें लगा – आड़ीटेढ़ी, न रंग और न रूपकी, और रातदिन पानीमें लोटनेवाली जड़ोंका अभिषेक क्यों किया जाये?

बागवान अपने हजारेका पानी फलों और फूलोंपर सींचने लगा।

• • •

पानी प्राप्त होते हुए भी फूल कुम्हला गये। फल सूखने लगे।

अंतमें वे मालीसे विनयपूर्वक बोले, — 'मालीभैया, मिट्टीमेंकी इन जड़ोंको ही पानी दो! वे ज़िंदा रहेंगी, तभी हम भी जिएँगे!'

●●●

५७
वर्षा

आकाशमें काले बादलोंके समूह एकत्रित होने लगे। जैसे सीमोल्लंघनके जलूसके लिये सज किये हुए हाथी ही थे !

मेघगर्जना हुई, नौबत बजने लगी, बिजली चमकी, गजराजके मस्तकपर ध्वज चमकने लगा। सीमोल्लंघनके लिये स्वर्गके सारे देव तैयार हो गये थे। उनके द्वारा लूटा गया सोना वर्षाके रूपमें पृथ्वीको प्राप्त होनेवाला था।

• • •

छोटे बालक आँगनमें गाते हुए नाचने लगे, – 'बरसो राम धड़ाकेसे, बुढ़िया मरे पड़ाकेसे।'

बड़े लड़के आनंदित हो गये। ज़ोरसे वर्षा होगी, तो शालाको छुट्टी मिलेगी, ऐसा अनुभव था उनका !

घर घर स्त्रियोंने आकाशकी ओर आँखें लगायीं। वर्षा होनेसे कूओंमें पानी भरेगा ! अपने पानीके कष्ट समाप्त होंगे, इसलिये वे खुश थीं।

मायके जानेके लिये उत्सुक हो रही ससुराल-वासिनियाँ गाड़ीकी खड़खड़ाहटकी ओर कान लगाकर बैठे, उस तरह किसान आकाशकी गड़गड़ाहट सुन रहे थे। इस कल्पनासे कि पानी ठीक समयपर बरसेगा और हमारी फसलें पकेंगी, किसानोंके आनंदकी सीमा न रही थी।

एक कवि भी आकाशके इस सीमोल्लंघन समारोहकी ओर आनंदसे देख रहा था। परंतु उसके आनंदका कारण क्या है, यह स्वयं उसकी भी समझमें न आ रहा था। शायद उसे यह लगता होगा कि मैं भी छोटे बच्चोंकी तरह आँगनमें जाकर 'बरसो राम धड़ाकेसे' कहता हुआ नाचूँ !

उस दिन शालाको छुट्टी मिली। उस वर्षासे कूएँ बिलकुल लबालब भर गये। उस वर्ष किसानोंको अधपेट रहनेका अवसर न आया।

• • •

दूसरी वर्षा आयी। वह इतनी सुखदायी न थी। पिछली वर्षाका सभीको स्मरण हुआ।

तीसरी वर्षाने दूसरी वर्षाका दुःख और पहली वर्षाकी याद धुला दी।

कई वर्षाएँ बीत गयीं। पीढ़ियाँ गुज़र गयीं। उस वर्षाकी याद कालरूपी पुरुष भी भूल गया। लेकिन सीमोल्लंघन नामक वर्षाकी एक मधुर कविता लोग अब बड़ी रुचिसे गाते हैं।

• • •

५८

तीन मन

उसकी आँखें आँसुओंसे भरी हुई थीं। किसीने पूछा, – 'क्या हो गया?'

वह रोते-रोते बोली, – 'मेरा नया लहँगा फट गया। अब यदि वह सी दिया गया, तिसपर भी खराब ही दिखेगा!'

• • •

बारह वर्ष बीत गये।

उसकी आँखें आँसुओंसे भरी हुई थीं। किसीने पूछा, – 'क्या हो गया?'

वह सिसकियोंके बीच बोली, – 'मेरा हाथ जल गया। साड़ी जली तो कोई हर्ज़ नहीं। परंतु मेरा हाथ – अब जन्मभर वह कुरूप दिखेगा!'

• • •

इस बातको बारह वर्ष हो गये।

उसकी आँखोंमें आँसू थे। किसीने पूछा, – 'क्या हुआ?'

वह रोते-रोते बोली, – 'मेरा बच्चा —'

उससे आगे बोला नहीं जाता था। सिसकियोंके बीच बड़े कष्टसे उसने कहा, – 'मुझे कपड़ोंकी ज़रूरत नहीं, जेवरोंकी ज़रूरत नहीं, किसी चीज़की ज़रूरत नहीं। मुझे सिर्फ़ मेरा बच्चा भर चाहिए! भगवान! मेरी उम्र ले ले! पर वह मेरे बच्चेको भरपूर दे दे!'

• • •

५९

तीन कलाकार

नदी किनारे एक तरुणी बैठी थी। उसकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे।

उन तीनों मित्रोंकी दृष्टि एक ही समय उसकी ओर गयी। तीनोंमेंसे पहला था कवि, दूसरा था चित्रकार और तीसरा था संगीतज्ञ। दरबारमें कविका स्थान राजाके सिंहासनके निकट रहता। चित्रकार दरबारियोंके बीच बैठता। गवैयेका जब गाना समाप्त हो जाता, तो उसे जाकर बहुत पीछे बैठना पड़ता। कवि नयी नयी कविताएँ बनाता, चित्रकार नये नये चित्र खींचता। परंतु गवैया वही वही सुर अलापा करता। फिर उसकी कलाका अधिक मूल्य कहाँसे होगा?

• • •

तीनोंके लिये यह एक पहेली हो गयी कि वह तरुणी एकान्तमें आँसू क्यों बहा रही है।

कविने उसके समीप जाकर प्रश्न किया, — 'सुंदरी, तुम्हारे इन अश्रुओंका क्या कारण है?'

चित्रकारने पूछा, — 'हे चारुगात्रि, तुम इस तरह दुखी क्यों हो?'

गवैयेने उसकी तरफ़ सिर्फ़ देखा।

वह और भी अधिक रोने लगी।

• • •

एक तरुणीके दुखका कारण कल्पनासे खोज निकालनेका कवि और चित्रकारने निश्चय किया। बेचारा गवैया चुप बैठा।

दूसरे दिन तीनों नदीके किनारे आये। वह तरुणी वहीं थी। उसकी आँखोंसे अभी भी आँसू बह रहे थे।

कवि उसके पास गया और उसपर रची हुई अपनी कविता उसे पढ़कर सुनाने लगा, – 'हृदयमें गुँथी हुई मौक्तिक मालाको निर्दयी रमण जब तोड़ डालता है तब वे मोती रमणीकी आँखोंसे झरने लगते हैं! सुंदरी, तुम भी इस नियमको कहाँसे अपवाद होगी?' — इत्यादि इत्यादि।

इस कविताको सुनकर उस तरुणीने अपने होंठ भी न खोले।

चित्रकारने उसे अपना चित्र दिखाया: एक तरुणी तूफ़ानमें फँस गयी है – ऐसा दृश्य था वह! तेज़ हवाके कारण उसके केश अस्तव्यस्त हो गये थे, कंधेपरसे अंचल उड़ गया था; परंतु उसे किसीकी भी सुध न थी। वह उखड़कर गिर पड़े हुए एक वृक्षकी ओर निश्चल दृष्टिसे देख रही थी। उस वृक्षसे चिपकी हुई लता भी उसके साथ धूलमें मिल गयी थी।

तरुणीने कुछ कहनेके लिये अपने होंठ खोले। परंतु चित्रकारको एक भी शब्द सुनाई न दिया।

गवैया सहजभावसे गुनगुनाने लगा। कितने कोमल स्वर थे वे! और उन स्वरोंका कँप। जैसे कोई मूर्तिमान दुख ही अपनी कहानी कहने लगा था।

गवैयेको बीचहीमें रोककर उस रमणीने पूछा,– 'तुमसे यह किसने कहा?'

उसने आश्चर्यसे प्रश्न किया,– 'क्या?'

'मेरा बच्चा — यहाँ!' – उसका कंठ भर आया। उसने सामने अँगुली दिखाई।

कितना गहरा जलाशय था वह!

गवैया असमंजसमें पड़ गया।

वह विनीत भावसे बोली, – 'व्यर्थ ही मैं बीचमें बोल पड़ी – तुम्हारे वे कुछ समयके पहलेके सुर – कितना हलका लगा मुझे उनको सुनकर! कहो न – कहो न वही गीत फिरसे!'

●●●

६०

चकोर और चातक

आकाश उदास दीख रहा था। जैसे मृत राजाका महल ही हो! हालहीमें कोई उल्का पृथ्वीपर गिर पड़ी होगी! उसके तेजस्वी मुखका स्मरण होकर ही क्या आकाश-को इतना दुख हुआ होगा? छि! कवि भी विश्वास न रखेगा ऐसी कल्पनापर!

मैंने ध्यानसे देखा।

सारा गगन-मंडल भूरे रंगके मेघोंसे भर गया था। जैसे संसारसे ऊबे हुए मनुष्यका मन! उस मनमेंका आत्महत्याका निश्चय—

उस निश्चय सरीखा बीचहीमें एक कालाकलूटा मेघ निश्चल खड़ा हुआ था। आत्महत्याका विचार आशाको पूर्णतया लुप्त कर दे, उस तरह अष्टमीके अर्धचंद्रको उसने पूर्णरूपसे निस्तेज कर डाला था। उस मृतप्राय चन्द्रका प्रकाश – अंधेकी शून्यदृष्टि भी उससे अच्छी!

एक विचित्र विजयस्वर मेरे कानोंमें पड़ा, कहीं वह कृष्णमेघ तो आनंदसे न चिल्लाया हो? छि! उलूक भी नहीं!

मैंने मुड़कर देखा।

एक पक्षी कृष्णमेघकी ओर उत्कंठासे देखता हुआ चिल्ला रहा था, – 'आओ, आओ, मेघमाला, आओ!'

कोई शापभ्रष्ट गंधर्व तो न हो यह? उसकी व्याकुलता देखकर मुझे आभास हुआ।

उसी समय दूसरी दिशासे शब्द आये,– 'चुप बैठ, रे चातक! आओ, आओ, चंद्रिका, आओ!'

'अबे जा बे चकोर – आओ, आओ, मेघमाला, आओ!' – पहला पक्षी चिल्लाया। निर्दय दृष्टिसे एक दूसरेकी ओर देखते हुए वे दोनों पक्षी बार बार चिल्लाने लगे।

'आओ, आओ, मेघमाला, आओ!'

'आओ, आओ, चंद्रिका, आओ!'

उनकी इस चिल्लाहटका परिणाम आकाशपर होता था या नहीं कौन जाने! परंतु क्षणमें चन्द्र चमकता, क्षणमें कृष्णमेघ उसे ढक देता – इस तरहका खेल वहाँ शुरू हो गया।

चातक चिल्ला ही रहा था, – 'आओ आओ, मेघमाला, आओ!'

चकोरकी चिल्लाहट भी ज़ारी थी, – 'आओ, आओ, चंद्रिका, आओ!'

कंठ सूखतेतक वे चिल्लाये, परंतु जलबिंदु और चाँदनी – दोनों आकाशहीमें रहे।

उन पक्षियोंकी आँखोंमें अब गिद्धकी क्रूर नज़र धीरे धीरे प्रवेशित हो गयी थी। बातकी बातमें वे एक दूसरेपर टूट पड़े। दूसरे ही क्षण दोनोंके शरीरसे रक्त बहने लगा। वह भीषण दृश्य मुझसे देखा नहीं जाता था। मैंने मुँह फेर लिया। थोड़ी देरके बाद चिल्लाना बंद हो गया। नखों और चोंचोंके प्रहारोंकी आवाज़ें मंद पड़ गयीं, व्याकुलता बंद हो गयी। पहले पंखोंकी फड़फड़ाहट सुनायी देती थी। धीरे धीरे वह सरसर हो गयी। और फिर शान्त – सर्व शान्त!

मैंने देखा। दोनों पक्षी ज़मीनपर मरे पड़े हुए थे। कुछ समयके पहलेकी अन्तरालकी वे सजीव और सुडौल मूर्त्तियाँ और ज़मीनपर पड़ी हुई वे आड़ी-टेढ़ी लाशें – अरेरे! मैंने आकाशकी ओर देखा। जैसे मुझे संतोष देनेके लिये देवाधिदेव वहाँ प्रकट होनेवाले थे!

उस कृष्णमेघमेंसे अब लगातार जलबिंदु टपकने लगे। परंतु उनके लिये प्यासे हुए चातकने अपना मुँह न खोला!

वर्षाकी झड़ी रुकते ही चाँदनी चमकने लगी। परंतु चंद्रिकाके लिये लालायित हुए चकोरने उसके स्वागतके लिये अपनी गरदन न हिलाई!

उन दो पक्षियोंकी लाशोंपर पड़े हुए जलबिंदुओंपर चाँदनी चमकने लगी।

●●●

६१

न देखी हुई दूकान

सालमें एक-दो बार मैं बंबई ज़रूर ही आता हूँ। पीछले पन्द्रह-बीस वर्षोंसे मेरा यह क्रम अखंड रूपसे चल रहा है। और हर बार मुझे यह आभास होता है जैसे मैं इस भव्य और रम्य मायानगरीको पहली बार ही देख रहा हूँ। पहली बार ही बंबई देखने आये हुए छोटे बालककी अधीर दृष्टिसे मैं इस विराट और विलक्षण नगरीके विविध दृश्योंको अभी भी देखता हूँ; उन्हें देखते हुए रह-रहकर मेरे मनमें आता है – उर्वशी जिस तरह लताका रूप धारण करके रही थी, उसी प्रकार अखंड यौवन प्राप्त किसी अप्सराने स्वच्छंद विहार करनेके लिये तो यह अवतार न लिया हो? जो लोग यह शिकायत करते हैं कि गाँवका सौंदर्य शहरमें देखनेको नहीं मिलता, ऐसे लोगोंने, मुझे लगता है, बंबई कभी देखी नहीं है। छोटी छोटी टेकड़ियोंकी तरह दीखनेवाली ऊँची ऊँची इमारतें, समुद्रकी तरंगोंकी तरह आँख-मिचौली खेलती हुई आगे-पीछे दौडनेवाली मोटरें, जुगनूकी हज़ार आँखोंसे आस-पास देखनेवाले वृक्षकी तरह, रातको आने-जानेवालोंकी ओर विद्युद्दीपोंके तीक्ष्ण दृष्टिक्षेप डालनेवाले उत्तुंग मंदिर, – छि! गाँव यदि एक भावगीत है, तो बंबई महाकाव्य है! जीवनके सब रसोंका संगमस्थान है यह!

किसी पुरानी किताबोंकी दूकानमें जाता हूँ, तो वहाँ भी बंबईकी यह श्रेष्ठता

मुझे तत्काल महसूस हो जाती है। बहुत दिनोंका पुराना घनिष्ठ मित्र अकस्मात मिल जावे उस तरह बाहर किसी भी शहरमें न मिलनेवाली अपनी कोई प्रिय पुस्तक इतने सस्ते दामोंमें मिल जाती है कि —

लेकिन रातको क़रीब दस-ग्यारह बजे थोड़ी देरके लिये मैं बंबईसे बिलकुल ऊब उठता हूँ। बदनसे बहनेवाले पसीनेकी धाराएँ, कानोंमें ज़ोरसे पड़नेवाली चित्रविचित्र कर्कश आवाज़ें – मुझे लगने लगता है कि इस परिस्थितिमें कुंभकर्ण भी न सो सकता! पुरानी पुस्तकोंकी दूकानसे प्राप्त की हुई अपनी पसंदकी पुस्तकें भी इस समय मेरा मनोरंजन नहीं कर सकतीं। निद्राभंग भी प्रेमभंगकी तरह एक महान् आपत्ति है, इसका अनुभव इस समय मुझे इतनी तीव्रतासे होता है कि मैं चुपचाप उठता हूँ और समुद्रका रास्ता पकड़ लेता हूँ!

• • •

उस रातको समुद्रपर इसी तरह दो घंटे बिताकर मैं घर लौट रहा था। चलते चलते दाहिने तरफ़की एक घड़ीकी ओर मैंने सहजभावसे देखा। बारह बजनेमें दो-तीन मिनट ही कम थे। मेरे मनमें एकदम विचार उठा – अरे बाप रे! आधी रात हो गयी!

मैं थोड़ा आगे बढ़ा ही था कि — दिनमें मनुष्योंसे भरे हुए उस विस्तीर्ण चौककी इस नीरव शान्तिने मेरे मनको मुग्ध कर दिया। दिन-भर ऊधम मचानेवाला कोई नटखट बच्चा शान्तिसे सोया हुआ हो, ठीक उसी तरह वह चौक मुझे लगा। कहते हैं कि दिनमें क्षण-क्षणपर मृत्यु इस चौकमें झाँकती रहती है! परंतु इस समय निर्भयतासे उसके मध्य-भागमें खड़े रहनेका मोह मैं किसी भी प्रकार सँवरण न कर सका! पूर्ण भाटेके समय समुद्र सुस्त होकर कहीं दूर क्षितिजके पास जाकर पड़ा रहता है और उसका अधिकृत विस्तीर्ण रेतीला किनारा ऐसे समय खाली पड़ा हुआ दीखता है। ऐसे समय कोई बालक उस किनारेके मध्य-भागमें शानसे खड़ा होकर इस दृष्टिसे चारों ओर देखे कि मैं सारी दुनियाका राजा हूँ! उस चौकमें खड़े होकर मैंने भी चारों ओर बिलकुल उसी तरह दृष्टि घुमायी। मोटरकी तो बात ही छोड़िये, पर एक परिन्दा भी वहाँ पर मारता हुआ मुझे दिखायी न दिया! उस दुर्लभ एकान्तकी भावनासे आनंदित होकर मैंने आँखें बंद कर लीं।

परंतु दूसरे ही क्षण मुझे आँखें खोलनी पड़ीं। किसीने मेरी भुजाको धीरेसे

स्पर्श किया था। मैंने मुड़कर देखा। एक स्त्री मेरे पास खड़ी हुई थी। उसका चेहरा मुझे ठीकसे न दिखा; परंतु उसके शरीरके आसपास रात-रानीकी सुगंध चक्कर काट रही थी। उसकी महीन काली साड़ीपरके वे मोहक सुंदर फूल! मानो आकाशकी तारिकाओंने उसकी साड़ीपर अपने सम्मेलनका कोई अधिवेशन ही भरा हो! मैं उससे उसका नाम पूछनेवाला था— तभी धीरेसे ही कोई मुँहसे सीटी बजावे, ऐसे स्वरमें वह बोली,– 'तुम खड़े खड़े यहाँ क्या सोच रहे थे, बाबूसाहब!'

'एक नये अनुभवका, बंबईके आवाजाहीसे भरे हुए चौकमें प्राप्त होनेवाले एकान्तसुखका चिंतन कर रहा था!'

वह सिर्फ़ हँसी।

मैं उसकी ओर आश्चर्यसे देखने लगा।

वह हँसती हुई बोली,–'उस चौकमें दिनको भीड़ लगानेवाले अनेक लोग इस समय कहाँ होते हैं, जानते हो तुम?'

'अपने घर—नींदमें।'

'अँऽहँ! एक दूकानमें!'

'दुकानमें?'–मैंने आश्चर्यसे कहा।

'ऐसी दूकानमें जिसे तुमने आजतक नहीं देखा है!'

मैं उसकी बातका कोई मतलब ही न समझ पाया। मैं सोचने लगा–यह दूकान काहेकी होगी भला? मैं सुनता आया था कि शराबबंदीके कुछ नियम इस समय भी बम्बईमें अमलमें हैं। मेरे मनमें आया–यह नयी दूकान चोरीसे शराब बेचने-की तो न हो कहीं? छि! इस चौकसे दिनभर जल्दी जल्दी मोटरसे जानेवाले और कभी कभी लोगोंसे अपने गलेमें हार पहनवा लेनेवाले भिन्न भिन्न व्यवसायोंवाले भद्रपुरुष शराबी कैसे होंगे? यह बिलकुल असंभव है!

'तुम देखना चाहते हो उस दूकानको?'–उस तरुणीने मुझसे पूछा।

एक अनजान स्त्रीके साथ आधी रातको बम्बई जैसे हर तरहके लोगोंकी बस्तीवाले शहरमें, वह ले जाये उधर जाऊँ? क्षण-भर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। परंतु मानवी मनको कुतूहल और साहसकी तरफ़ हमेशा ही बड़ा विलक्षण आकर्षण होता है। मेरे भयपर उन्होंने ही विजय प्राप्त की।

मैंने उस स्त्रीसे कहा,–'मैं तैयार हूँ।'

वह बोली, – 'ठीक है! तो चलो। आँखें बन्द कर लो।'

• • •

'आँखें खोलो' – उसके शब्द कानमें पड़ते ही मैं होशमें आया। किसी भी तरह मेरी समझमें न आ रहा था कि मैं बंबईके किस भागमें आ गया हूँ। पिंजड़ेके भीतर गुरगुराते रहनेवाले शेरकी तरह कहीं दूरसे समुद्रकी आवाज़ सुनायी पड़ रही थी; पर —

मैंने चारों तरफ़ ध्यानसे देखा। सर्वत्र अँधेरा छाया हुआ था। छोटी-बड़ी इमारतोंकी धुँधली-सी आकृतियाँ भी कहीं दृष्टिपथमें न आती थीं। मैं घबड़ा गया।

इसी समय मेरी मार्गदर्शिकाने मुझसे कहा, – 'इस दूकानकी शाखाएँ बंबईमें स्थान स्थानपर फैली हुई हैं। चूँकि तुम इस संस्थाको ठीक तरह देख सको इसलिये मैं तुम्हें ऐसी जगह लायी हूँ जहाँ सिर्फ़ बड़े बड़े लोग ही आया करते हैं!'

झुककर उसने हाथसे कोई एक कल दबायी। तुरंत ही ज़मीन फटी-सी दिखायी दी! भीतरके प्रकाशकी किरणें जैसे हमारा स्वागत करनेके लिये बाहर दौड़ती हुई आयीं।

उसके साथ भीतर उतरकर मैं एकके बाद एक दालान पीछे छोड़ने लगा, तब मुझे अपनी मार्गदर्शिकाकी अरसिकतापर बड़ी दया आने लगी। किसी विशाल और सुंदर देवालयको भी लज्जित करनेवाले इस मंदिरको क्या दूकान कहना चाहिए? छि! यह सिद्ध करनेके लिये कि अजंताकी मूर्त्तियाँ निर्मित करनेवाली भारतीय कला आज भी ज़िंदा है, यदि मैं इस मंदिरके फोटो ले सकता तो—

मैं एक भव्य बैठकखानेमें आकर पहुँच गया था। वहाँ इत्रके दीये जल रहे होंगे। वरना इतनी महक —

मैं उस स्त्रीसे कुछ पूछनेहीवाला था, तभी उसने बैठकखानेके मध्यभागमें आसनस्थ एक तपस्वीकी ओर अँगुली दिखाई। उसे वंदन करके उसकी तेजःपुंज मूर्तिकी ओर मैं देखने लगा। अब मुझे अपनी साथिनपर और भी अधिक क्रोध आया। इतना श्रेष्ठ तपस्वी जहाँ ध्यान-धारणा किये बैठा हुआ है, ऐसे पवित्र स्थानको यह पगली दूकान कहकर संबोधित करती थी।

तपस्वीजी चिंतनमें खोये हुए दीख रहे थे। मैं इधर उधर देखने लगा। उनके दो तरफ़ अनेक सुवर्ण-करंड खुले हुए ही रखे थे। पानीमें चमकनेवाली छोटी मछलियोंकी तरह उन सुवर्ण-करंडोंमें विविध रंगके असंख्य कंकड़ लगातार कुल-

बुला रहे थे। इस चमत्कारको देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैं अपनी मार्ग-दर्शिकाकी ओर मुड़ा। परंतु उसने मुँहपर अँगुली रखकर, मुझे चुप रहनेका संकेत किया। मैं दीवालपर लगी तसबीरोंको देखने लगा। उन्हें देखते देखते मेरा मन इतना चकरा गया कि कुछ न पूछिये! प्रत्येक तसबीरमें बैठकखानेके मध्य-भागमें बैठे हुए तपस्वी महाराज दीख रहे थे। परंतु वे सन्यासीके वेशमें नहीं; किंतु पूर्ण रूपसे रंगीन पोशाकमें! एक तसबीरमें वे अर्धनग्न तरुणियोंपर रंगकी पिच-कारियाँ मार रहे थे, दूसरे चित्रमें वे क्रोधसे विवस्त्र मनुष्योंके शरीरोंको दाग़ रहे थे, तीसरी तसवीरमें हीरे और मोतियोंसे स्नान करते हुए किसी पागलकी तरह वे विकट हास्य कर रहे थे! काम-क्रोधादि षड्रिपुओंकी अनिर्बंध लीलाओंके प्रतीकों-के रूपमें ही ये चित्र बनाये होंगे, ऐसा एक विचित्र विचार मेरे मनमें आ गया। परंतु प्रत्येक चित्रमें इस विरक्त महाराजकी मूर्ति क्यों होना चाहिए? मेरा कुतूहल मुझे चुप नहीं रहने देता था। यह देखते ही कि मैं ज़ोरसे कोई प्रश्न पूछनेवाला ही हूँ, मेरी मित्राणी मुझे झटसे खींचकर एक तरफ ले गयी। बैठकखानेके बाजूके एक कोनेमें काफी अँधेरा था। उसने मुझे वहाँ ले जाकर खड़ा कर दिया। हम कानाफूसी करने लगे।

मैंने उससे पूछा, – 'इन महाराजका नाम क्या है?'

उसने हँसकर उत्तर दिया, – 'इनके हज़ारों नाम हैं, उनमेंसे कौनसा तुम्हें बताऊँ?'

'इतने श्रेष्ठ तपस्वीके निवासस्थानमें ये रंगीली तसबीरें —'

वह अर्थपूर्ण रीतिसे हँसी। परंतु मुझे उस हास्यका मतलब समझमें न आता था।

'महाराजके दोनों तरफ़ रखे सुवर्ण-करंडोमें हीरक कुलबुला रहे हैं न! यह क्या चमत्कार है?'

'उस चमत्कारको देखनेके लिये ही मैं तुम्हें यहाँ ले आयी हूँ!'

'मतलब?'

'वे हीरक नहीं हैं!'

'फिर?'

'आत्माएँ हैं वे!'

'आत्माएँ? किनकी?'

उसने मेरे मुँहपर अँगुली रख दी। मैंने जिव्हापर आये हुए शब्दोंको वापस गुटक लिया।

• • •

बैठकखानेके द्वारसे एक व्यक्ति भीतर आ रहा था। उसकी हिमालय जैसी सफ़ेद शुभ्र पोशाक़, गंगाजलकी तरह सफ़ेद शुभ्र टोपी—मुझे लगने लगा कि इस पवित्र विभूतिका फोटो मैंने कभी एक समाचार-पत्रमें देखा था।

वह व्यक्ति आगे बढ़ा। उसने साष्टांग नमस्कार करके 'महाराज' कहकर पुकारा।

तुरंत ही उस तपस्वीने आँखे खोलीं। 'क्यो वत्स, सब कुशल है न?'—साधुने प्रश्न किया।

उस व्यक्तिने उत्तर दिया,—'आपकी कृपासे सब ठीक है, महाराज! पर—'

'लखपतिसे करोड़पति बन गये, फिर भी अभीतक तृप्ति नहीं हुई तुम्हारी?'

'मैं धनके बारेमें नहीं कह रहा हूँ, महाराज! मेरी आत्मा मुझे लौटा दीजिये! कहाँ है वह?'

दाहिनी ओरके सुवर्ण-करंडमेंसे एक हीरक उठाकर वह तपस्वी बोला,—'यह लो तुम्हारी आत्मा। लेकिन एक बात ध्यानमें रखना। इस आत्माके बदलेमें मैंने तुम्हारी मूलकी सम्पत्ति तुम्हें दी है। बहनका एक बड़ा बीमा कराकर बादमें उसको धीरे धीरे ज़हर देनेवाले तुम्हारे हाथोंको लक्ष्मी कैसी चिपकी यह—'

तपस्वीके हाथसे अपनी आत्मा लेनेके लिये उस मनुष्यने अपना हाथ अधीरतासे आगे बढ़ाया था; परंतु अब उस आत्माको स्पर्श करनेकी उसे हिम्मत न पड़ती थी।

उसकी यह स्थिति देखकर तपस्वी हँसा और बोला,—'पगले, पिछले चार वर्षोंमें कपड़ेका काला बाज़ार करके एक ओर तूने लाखों रुपये कमाये और दूसरी ओर देशकार्यके लिये हज़ारों रुपये देकर तूने देशभक्ति भी अपने पल्लेमें बाँध ली है! तेरी आत्मा यदि तेरे पास होती, तो यह दोहरा जीवन तुझे दुःसह हो जाता! तेरी आत्मा मेरे पास है, यही ठीक है। रात-दिन आत्माको अपने पास रखे रहना आजकलके ज़मानेमें तुझ जैसे व्यक्तियोंके लिये सुखकारक नहीं है। तेरी आत्मा तेरे पास होती, तो लज्जा रखनेके लिये बीता-भर वस्त्र न मिलनेके कारण प्राण दे देनेवाली स्त्रियोंके समाचार पढ़कर तू चुप नहीं बैठ सकता था! तेरी आत्माने तुझे अपने गुप्त वस्त्र-भंडारको खोल देनेके लिये बाध्य कर दिया

होता, तेरे झूठे हिसाबोंकी कलई खोल दी होती – छि! छि! बेटा, जा, आरामसे सो जा। धर्म, बुद्धि और दौलत एक दूसरेकी सौतें हैं। यह ध्यानमें रखकर व्यवहार करता जा कि वे बहुधा एक स्थानमें हिलमिलकर नहीं रहतीं जिससे कि आत्माकी स्मृति होनेका झटका जो तुझे बीच-बीचमें आ जाता है, वह न आयेगा।'

वह व्यक्ति दरवाज़ेसे बाहर जा रहा था, तभी दूसरे एक महाशय भीतर आये। जानेवाले व्यक्तिकी ओर गुस्सेसे देखते हुए ही ये हज़रत भीतर पधारे थे। परंतु तपस्वीको वंदन करते समय उनकी मुद्राका सारा क्रोध जाने कहाँ गायब हो गया था।

साधुने प्रश्न किया,–' क्यों बेटा, तुम्हारा सब ठीक चल रहा है न?'

' भगवानकी कृपासे —'

' चुप —'

' भूल हो गयी, महाराज; मानव-शरीरमें जिव्हाके बराबर सनातनी इंद्री दूसरी और कोई नहीं है! खाना-पीना हो या बोलना हो – उसकी पुरानी आदतें किसी भी तरह नहीं छूटतीं। आपकी कृपासे घरमें आनंद है, महाराज! आज ही गाँवसे लौटा हूँ। वहाँ एक धार्मिक विधि करते समय आत्माकी याद आयी। वह बंबईमें ही रह गयी, इसलिये थोड़ा दुख भी हुआ; सोचा, एक बार आपकी सेवामें हो आऊँ और उसे —'

बायीं ओरके सुवर्ण-करंडसे एक हीरक उठाते हुए साधुने कहा,–' यह तू वापस चाहता है?'

' हाँ, महाराज!' – अपना हाथ आगे बढ़ाता हुआ वह व्यक्ति बोला।

' लेकिन अगर इसको अपने साथ लेकर तू घूमने लगे तो मेरे काम कैसे पूरे होंगे?'

' मतलब?'

' अरे पगले, आस्तीनमें बिच्छू रखे हुए क्या कोई संगीतमें रंग जायेगा? इस अर्थयुगमें आत्माकी तरह मनुष्यका दूसरा शत्रु नहीं है। वह पद-पदपर उसे डंक मारता है और ' यह नीति नहीं, यह धर्म नहीं, यह पाप है ' आदिका भय दिखाकर पराक्रमसे उसको परावृत्त करनेका प्रयत्न करता है। इसलिये —'

' परंतु महाराज, धर्मपर मेरी श्रद्धा है! नीतिमें मेरा विश्वास है। मैंने अपने सैंकड़ों भाषणोंमें यह प्रतिपादन किया है कि हिंदू हिंदू सब भाई भाई हैं —'

'बिकट हास्य करता हुआ तपस्वी बोला, – 'तू अपने गाँव लगान वसूल करने गया था न? है न? तेरे सारे हिस्सेदार तेरे धर्म-भाई ही हैं। है न? फिर इस साल आठ आना फसलके न आते हुए भी तूने अपने भाइयोंसे पूरा लगान क्यों वसूल किया? तेरे खेतोंको जोतनेवाले ग़रीब हरिजनोंकी झोंपड़ियोंपर तूने जब्तीका हुक्म क्यों दिलाया? बंबई लौटते समय तूने गाँवके देवताकी पूजा की, वह सिर्फ़ ग्रामीणोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिये! परंतु एक बात न भूल। तेरी आत्मा तेरी यह धार्मिक धुलेंडी न चलने देगी। तू अपने व्याख्यानोंमें समाज-संगठनकी बड़ी बड़ी गप्पें हाँकने लगा, तो तेरी आत्मा चिल्ला चिल्लाकर कहने लगेगी कि यह सारा तेरा बौद्धिक व्यभिचार है। आत्मा एक बड़ा अजीब भूत है, बेटा! वह कब कहाँ प्रकट हो जायेगा और कहाँ क्या बक देगा इसका कोई ठिकाना नहीं। तुम्हारी आत्मा इधर मेरे पास है, यही ठीक है। ज़मींदारी और साहूकारीसे प्राप्त किया गया तेरा पैसा स्टेट बैंकमें जितना सुरक्षित है, उतनी तेरी आत्मा मेरे पास सकुशल है। उसकी तू ज़रा भी फिक्र न कर। तुझ जैसे बुद्धिमान मनुष्यको क्या यह कहनेकी आवश्यकता है कि धर्मबुद्धि और भोग लालसा दोनों बहनें नहीं हो सकतीं? जा, सुखसे घरमें सो जा। कल अदालतमें तुझे काम होगा, वकीलके पास जाना होगा तुझे! कुछ झूठे गवाह भी बनाना होंगे! इसलिये —'

तपस्वीको अभिवादन करके वह व्यक्ति जानेके लिये मुड़ा, तभी दरवाज़ेसे एक अस्तव्यस्त नंगासिर व्यक्ति झटसे भीतर आया। उन दोनोंने एक दूसरेकी ओर देखा भी था कि मेरे मनमें कुछ ऐसी कल्पना आ गयी यदि वे दोनों बिलौटे होते तो अपनी दुमें फुलाकर कर्कश स्वरमें एक दूसरेपर गुरगुराने लगते।

उस नंगेसिर व्यक्तिके आगे आते ही तपस्वी बोला,– 'आओ, बेटा —'

साधुको आगे कुछ कहनेका मौक़ा न देकर वह इस अंदाजमें बोला जैसे किसी सभामें भाषण दे रहा हो,–'महाराज, मैं आपसे यह कितनी बार कहूँ कि 'बेटा' संबोधन अब बहुत पुराना हो गया है। अब नयी दुनिया बन रही है। इस नयी दुनियामें कोई किसीका शिष्य नहीं, कोई किसीका गुरु नहीं, सब एक दूसरेके भाई हैं!'

'भाई, तुम कुशल हो न!'–तपस्वीने हँसते हुए प्रश्न किया।

'बस, यही न पूछिये, महाराज! सिरमें कैसे हथौड़े पड़ रहे हैं। मुझे लगातार

यह भ्रम हो रहा है जैसे हंसियासे कोई मेरी गरदन काट रहा है। यह सोच कर कि बहुत दिन आत्माको आपके पास रख देनेके कारण शायद यह मानसिक त्रास हो रहा है, मैं उसे वापस ले जानेके लिये आया हूँ। कहाँ है मेरी आत्मा, महाराज ?'

माणिककी तरह दीखनेवाला एक छोटासा लाल टुकड़ा सुवर्ण-करंडसे उठाकर वह तपस्वी बोला,–'ले, यह रही आत्मा। उसपर तेरा पूरा विश्वास न था। इसलिये तो मैंने यह तुझसे ले लिया जिससे वह मेरे पास सुरक्षित रहे। तू यदि उसे चाहता है, तो शौक़से ले जा। मुझे कोई इन्कार नहीं। पर —'

'पर क्या, महाराज ?'

'यह न भूल कि आत्मा मनुष्यको कभी सुखसे नहीं सोने देती। कोई झूठ बोलने लगता है, तो वह बेचैन हो जाती है, कोई रास्तेसे आने-जानेवाली किसी गोरी सुंदर स्त्रीकी ओर सहजभावसे देखने लगता है, तो यह कुलबुलाने लगती है, कोई दूसरेकी जानपर गुलछर्रे उड़ाने लगता है, तो इसका अमंगल आक्रंदन आरंभ हो जाता है !'

'मैं उस अमंगल आक्रंदनसे नहीं डरता !'–इस तरह बड़े अभिमानसे कहकर अपनी आत्मा उठानेके लिये वह व्यक्ति झुका।

इसी समय वह तपस्वी बोला,–'भाई, व्यर्थ ही आगसे न खेलो। तू गला फाड़ फाड़कर यह चिल्लाता आया कि पिछला महायुद्ध इस देशकी जनताका युद्ध है। तुझे भी यह बात मनमें नहीं जँचती थी! बंगालके अकालमें छटपटाकर मरे हुए प्रत्येक मनुष्यका भूत तुझे स्वप्नमें दिखायी देता था और वह तेरे कानोंमें चिल्ला चिल्लाकर कहता था, 'यह हिंदुस्तानकी जनताका युद्ध नहीं है। रशियाकी जनताका युद्ध है! यह हमारी जनताका युद्ध होता, तो हम अन्नके अभावमें क्षुद्र कीड़ोंकी तरह कुलबुलाते हुए तड़प तड़पकर प्राण न त्यागते। समरभूमिपर वीरोंको शोभा देनेवाली मृत्यु प्राप्त होती, तो हम लोग उसका हँसते-हँसते स्वागत करते। परंतु —''

अपनी आत्माको उठानेके लिये बढ़ाये हुए अपने हाथको उस व्यक्तिने धीरे धीरे पीछे खींचा। सचिंत मुद्रासे उसने प्रश्न किया,–'परंतु महाराज, मेरी आत्माको इस अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिसे क्या करना है ?'

तपस्वी स्मित करता हुआ बोला,–'इसके बारेमें यही तो एक बड़ी झंझट

है। यह महाविचित्र प्राणी है, भाई! जीवन-मंदिरमें दीवालें खड़ी करके उसके अलग अलग टुकड़े करना उसे बिलकुल पसंद नहीं है। राजनीति हो, अथवा खानगी जीवन हो, प्रत्येक बातको झाँककर देखनेकी लत ही पड़ गयी है उसे। यह आत्मा सिर्फ़ सत्यनिष्ठा जानती है। 'पक्ष-निष्ठा' शब्द ही उसके शब्दकोशमें नहीं है। वह शरीरके जीवनमरणकी परवाह नहीं करती अथवा लोग क्या कहेंगे इसकी ओर भी वह ध्यान नहीं देती। वह सामने आये हुए प्रश्नोंको रटन्त विद्यासे कभी हल नहीं करती। अनुभव ही उसका गुरु है! दुनियाके सारे झींगुरों-को एकत्रित करके ब्रह्माजीने उसे बनाया है क्या, कौन जाने? परंतु यह कभी किसीको चैनसे नहीं बैठने देती। लोगोंकी आलोचनाओंका आसानीसे उत्तर दे सकेगा, उनमेंके जो प्रामाणिक आलोचक होंगे, उन्हें भी पूंजीपतियोंके पिट्ठू कहकर, तू सुखसे सो सकेगा। लेकिन यदि तू अपनी इस आत्माको अपने साथ ले गया तो फिर ज़रूर — स्वयं अपनी आत्माके बराबर मनुष्यका कठोर आलो-चक दुनियामें दूसरा कोई नहीं है, भाई!'

• • •

दस-बारह लोग दरवाज़ेसे भीतर आनेका प्रयत्न करते हुए दिखायी दिये। उनकी आहट पाते ही वह व्यक्ति बड़ी चपलतासे उनकी नज़र बचाकर बाहर सटक गया। शायद इसी डरसे कि भीतर आये हुए लोगोंमेंसे कहीं एकाधकी नज़र हम-पर न पड़ जाय मेरी मित्रानी मुझे बैठकखानेके पिछवाड़े ले गयी। वहाँ अँधेरा फैला हुआ था। उस अँधेरेमें साँपोंकी फुसकारें कानोंमें पड़ते ही मैंने घबड़ाकर अपनी मार्गदर्शिकाका हाथ कसकर पकड़ लिया।

वह हँसकर बोली, — 'बड़े डरपोक हो तुम। अरे, इन सब सर्पोंके साथ ये साधु महाराज हमेशा खेला करते हैं। यहाँ आये हुए किसीको भी न डसनेकी उन्होंने इन सर्पोंको शिक्षा दी है!'

अब कहीं मेरी जानमें जान आयी। मैंने अपनी साथिनसे कहा, — 'क्या ही विचित्र स्थान है यह! जिन्हें हम समाजमें सभ्य और सज्जन मानते हैं, हमारे जीवनको उदात्तताका प्रकाश देनेवालोंकी हैसियतसे जिनके चरणोंपर हम अपना मस्तक रखते हैं, वे भी अपनी आत्माओंको गिरवी रख चुके हों —'

'मनुष्यके जन्मसे उसको प्राप्त हुआ अभिशाप है यह, बाबूसाहब! शैतानके पास अपनी आत्माको गिरवी रखकर, उसके बदलेमें क्षण-भंगुर सुखोंको खरीदनेकी

रुचि यदि मानवजातिको न लगी होती तो — इस यंत्रयुगने जीवनको उलझनका बनाकर वह रुचि अधिक बढ़ा दी है, यह सच है! परंतु तुमने जो दृश्य अभी देखा है, वह सिर्फ़ आजकलका ही नहीं है। अत्यंत प्राचीन कालका है वह! आत्माको बेचकर शरीरसुख प्राप्त करनेकी यह अमानुष प्रथा अत्यंत पुरातन है। रामराज्यमें भी ऐसे दूषण थे ही। आत्मविक्रय करनेवाले इन दांभिक बुद्धिमानोंको बीच-बीचमें आत्माकी याद आ जाती है, इसलिये मनुष्यके भविष्यके बारेमें अब भी आशा मालूम होती है। लेकिन अपने असंख्य चेलोंको साधुके रूप देकर शैतानके द्वारा लगाया गया यह बाज़ार यदि बंद करना है, तो ऐसी समाजरचना निर्मित होनी चाहिए जिनसे मनुष्यका सामाजिक मन अनायास ही विकसित हो! वर्तमान समाजरचनामें वह अनजाने ढोंगी होता है, दोहरे जीवनके लिये वह ललचाता है, उसे लगने लगता है कि आत्मवंचनाके लिये ही आत्मा है —'

अनेक मनुष्य एकदम बातें करना शुरु कर दें, उस तरहका कोलाहल मुझे उस अँधेरेमें सुनायी पड़ने लगा।

'क्या है यह?' – मैंने अपनी मित्रानीसे प्रश्न किया।

उसने उत्तर दिया,– 'सोनेके करंड़ोमें वे हीरक व्यर्थ नहीं तड़प रहे थे! इस समय करंड़ेमें पड़ी हर आत्माकी ज़बान खुल जाती है। शैतानने इस मंदिरकी रचना ऐसी की है जिससे उन आत्माओंके बोल बैठकखानेमें सुनाई न पड़े; परंतु वे हमें यहाँ पिछवाड़े स्पष्ट रूपसे सुनाई देते हैं।'

मैं कान लगाकर सुनने लगा —

'तुम्हें उस रद्दी फिल्मके लिये तीस लाख रुपये मिले। अब भी तो कम-से-कम पहले उच्चारण किये हुए अपने ध्येयका स्मरण करो। सिर्फ़ पैसा कमानेके लिये ही यदि तुम आगामी फिल्म बना रहे होगे, तो मैं तुम्हारे साथ क्षण-भर भी रहनेके लिये तैयार नहीं।'

'पैसा और प्रतिष्ठाके लिये क्यों साहित्यकी तात्त्विक चर्चा की जाये? कला तपस्याके बिना अनुकूल नहीं होती, उसके सिवा जीवनका पता नहीं चलता। तुम दोनों ही शोहदे हो। तुम्हारी आत्माएँ यहाँ झगड़ती रहेंगी। परंतु वे तुम्हारे साथ! अँऽहँ! चलो। जाओ, अपना रास्ता नापो यहाँसे!'

'तुमने जब प्रेम-विवाह किया, तब मैंने तुम्हारा समर्थन किया था। तुम्हारा प्रेम उस समय मुझे प्रामाणिक प्रतीत हुआ था। परंतु अब तुम्हारे पतिके जीवित

होते हुए दूसरे धनी पुरुषके साथ रातबिरात घूमने जानेकी तुम्हें शर्म नहीं आती ? अपने बर्तावका यह कहकर समर्थन करते हुए कि उस पुरुषके जीवनके बौद्धिक सुखकी कमीको मैं दूर करती हूँ, तुम्हें लज्जा आनी चाहिए। बाईसाहबा, स्वयं अपने मनके भीतर ज़रा गहराईमें जाकर देखो। केवल मौजके लिये – सिर्फ़ शरीरसुखके लिये नहीं – तुम्हारे साथ वापस चलनेके लिये मैं तैयार नहीं। मैं यहीं जन्मभर छटपटाती रहूँगी; परंतु तुम्हारे साथ – छिः ! आत्मा वीरान जंगलमें रहेगी, जेलमें ज़िंदगी काट देगी, वक्त पड़नेपर श्मशानमें चक्कर लगाती रहेगी, परंतु बाज़ारमें आकर वह स्वयं अपना नीलाम न होने देगी।'

लगता है कि अब बैठकखानेमें बड़ी भीड़ लग गयी होगी! वाक्यके बाद वाक्य सुनाई पड़ने लगे। 'क्या कह रहो ? मैं तुम्हारे साथ आऊँ ? फिर तुमने बहुतसे रुपये लेकर जो झूटे वकालतनामे लिये हैं, उनका क्या होगा ?' 'नहीं, मुझे आग्रह न करो। मैं यदि तुम्हारे साथ आयी, तो तुम्हारे यहाँ आनेवाले रोगियोंकी संख्या बढ़ेगी। परंतु तुम्हारी प्रैक्टिस कम हो जायेगी न ?' 'छि! छि! मुझे क्यों व्यर्थ अपने साथ लिये जाते हो ? मैं अगर तुम्हारे साथ आयी, तो तुम्हारा कलका अंक ही नहीं निकलेगा। उसमेंका वह सारा भविष्यकथन झूठा है, क्या तुम यह जानते हो ? इसके ऊपर तुमने उस रद्दी फिल्मकी अत्यधिक प्रशंसा की है, उसका मूल्य पाँचसौ रुपया है – यह बात और कोई चाहे न जाना हो, परंतु तुम्हारे जेबको इसका पूरा पता है। ऐसी हालतमें मैं —'

वाक्यमें वाक्य मिलने लगे। अनेक आत्माएँ आवेशसे एकदम बोलने लगी थी उस कोलाहलमें। किसकी आत्मा क्या बोल रही है इसका मुझे ठीक तरह पता न चलता था। परंतु रह-रहकर एक बातका मुझे आश्चर्य होने लगा। मज़दूर, किसान, हमाल, शिक्षक आदिकी आत्माओंके उद्गार मेरे कानोंमें अभी तक नहीं पड़े थे। मेरे मनमें आया – क्या इनकी आत्माएँ नहीं होतीं, अथवा आत्माओंको अपने पास रखकर ये अपने सब काम पूरे कर सकते हैं। यह थोक आत्मविक्रयकी दूकान होनेके कारण ये फालतू लोग कदाचित यहाँ न आते हों। वे सब लोग बहुधा चिल्लर दूकानोंमें जाते होंगे!

अपनी इस शंकाको पूछनेके लिये मैंने अपनी साथिनकी ओर मुड़कर देखा। परंतु —

वह कहीं भी दिखायी न दी ! मैं घबड़ा गया। मेरा शरीर पसीनेसे तरबतर हो गया। मैं आँखें फाड़कर उस अँधेरेमें उसे खोज़ने लगा।

• • •

मेरी आँखोंपर पहले मुझे विश्वास ही न होता था। मैं अपने कमरेमें बिस्तर-पर सोया हुआ था। नज़दीक ही नीचे खींच लिया हुआ विद्युद्दीप जल रहा था। उस तरफ़के चित्रपटगृहसे दर्शकोंका प्रवाह बाहर निकल रहा होगा! उसका विलक्षण कोलाहल —

बिस्तरपर मेरे दाहिने हाथकी ओर दो पुस्तकें पड़ी हुई थीं। उसी दिन दो-पहरको एक पुरानी पुस्तकोंकी दूकानमें वे मुझे मिल गयी थीं। एक थी अरेबियन नाइट्स – मेरे बचपनकी अत्यंत प्रिय पुस्तक ! और दूसरी थी गटेका फाउस्ट ! जब कॉलेजमें था तब मैंने उसे पढ़ा था ! शैतानको अपनी आत्मा बेच देनेवाले उस नाटकके नायकको उस समय मैं ठीक तरह नहीं समझ पाया था। आज दूकानमें उस नाटकको देखते ही मुझे तीव्र इच्छा हुई कि उस नाटकको फिर एक बार ठीकसे पढ़ डालूँ। और उसे पढ़ते पढ़ते सोनेसे पहले समुद्रपर चक्कर मार आनेका अपना नित्यका नियम भी मैं भूल गया।

• • •

६२

तीन ध्येयवादी

वे तीनों प्रवासी पर्वतके नीचे आकर पहुँचे ही थे तभी सूर्य अस्त हो गया।

जहाँ तहाँ अंधकारका साम्राज्य फैल गया। झींगुर भाट हुए। सियार संगीतज्ञ बने। सर्प जासूसोंका काम करने लगे।

डरी हुई आँखोंसे अंधकारकी ओर देखनेवाली आकाशकी तारिकाओंने तुरंत कृष्णमेघकी चद्दर अपने मुँहपर ओढ़ ली। लतापर जिन कलियोंने हँसना आरंभ कर दिया था, उन्होंने फिरसे अपनी माँकी गोदका आसरा लिया। भयभीत वायुलहरियाँ छिपनेको कोई स्थान न पाकर थरथर काँपती हुई तितरबितर होकर भागने लगीं।

तरुण प्रवासी पर्वतके नीचे एकदम ठहर गया।

उसके साथके वे तरुणियाँ भी – जो बहनें बहनें थीं – तुरंत ठहर गयीं।

तीनोंकी मुद्राओंपर भयकी छाया फैल गयी।

'कल प्रातःकालतक जो इस पर्वतके शिखरपर चढ़ जायेगा, उसे ही चिरंतन आनंदका मार्ग दिखायी देगा!' -- आचार्यकी यह वाणी तीनोंके कानोंमें गूँज रही थी।

परंतु उस घनघोर अँधेरेमें पर्वतपर पैर रखनेकी किसीकी भी हिम्मत न पड़ती थी।

वह तरुण उपहास-भरे स्वरमें बोला, – ' ब्रह्माजीको भीरुताकी मूर्ति बनानेका बड़ा शौक़ था। इसलिये उन्होंने स्त्री बना दी! '

उन दो बहनोंमें जो गंभीर मुद्राकी तरुणी थी, वह इन शब्दोंको सुनकर सिर्फ़ हँसी।

दूसरीसे ज़रूर चुप नहीं रहा जाता था। अपनी स्वप्निल आँखोंसे उस तरुणकी ओर देखती हुई और ठहाका मारकर हँसती हुई वह बोली, – ' ब्रह्माजीको बड़-बड़ियापनकी मूर्त्ति बनानेका बड़ा शौक़ था। इसलिये उन्होंने पुरुष बना दिया! '

इस तानेका सक्रिय उत्तर देनेके लिये वह तरुण आगे बढ़ा। परंतु पर्वतके नीचे पड़ी हुई पहली ही शिलाका शीतल स्पर्श पैरको होते ही चौंककर उसने अपना पैर पीछे खींच लिया। वह कँपित स्वरमें पुटपुटाया, – ' सर्प! '

उन तरुणियोंको यह दिखानेके लिये कि मैं डरा नहीं हूँ, वह बोला, – ' यह सच है कि सुबह होनेसे पहले हमें पर्वतके शिखरपर पहुँच जाना चाहिए। परंतु केवल इतनेके लिये प्राणोंको संकटमें डालना क्या बुद्धिमानी हुई? इस पहाड़के सर्प हालहीमें अपने बिलोंसे बाहर निकले होंगे! वैसे भूत-पलीतोंपर मैं विश्वास नहीं करता! लेकिन ये पेड़ अँधेरेमें भूतों जैसे प्रतीत होते हैं। है न? '

' अरे वाह जी बुद्धिवादी! ' – स्वप्निल नेत्रोंकी वह तरुणी मुँह बनाती हुई बोली।

' किसी भी बातके दोनों पहलुओंको तर्कशुद्ध दृष्टिसे देखना ही बुद्धिका काम है। इस निबिड अन्धकारमें पहाड़पर चढ़ते-चढ़ते सर्प डस ले, किसी शिलासे पैर फिसलकर हम नीचे गड्ढेमें जा गिरें अथवा किसी कँटीली झाड़ीमें हमारे वस्त्र फँस जावें, तो आचार्यके द्वारा कहा गया चिरंतन आनंदका मार्ग तो दूर रहेगा और स्थायी दुखका मार्ग हमें अवश्य मिल जायेगा। बताओ, है कि नहीं? आधी रातके बाद अँधेरा कम होतेतक — '

उस तरुणने गंभीर मुद्रावाली तरुणीको उद्देश्यकर अंतिम वाक्य कहा था। लेकिन उसने उत्तरमें अपनी गरदन तक न हिलायी। कदाचित उसका वह प्रश्न उसे सुनायी ही न पड़ा हो! वह सामनेके अंधकारकी ओर इस तरह एकाग्र दृष्टिसे देख रही थी जैसे कि उपास्य देवताका चिन्तन करनेवाली योगिनी ही हो!

उस तरुणने स्वप्निल आँखोंवाली तरुणीकी ओर देखा। वह उतावलेपनसे बोली, – ' ' जहाँ संशय, वहाँ पराजय ' यह कहावत क्या कभी सुनी है तुमने?

तुम्हारी बुद्धि तुम्हींको मुबारक हो ! कोई भी महत् कार्य बुद्धिसे पूरे नहीं होते, वे भावनासे साध्य होते हैं। तुम अँधेरा कम होनेकी बाट जोहते हुए खुशीसे बैठे रहो यहाँ। हम दोनों इसी समय पहाड़ चढ़ना शुरू करेंगी। है न बहन ?'

बहनने उत्तरमें गरदन तक न हिलायी। शायद बड़ी बहनका प्रश्न ही उसे सुनायी न दिया हो ! वह सामनेके अंधकारकी ओर एकाग्र दृष्टिसे देख रही थी। उसकी मुद्रापर समाधिका ब्रह्मानंद नाच रहा था !

स्वप्निल आँखोंवाली उस तरुणीने परिधान किये हुए सुंदर वस्त्रका अंचल टर्रसे फाड़ डाला।

चकित होकर उस तरुणीने पूछा,– 'अरे अरे, यह क्या ?'

उसने उत्तर दिया,– 'पहाड़ चढ़ते समय सर्प और भूत न दिखें और उन्हें देखकर हमें पीछे हटनेकी बुद्धि न हो, इसलिये मैं एक उपाय करनेवाली हूँ !'

फाड़े हुए वस्त्रकी दो लंबी पट्टियाँ बनाकर वह अपनी छोटी बहनके पास गयी। अँधेरेको देखकर न जाने उसे इतना क्यों आनंद हो रहा था ! उसे झकझोरते हुए बड़ी बहन बोली,– 'आँखोंपर यह पट्टी बाँध लो जिससे पर्वत चढ़ते समय डर न लगेगा तुम्हें !'

अब कहीं उस गंभीर मुद्रावाली तरुणीकी ज़बान खुली। पट्टी एक तरफ फेंककर वह बोली,– 'जीजी, मैं खुली आँखोंसे पहाड़पर चढ़ूँगी।

'इस अँधेरेमें ?'

'हाँ !'

'सर्प पैरपर चढ़ जायेगा। रास्तेमें भूत खानेको आयेंगे !'

कुछ भी उत्तर न देकर वह गंभीर मुद्रावाली तरुणी आगे बढ़ी।

उसकी बड़ी बहन चिल्लाकर बोली,– 'ठहर जा, लड़की ठहर जा। ऐसा पागलपन न कर। तुझसे चार बरसातें अधिक देखे हैं मैंने। आओ, हम दोनों इन पट्टियोंसे अपनी आँखें बाँध लें और एक दूसरेका हाथ पकड़कर पहाड़ चढ़ें !'

स्वप्निल आँखोंवाली उस तरुणीने आँखें तान तानकर देखा। परंतु उसे अब अपनी छोटी बहन कहीं भी दिखायी न देती थी। वह उस भयानक अँधेरेमें कभीकी लुप्त हो गयी थी !

दूसरे दिन सबेरे उस तरुणने आँखें खोलकर देखा। यह देखकर कि मैं अभीतक पर्वतके नीचे ही हूँ, वह निराश हो गया। धीरे धीरे विरल हो रहे

आसपासके कोहरेमेंसे उसे पर्वतका शिखर दिखायी देने लगा। वहाँ एक तरुणी हँसती हुई खड़ी थी। आँखें बाँधकर अँधेरेमें पर्वतपर चढ़ जानेवाली उस स्वप्निल आँखोंकी तरुणीकी वह मन-ही-मन बड़ी सराहना करने लगा।

इसी समय किसीके कराहनेकी आवाज़ उसके कानोंमें पड़ी। उस आवाज़के अनुरोधसे वह चलने लगा।

अब कोहरा बिलकुल साफ हो गया था। उस कराहनेवाले व्यक्तिके पास वह तरुण आया। उसने उसकी ओर ध्यानसे देखा। स्वप्निल आँखोंकी उसकी साथिन थी वह! वह एक गड्ढेमें पड़ी हुई थी। अपनी आँखोंपरकी पट्टी भी उससे छोड़ते नहीं बनती थी।

उस तरुणने उसकी आँखोंपरकी पट्टी हटायी। तब अपने मोच खाये हुए पैरोंकी ओर देखते हुए एक आह भरकर वह बोली, – 'रात-भर बड़ी वेदनाएँ सही हैं मैंने। परंतु अभीतक मैं पर्वतके नीचे ही हूँ!'

उन दोनोंने पर्वतके शिखरकी ओर देखा। गंभीर मुद्रावाली तरुणी वहाँ हाथ जोड़कर किसीका वंदन कर रही थी। उसके शरीरका वस्त्र फट गया था, रक्तसे बिलकुल लाल हो गया था। परंतु उसका उसे कोई होश ही न था। वह कहीं दूर – बहुत दूर देखती हुई हँस रही थी। ऐसा आभास हो रहा था जैसे उसकी आँखोंमें जगके सारे सुंदर स्वप्न आकर एकत्रित हो गये हैं।

● ● ●

६३
सज्जन पक्षी

जंगलके उस पक्षीको अपनी सज्जनतापर हमेशा बड़ा अभिमान होता था। उसके साथी पक्षी जब लगातार कलरव करने लगते, तो वह उससे कहता,–'अरे, चुप भी रहो भई? तुम्हारा यह कोलाहल सुनकर कोई पारधी इधर आ जायेगा न?' छोटे छोटे पक्षी अपने नन्हे नन्हे पंखोंको हिलाते हुए आकाशमें उड़ने लगते, तो वह बड़ी गंभीरतापूर्वक उनसे कहता, –'मूर्ख कहींके! अरे भई, मनुष्यको अपनी मर्यादा पहचाननी चाहिए। शक्तिके बाहर काम करनेसे क्या लाभ? आकाशका अंत कभी किसीको मिला है क्या?'

एक दिन एक प्रसन्न चेहरेका मनुष्य हाथमें एक सुंदर पिंजड़ा लिये उस जंगलमें आया। बाकीके सब पक्षी उसको देखकर डर गये और उससे दूर दूर जाने लगे। लेकिन उनकी भीरुताकी हँसी उड़ाता हुआ यह सज्जन पक्षी आगे बढ़ा। वह अपने साथियोंसे बोला, –'जिस ईश्वरने हमें जन्म दिया है, उसीने इस मनुष्यको भी पैदा किया है। फिर उससे डरनेका क्या कारण?' उस भावुक मनुष्यके हाथमें रखे पिंजड़ेके रंगीन सींकचोंके नज़दीक जाकर वह बोला, –'हम जिन टहनियोंपर नाचा करते हैं, उनमेंकी क्या एक भी इतनी सुंदर होती है?' पिंजड़ेके भीतर रखे अनारके लाल लाल दानोंकी ओर कटाक्ष फेंकता हुआ वह बोला, –'जंगलके

कच्चे फलोंको फोड़कर खाते समय हम उन्हें कितना दुख देते हैं। इससे तो इस तरह निकले हुए दाने खाना ही—'

उस सुंदर पिंजड़ेके छोटे दरवाज़ेसे शानसे भीतर जाते हुए पीछे मुड़कर अपने साथियोंकी ओर देखता हुआ वह बोला,—'और इस सुंदर प्रासादमें पारधीका तनिक भी भय नहीं! इस राजमहलके राजाको कोई भी त्रास न दे सके, इसलिये देखो इन सींकचोंको—कैसे पहरीकी तरह खड़े हुए रात-दिन पहरा कर रहे हैं!'

• • •

लेकिन उस चतुर पक्षीको शीघ्र ही पता चल गया कि यह राजमहल एक भीषण कारागार है। रोज़ सेवकोंकी तरह प्रतीत होनेवाले पिंजड़ेके सींकचे अब उसे यमदूतकी तरह लगने लगे। उसके ध्यानमें यह भी आ गया कि मुझे जो विविध फल खिलाये जा रहे हैं वह सिर्फ़ इसलिये कि मेरे मालिकको मेरे नर्म मांसके लिये अच्छा मूल्य प्राप्त हो। सीनेपर तने हुए मालोंकी तरह प्रतीत होनेवाले उन क्रूर सींकचोंमेंसे दिखाई देनेवाले आकाशके बित्ता-भर टुकड़ेकी ओर वह घंटों उत्कंठित नेत्रोंसे देखता रहने लगा। बीचहीमें होश भूलकर भुर्रसे उड़ जानेके लिये वह अपने पंखोंको फड़फड़ाता। परंतु सींकचोंकी ठोकर पड़ते ही उसके कोमल पंखोंकी फड़फड़ाहट क्षणार्धमें थम जाती। लेकिन उसके हृदयकी फडफडाहट अवश्य किसी भी तरह कम न होती थी।

अन्तमें उस कारागारसे बाहर निकलनेका एक उपाय उसे सूझ पड़ा।

उसने अन्न-पानी त्याग दिया। पिंजड़ेके भीतर रखी सेवकी फाकें सूख गयीं। अनारके लाल लाल दाने काले पड़ गये। यह देखनेके लिये कि मेरे प्रिय पक्षीको क्या हो गया है, भावुक मालिक हाथका काम छोड़कर दौडता हुआ आया।

• • •

पिंजड़ेके एक कोनेमें पडे हुए पक्षीकी उदास मुद्राकी ओर देखते ही उसका हृदय भर आया। बहुत देरतक वह अपने आँसू पोंछ रहा था। अंतमें जैसे तैसे अपने दुःखके आवेगको रोककर गद्गद स्वरमें उसने प्रश्न किया,—'मेरे प्यारे, क्या होता है तुझे?'

पिंजड़ा मौन ही रहा।

'क्या, मेरे राजाके पेटमें दर्द है?'—मालिकने कम्पित स्वरमें प्रश्न किया।

यह सोचकर कि यदि मैं कोई उत्तर न दूँगा तो यह बात मेरी सज्जनताको शोभा न देगी, उसने कहा, – 'अँ ऽ हूँ!'

'मेरे प्यारे, तू हमेशा यह सोचता रहता है कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है। इस छानबीनके विचारके कारण ही तेरे सिरमें पीड़ा हो रही होगी।'

'नहीं जी —!' – पक्षीने उत्तर दिया।

'तू अत्यंत सज्जन है। क्या, मेरे किसी नौकरने तेरा कोई अपमान किया है? उस हरामज़ादेका नाम बता। अभी उसकी चमडी न उधेड दी तो —'

पक्षीने हँसकर कहा, – 'किसीने मेरा अपमान नहीं किया।'

'फिर?'

पागलकी तरह उसकी ओर देखता हुआ पक्षी चिल्लाया, – 'दरवाजा खोलो, दरवाज़ा खोलो, पहले पिंजड़ेका दरवाज़ा खोलो। मैं जंगलमें वापस जाना चाहता हूँ। अपने जंगलमें – अपने साथियोंमें – अपनी मातृभूमिमें —'

'परंतु प्यारे, वहाँ पारधी हाथोंमें बाण लिये खडे हैं!'

'दरवाज़ा खोलो, दरवाज़ा खोलो —' – पक्षी चीखा।

'वहाँके कच्चे फल खायेगा तो मेरे राजा, तेरी चोंच दर्द करेगी न?'

पिंजड़ेके द्वारपर सिर पटकते हुआ पक्षीने करुण क्रन्दन किया, – 'दरवाज़ा खोलो, दरवाज़ा खोलो!'

दरवाज़ा खोलनेके लिये मालिकने अपना बायाँ हाथ आगे बढ़ाया। दाहिने हाथ-से वह अपनी आँखोंसे बह रहे आँसुओंको पोंछ रहा था।

• • •

अपने मालिककी आँखोंमें आँसू देखकर पक्षी क्षण-भरके लिये अपना दुख भूल गया। उसने मृदु स्वरमें मालिकसे पूछा,– 'क्या होता है तुम्हें?'

'तुझ जैसा सज्जन उसको न जान सकेगा, मेरे राजा!'

'फिर भी —'

पक्षीको सिर्फ़ एक बड़ीसी सिसकी सुनायी दी। उसका कलेजा पसीज गया। वह भावुक स्वरमें बोला,– 'मैं तुमपर नाराज़ होकर नहीं जा रहा हूँ। तुम मेरे घनिष्ठ मित्र हो। परंतु क्या करूँ? मुझे इस पिंजड़ेके भीतर अच्छा नहीं लगता। उसमें मेरा जैसे दम घुटा जा रहा है! इसलिये मैं – परंतु जंगलमें जानेके बाद भी मैं तुम्हें कभी नहीं भुलाऊँगा।'

'सच ? सच कहते हो बिलकुल ?'

मालिकके स्वरमें भरे हुए विलक्षण आनंदको देखकर पक्षीने गरदन हिलाकर हाँ कहा।

'तो – जानेसे पहले तेरी स्मृतिके रूपमें – मित्रकी हैसियतसे मैंने तेरी जो सेवाएँ की हैं, उसका मुझे कोई पारिश्रमिक नहीं चाहिए ! केवल तेरी याददाश्तके लिये – तेरा कोई चिन्ह – छोटासा पंख भी मिल जाये तो काफ़ी होगा मुझे – उस पंखकी ओर देखकर यह स्मरण करता हुआ कि मेरा प्रिय पक्षी कितना सज्जन था मैं अपने जीवनके शेष दिन बिता दूँगा !'

'एक छोड़कर दस पंख ले लो मेरे !'– पक्षी हर्षभरे स्वरमें कह गया।

मालिक मनसे हँसा। पक्षीको अपनी सज्जनतापर गर्व हुआ। मालिक पक्षीके दो-चार पंख निकालनेके लिये उसे गोदमें लेकर बैठा। पक्षीका मन दूर किसी जंगलके हरे वृक्षकी शाखाओंको देखने और वहाँ अपने साथियोंके साथ बैठकर कलरव करनेमें खो गया। उसकी सुध जाती रही !

यह देखते ही कि मालिक उठ गया है पक्षी होशमें आया। कई दिनोंके बाद मनमाना उड़नेके विचारसे उसका मन खिल उठा।

परंतु —

किसी भी तरह उससे उड़ते नहीं बनता था। उसने मुड़कर पीछे देखा। थोड़ी दूरपर ही उसके कटे हुए पंख अस्तव्यस्त पडे हुए थे -- हवामें उड़ रहे थे– और मालिक प्रसन्न मुखसे अपने नौकरको दूसरे पक्षीके लिये पिंजड़ेको साफ रखनेका हुक्म दे रहा था।

●●●

६४
प्रीति

उन दोनोंने एक दूसरेको पहली बार एक बगीचेमें देखा।

उसके गालोंकी ओर देखता हुआ वह मनमें बोला, – 'इस बागमें इतने सुंदर गुलाब खिलते हैं, यह मैंने आज ही देखा।'

उसकी आँखोंकी तरफ देखकर वह मन-ही-मन पुटपुटायी, – 'इस बगीचेके फव्वारेसे क्षणक्षणमें मनोहारी इन्द्रधनुष्य प्रकट होते हैं, यह मैं आज ही देख रही हूँ।'

• • •

दूसरे दिन उस बागके एक लताकुंजमें उन दोनोंकी भेट हुई।

उसे देखते ही वह बोला, – 'माफ करना मुझे। यह सोचकर कि यहाँ कोई न होगा मैं यहाँ आ गया था।'

वह बोली, – 'आप ही माफ कर दें। एकान्तमें बैठनेके उद्देश्यसे ही मैं यहाँ आयी थी।'

दोनों जल्दी जल्दी कुंजके बाहर जाने लगे। उस जल्दीमें उन्हें एक दूसरेका स्पर्श हो गया। जैसे बिजलीका धक्का लग गया हो, उस तरह वे दोनों एकदम रुक गये।

वह हँसता हुआ बोला, – ' इस कुंजमें सिर्फ़ एक ही मनुष्य है – तुम ! '

वह शरमाती हुई बोली,– ' आँ हाँ ! आप ही !

• • •

वह कुंज ही अब उन दोनोंकी दुनिया हो गयी।

कुंजमें वह उसके बार बार चुम्बन लेते हुए कहता, – ' यह अमृत स्वर्गमें भी न मिलेगा। '

वह उसके स्कंधपर गरदन रखकर आँखें बंद करती हुई कहती, – ' यह सुख नंदनवनमें भी नसीब न होगा। '

पर – उनकी ये कल्पनाएँ कल्पनाएँ ही रहीं।

क्षण-क्षणमें कोई न कोई कुंजके द्वारमें आकर झाँककर देखता – और उनकी प्रेम-समाधि भंग हो जाती।

उनका विश्वास हो गया कि प्रीतिकी पवित्रताको दुनिया बिलकुल नहीं समझती।

उन दोनोंने निश्चय किया कि ऐसी जगह चलें जहाँ दुनियाकी हवा भी प्रवेश न कर सकेगी। प्रेमानंदमें मग्न होनेके लिये वे एक ऐसी जगहकी खोजमें निकल पड़े।

• • •

नगरसे बहुत दूर एक पहाड़ था। वे दोनों वहाँकी एक गुफ़ामें गये।

उन्होंने एक प्रचण्ड शिलासे उस गुफ़ाका द्वार पूरी तरह बंद कर दिया।

वह उसके चुम्बन लेने लगा।

वह उसके स्कंधपर गरदन रखकर दुलारसे उसे सहलाने लगी।

दोनों ही हँसते हुए कह रहे थे, – ' बाहरकी दुनियाकी हवा भी यहाँ नहीं आ सकती। '

• • •

उसके होंठोंसे उसके होंठ अलग हो गये थे। उसे विचित्र ग्लानि आ गयी थी। भौंचक्का-सा होकर वह इधर-उधर देख रहा था।

वह भी मुरझाए हुए फूलकी तरह उदास दीख रही थी। उसके शरीरके आसपास पड़ी हुई उसकी बाहोंकी पकड़ ढीली पड़ गयी थी। डरी हुई दृष्टिसे वह आसपास देख रही थी। दोनोंको साँस लेना कठिन हो रहा था।

वह उसकी ओर क्रूर दृष्टिसे देखकर चिल्लाया,– 'राक्षसनी कहींकी ! क्यों आयी तू इस गुफ़ामें ? तू न होती तो यहाँकी सारी हवा मुझे ही मिलती। तू – तू मेरा गला दबा रही है।'

दाँत–होंठ चबाती हुई वह बोली, – 'शैतान कहींका ! क्यों आया तू इस गुफ़ामें ? तू न होता तो मुझपर इस तरह दम घुटकर मरनेका मौक़ा न आता। तू – तू मेरे प्राण ले रहा है !'

वह कर्कश आवाज़में चिल्लाया, – 'इस गुफ़ामें तू लायी है मुझे।'

उतनी ही कर्कश आवाज़में वह चिल्लायी, – 'तू – तू ही धोखा देकर मुझे यहाँ लाया। अब तू – तू ही पड़ा रह पीछे।'

शिला हटानेके लिये वह पूरी ताक़त समेटकर प्रयत्न करने लगी।

उससे पहले मैं बाहर जाऊँ, इस इरादेसे वह भी कोशिश करने लगा।

एक दूसरेको रोकते हुए दोनों ही वहाँ बेहोश होकर गिर पड़े।

• • •

दूसरे दिन सुबह एक जँगली आदमीने सहजभावसे उस शिलाको हटाकर उस गुफ़ामें प्रवेश किया। सामने दो लाशें पड़ी हुई देखकर वह चकित हो गया। मृत्युके अनेक विकराल रूप उसने देखे थे। परंतु प्रीतिके रूपसे मृत्यु जगमें प्रवेश करता है, यह वह आज ही प्रथम बार देख रहा था।

• • •

६५

सुख

गोपाल एक सीधा-सादा आदमी था। जैसे कि जंगलमें खिला हुआ फूल। अपने रंग और सुगंधका स्वयं उसे भी कोई पता न था। परंतु इस फूलको रह-रहकर लगता – यदि किसी जलाशयके किनारेमें खिला होता तो कम-से-कम अपना प्रतिबिम्ब ही मैं देख सकता। उस प्रतिबिम्बके दर्शनसे मेरा मन प्रफुल्लित हो जाता। परंतु इतना मामूली सुख भी मेरे भाग्यमें नहीं है!

वह जीवनके प्रति अनजाने उदास होने लगा, चिड़चिड़ा बन गया और एक दिन, एकके बाद एक ऐसी चार घटनाएँ घटीं जिनसे उसको बड़ा दुख हुआ।

खिन्न मनको कुछ शान्ति मिले, इसलिये वह एक कविताकी पुस्तक पढ़ने लगा। उसमेंकी एक कविता उसे बहुत पसंद आयी। उसका भावार्थ था —

> 'बागमें कविकी प्रेमिका बैठी हुई है। वह चोरी चोरी दबेपाँव उसके पीछे जाकर खड़ा हो जाता है और एकदम उसकी आँखें मूँद लेता है। वह चौंकती है। परंतु तुरंत ही 'हुश्श्' कहकर शरमाती है। उसके कपोलोंपर वर्षा-कालकी सायंकाल अवतीर्ण होती है —'

इस कविताको पढ़ते ही उसे लगा, कि मैं भी कुछ इसी तरह करूँ। वह चोरी चोरी दबेपाँव रसोईघरमें गया। उसकी औरत बैठी हुई प्याज काट रही

थी। उसकी आँखोंसे इतना पानी बह रहा था कि उसे क्षण-भर यह आभास हुआ कि वह किसी करुण-रस-प्रधान नाटककी नायिका ही है ! वह धीरेसे उसके पीछे जाकर खड़ा हो गया। उसने चटसे उसकी आँखें मूँद दीं।

झल्लाई हुई बिल्लीकी आवाज़में वह चिल्लायी, – 'यह क्या तमाशा मचाया है ? छूरीसे मेरा हाथ कट जायेगा न ?'

गोपालका बुरी तरह मनोभंग हो गया। शून्य मनसे वह अपने कमरेमें लौट आया। इसी समय उसे लगा कि बाहर कोई मेरी पूछताछ कर रहा है।

नज़दीकके घरसे किसी मनुष्यने उत्तर दिया, – 'गोपाल ? मैं नहीं जानता कौन है ? यदि तुम्हारा गोपाल इतना प्रसिद्ध व्यक्ति होता, तो यहाँ इन झोपड़ियोंमें रहनेको क्यों आता ?'

आया हुआ मनुष्य गोपालका बालमित्र था। बड़ी कठिनाईमें फँस गया था वह। गोपालकी खोज करता हुआ वह आया था।

बालमित्रने गोपालसे अपना संकट विस्तार-पूर्वक कह सुनाया। गोपालके मनमें तीव्र इच्छा हुई कि उसकी मदद करूँ। परंतु पैसे पानीकी तरह आसमानसे नहीं गिरते और न घासकी तरह धरतीसे ऊगते हैं। उसे यदि पैसे दूँ, तो पत्नीके जेवर ही बेचकर दे सकता हूँ ! पर – पर यह असंभव था। बालमित्रको खाली हाथ लौटाकर गोपालने अपने कमरेका दरवाज़ा बंद कर लिया। तकियेमें सिर छिपाकर वह सिसकने लगा। उसे लगा कि आँसू ही ग़रीबोंके हमेशाके साथी हैं।

परंतु दैवकी शायद यही इच्छा थी कि उसको रोनेका भी सुख न मिले।

कोई ज़ोर ज़ोरसे उसका दरवाज़ा खटखटाने लगा। माथेपर बल चढ़ाता हुआ गोपाल उठा। उसने दरवाज़ा खोला। अपनी शादीके लिये उसने जिससे कर्ज़ा लिया था, वह साहूकार दरवाज़ेमें खड़ा था।

यह देखकर कि वह अपनी रक़म माँगने आया है, गोपालको जैसे आग लग गयी। उसने ब्याजसहित उसकी पाई पाई कभीकी चुका दी थी। यह होते हुए भी —

गोपालको एकदम याद आयी – पत्नीको मायके भेजनेकी जल्दीमें मैं साहूकारसे कर्ज़अदाईकी रसीद लेने भूल गया था। मैंने अपना दस्तावेज़ भी उससे वापस न लिया —

वह असमंजसमें पड़ गया। परंतु तुरंत ही उसके मनमें आया— 'ईश्वर कोई सो तो नहीं गया है? हम दोनों मंदिरमें जायें— ईश्वरके सामने झूठ बोलनेकी साहूकारको हिम्मत नहीं पड़ सकती।'

परंतु उसे प्रत्यक्ष जो अनुभव हुआ वह अवश्य विपरीत था। गोपालने हाथ जोड़कर ईश्वरसे विनम्र प्रार्थना की,— 'भगवान, यह शोहदा मुझे धोखा दे रहा है! आप इसे कड़ा दण्ड दीजिये। मैं आपके नामसे मिसरी बाँटूँगा। पुराणोंमें हरएक सज्जनकी सहायताके लिये आप दौड़े हुए गये हैं। फिर आज ही —'

किन्तु प्रभुका पाषाणहृदय उसके इन शब्दोंसे द्रवीभूत न हुआ। साहूकारने उससे हँसते हुए प्रश्न किया,— 'तुम्हें कर्ज़ मंजूर है न?'

गोपालको ईश्वरपर बड़ा क्रोध आया। उसके मनमें आया कि फूलोंसे ढके इस पत्थरपर सिर पटककर अपने प्राण त्याग दूँ। परंतु इस विचारको कार्यरूपमें परिणीत करनेका उसे साहस न हुआ।

आँधीमें उड़नेवाला पंख गोल गोल घूमता हुआ बहुत दूर चला जावे, उसी तरह पागलकी मनःस्थितिमें भटकता-भटकता वह समुद्रके किनारे आया। सायंकाल हो गयी थी। सारे जगके तापसे त्रस्त होकर ही संतप्त सूर्य पानीमें कूद पड़ा था क्या, कौन जाने! वह फिर ऊपर न आया। गोपालको लगा कि दुनियामें सच्चे सुखका यही एक मात्र मार्ग है।

अँधेरा हो गया था फिर भी उस निर्जन मैदानसे उठनेकी उसकी इच्छा न होती थी। समुद्रका वेदघोष अविरत जारी था! तारिकाएँ अखंड रूपसे फुगड़ी[1] खेल रही थीं। सामनेके विशाल काले-नीले महलमें हँसते हुए प्रवेश करूँ और तुषारोंकी पुष्पमाला गलेमें पहनकर, भीतरके मंचपर गहरी नींद सो जाऊँ, यह कल्पना गोपालके मनके कोने कोनेमें छा गयी।

वह उठा। इसी समय चार चित्रविचित्र आकृतियाँ जल्दी जल्दी उसके आस-पास आकर खड़ी हो गयीं।

पहलीने तुरंत ही बैठकर बालूमें अपनी अँगुलियोंसे कुछ बनाना शुरू कर दिया। गोपालने डरते-डरते उससे पूछा,— 'यह क्या है?'

उसने कहा,— 'अपना नाम अमर कर रहा हूँ मैं! हज़ारों वर्ष हो गये। हर

१ बालिकाओंका एक खेल।

रोज़ रातको मैं यहाँ आकर अपना नाम लिखता रहता हूँ और हर रोज़ इस समुद्रकी मूर्ख लड़कियाँ आकर उसे मिटा देती हैं। परंतु एक दिन ऐसा आयेगा —'

आगे एक अक्षर भी न बोलकर वह आकृति अपना नाम लिखनेमें निमग्न हो गयी।

इसी समय दूसरी आकृति बालूमें लोटती हुई सिसक-सिसककर रोने लगी।

गोपालसे न रहा गया। वह उसके पास गया और बोला,—'क्या होता है तुम्हें?'

अपनी आँखें पोंछती हुई वह आकृति बोली,—'इस समय यहाँ मिलनेका मेरे पीतमने मुझे वचन दिया है। हज़ारों वर्ष बीत गये। हर रोज़ इस समय मैं यहाँ आती हूँ, और उसकी बाट जोहती रहती हूँ। पर—पर एक दिन ऐसा आयेगा कि —'

इसी समय तीसरी आकृति समुद्रकी ओर दौड़ती जा रही थी। गोपालको उसके दौड़नेका मतलब समझमें न आया। वह भी उसके पीछे पीछे दौड़ता गया। उसने उसका हाथ पकड़ा ही था कि वह बोली,—

'पगले, मैं प्राण देने नहीं जा रहा हूँ। इस समुद्रके भीतर बहुतसी संपत्ति जमा करके रखी है। उसे रातको कोई चुरा न ले, इसलिये पहरेके लिये मैं रोज़ यहाँ आता हूँ। हज़ारों साल हो गये इस बातको। लहरोंपर कोई छाया हिली-सी मुझे दिखायी दी। यह सोचकर कि वह चोर होगा, मैं दौड़ने लगा। पर, सच कहूँ तुमसे? इस दौड़-धूपसे मैं अब बिलकुल ऊब उठा हूँ। पर एक दिन ऐसा आयेगा कि इस सारी संपत्तिको मैं घर ले जा सकूँगा! उसके बाद फिर कभी मैं यहाँ —'

इसी समय चौथी आकृति फुर्तीसे आगे बढ़ी और गोपालका हाथ पकड़कर बोली,—'उस पगलेकी क्या सुन रहे हो? समुद्रके भीतर क्या कभी संपत्ति होती है? वहाँ प्रत्यक्ष ईश्वर निवास करते हैं। शेषशैयापर विष्णु भगवान सोये हुए हैं। कभी न कभी तो वे जागेंगे और फिर इस दासको अचानक दर्शन देंगे, इसी लिये मैं यहाँ प्रति दिन रातको आता हूँ। आयेगा; ऐसा एक दिन आयेगा कि —'

वे चारों आकृतियाँ उसके आसपास इकट्ठी हो गयीं और बोलीं,—'आज हम पाँच हो गये। बड़ी खुशीकी बात है यह!'

उनकी ओर मुड़कर भी न देख, गोपाल समुद्रकी ओर पीठ कर भागने लगा। उसे निरंतर यह आभास हो रहा था कि मैं एक हरिणका बच्चा हूँ और किसी घने जंगलमें सैंकड़ों शिकारी कुत्ते मेरा पीछा कर रहे हैं! जब शहरका पहला दीया दिखायी दिया, तब वह आराम करनेके लिये रुका।

समुद्रमें डूबनेवाले सूरजकी अपेक्षा वह दीया सहस्र गुना तेजस्वी है, ऐसा उसे लगा। बचपनमें माँकी गोदमें बैठकर वह दीपज्योतिको प्रणाम किया करता था। उसी तरह उसने अब भी किया।

●●●

६६
शान्तिसभा

दूर – बहुत दूर सात समुद्रोंके उस पार युद्ध आरंभ हो गया था। उस युद्धका निषेध करनेके लिये राजधानीके देवालयमें एक प्रचण्ड सभा बुलायी गयी। सभामें सब प्रकारके लोग बड़ी प्रतिस्पर्धासे उपस्थित हुए। सबकी मुद्राओंपर यह भाव झलक रहा था कि हम एक बड़ा उदात्त काम कर रहे हैं। अनेकके हाथोंमें ऊँचे बाँसोंपर लगी हुई तख्तियाँ चमक रही थीं। हर तख़्तीपर सुंदर अक्षरोंमें लिखा हुआ था —

‘शान्तिदेवीकी जय हो!’

उस सभामें जिस तरह बाल-बच्चोंवाली बहुएँ आयी थीं, उसी तरह घरमें उनको रातदिन सतानेवाली सासें भी पधारी थीं। लक्ष्मीपुत्र और सरस्वती-कंठमणि जंघासे जंघा भिड़ाकर उस सभामंडपमें बैठे हुए थे। अपने स्त्री-बच्चोंके परे झाँककर भी न देखनेवाले संसारी, और जंगल और पहाड़ोंमें रहकर केवल ईश्वका चिंतन करनेवाले सन्यासी स्वरोंमें स्वर मिलाकर वहाँ ‘शान्तिदेवीकी जय हो!’ के नारे लगा रहे थे।

सभाका कार्य शुरू हुआ। भाषणोंकी वृर्षा हुई। उसमें गिरे हुए ओलोंको छोटे-बड़े श्रोताओंने बड़ी अतृप्ततासे बीन बीनकर खाया। अंतमें एक सन्यासी भाषण

देनेके लिये खड़ा हुआ। वह बड़े तावसे प्रतिपादन करने लगा, – 'हम सब एक ईश्वरके बच्चे हैं। कहीं भी युद्ध हो, तो उसका अर्थ यह होता है कि एक भाई अपने दूसरे भाईकी हत्या करता है।'

उसका भाषण पूरा भी नहीं हुआ था तभी दूसरा सन्यासी भीड़को चीरता हुआ तीरकी तरह आगे बढ़ा और चिल्लाकर बोला, – 'भाईयो, इसपर विश्वास न रखो। यह बदमाश है। ईश्वरके प्रति आप सब लोगोंकी अंधश्रद्धा बढ़े इसी लिये यह सारी उछलकूद कर रहा है। इसे पहले मंचसे नीचे खींचो – आगे एक शब्द भी न बोलने दो!'

पहला सन्यासी लाल लाल आँखें निकालकर चिल्लाया, – 'यह नास्तिक है। चार्वाकका अनुयायी है। यह जो बक रहा है, सब झूठ है। इसे पहले नीचे खींचो। मैं ईश्वरके विषयमें तुमसे कहता हूँ। जगमें ईश्वर है इसी लिये —'

दूसरा सन्यासी पागलकी तरह हाथ नचाता हुआ गर्जा, – 'मैं भी ईश्वरकी सौगंद खाकर कहता हूँ, जगमें ईश्वर नहीं है। तुम जिसे पूजते हो, वह पत्थर है।'

'ईश्वर है' और 'ईश्वर नहीं है', इन उद्गारोंसे वे सन्यासी पहले लड़ते रहे। शीघ्र ही जिव्हास्त्र बंद करके उन्होंने अपने हाथ-पाँवों, दाँतों और नाखूनोंका उपयोग करना शुरू कर दिया!

खूनाखून हालतमें उनको एक दूसरेसे अलग किया गया। अंतमें मंचसे नीचे उतरते उतरते वे दोनों एक स्वरमें चिल्लाये —

'शान्तिदेवीकी जय हो!'

●●●

६७

समय

कोई जल्दी जल्दी बागमें आया। खिले हुए पुष्प टोकनीमें जाकर गिरने लगे। टोकनी भर गयी। कोई बागसे जाने लगा। जाते जाते वे फूल लताओं और वृक्षोंपर लगी हुई कलियोंकी ओर तुच्छतासे देखते हुए बोले, – 'देखी हमारी शान? नहीं तो तुम! तुम्हारी तरफ़ किसीने फूटी आँखसे भी न देखा!'

देवालयमें प्रवेश करते ही मूर्तिके ऊपरसे निकालकर एक तरफ़ रखे हुए फूलोंकी और इन फूलोंकी दृष्टिभेट हुई।

उस निर्माल्यकी ओर तिरस्कारसे देखते हुए वे खिले हुए फूल हँसे और बोले, – 'अरे, चोरो! हमारा स्वाँग लेकर देवालयमें घुसे थे, क्यों? एक-सी सूरतका स्वाँग ले लेना सरल होता है! परंतु – तुम्हें न रूप, न रंग, न गंध! इस देवालयमें क्या काम है तुम्हारा? चलो, भागो यहाँसे!'

दूसरा दिन उदय हुआ।

देवालयके द्वारमें ही भीतर प्रवेश करनेवाले फूलोंकी और बाहर जानेवाले निर्माल्यकी भेट हो गयी। निर्माल्यकी मुद्रा मुरझा गयी थी। भीतर आनेवाले फूलोंकी दृष्टिसे बचकर बाहर आनेकी इच्छा थी उसकी! परंतु उन फूलोंने निर्माल्यको रोका। उन्मत्त दृष्टिसे उनकी ओर देखते हुए वे खिले हुए पुष्प

उपहाससे बोले, – 'क्या, हमें भूल गये ? कल ही तो हमसे बिदा लेकर आये थे तुम ! तुम्हारा वैभव देखनेको आये हैं हम जानबूझकरके यहाँ ! '

निर्माल्यने कोई उत्तर न दिया। गरदन लटकाये वह चुपचाप बाहर चला गया।

टोकनीके फूल आगे बढ़ गये। मूर्तिके पास आये। मूर्तिकी मुद्रापर स्मितकी सूक्ष्म छटा झलक गयी।

● ● ●

६८

वासना

रजनी गगनकी वीणापर शांतिगीत गा रही थी। उस गीतके सुर सुरमेंसे तारिकाओंका निर्माण हो रहा था।

उद्यानमें एक प्रणयी युगल बैठा था। धीरे धीरे प्रेमकी बातें हो रही थीं।

रमणी वल्लभसे एकदम दूर हो गयी और आकाशकी ओर देखती हुई बोली,- ' तुम मुझसे सच्चा प्रेम नहीं करते, प्यारे! आज खिलनेवाले और कल मुरझानेवाले भिन्न भिन्न प्रकारके फूल तुम मेरे केशोंमें लगाते हो। इन फूलोंसे तो मैं अब बिलकुल ऊब उठी हूँ। ऊपरके उन खिले हुए फूलोंको देखो। क्या, वे कभी भी मुरझाते हैं? उन फूलोंको लाकर मुझे दोगे तभी — '

वह रूठकर उसकी ओर पीठ फेरकर बैठ गयी!

उसी समय एक गंधर्व प्रणयक्रीड़ा करता हुआ विमानसे चला जा रहा था।

उससे एकदम दूर होकर और पृथ्वीकी ओर टकटकी लगाकर देखते हुए उसकी पत्नी बोली, – ' तुम मुझसे सच्चा प्रेम ही नहीं करते, प्यारे! नंदनवनके कभी भी न मुरझानेवाले फूल तुमने प्रथम मिलनके समय मेरे केशोंमें गूँथे थे। वे अभीतक ज्योंके त्यों बने हैं। ज़रा नीचे देखो। वह उद्यान – उसमेंका वह युगल हर रातको मैं देखती हूँ। ये दोनों यहाँ एकान्तमें मिलते हैं। मैं ध्यानसे

देखती रहती हूँ। हर बार इस रमणीके केशकलापमें भिन्न भिन्न रंगों और आकारोंके फूल चमकते रहते हैं!'

और वह रूठकर उसकी ओर पीठ फेरकर बैठ गयी!

●●●

६९

निराशा

पागल मनुष्य किस तरह बर्ताव करते हैं, यह मुझे मालूम न था। इसलिये मैं एक बार एक पागलखाना देखने गया।

वहाँके सारे पागल एक बहुत ऊँची नसेनीके आसपास इकट्ठा हो गये थे।

उनमेंका एक जल्दी जल्दी नसेनीपर चढ़ा।

मैंने उससे प्रश्न किया, – 'मित्र, कहाँ जा रहे हो तुम ?'

उसने उत्तर दिया, – 'अरे पागल, अभीतक तूने नहीं जाना? मैं इन्द्रके ऐरावत-पर सवार होने जा रहा हूँ, समझा ?'

उसे नीचे खींचकर दूसरा जल्दी जल्दी नसेनीपर चढ़ने लगा।

उससे मैंने पूछा, – 'कहाँ जा रहे हो, भाईसाहब ?'

'तू पूरा पागल है रे !' – उसने शानसे उत्तर दिया, 'मैं रंभाका चुम्बन लेने जा रहा हूँ।

उसे क्रूरतासे दूर ढकेलता हुआ तीसरा उस नसेनीपर चढ़ने लगा।

मैंने कुतूहलसे फिर पूछा, – 'दोस्त, कहाँ चले तुम ?'

आँखे विस्फारित कर वह बोला, – 'यह भी नहीं मालूम तुम्हें? पागल कहींके!

मैं कल्पवृक्षकी शाखाएँ लानेके लिये रवाना हो रहा हूँ। मैं अपने बागके हर पेड़पर उसकी कलमें बाँधूँगा!'

सच्चे पागल मुझे देखनेको न मिले इसलिये निराश होकर मैं वहाँसे चल आया।

●●●

७०

छाया

छाया नाराज़ हो गयी और शरीरसे बोली, – ‘ तुम कितने दुष्ट हो, जी? सुबह हो या शाम हो, मैं लगातार तुम्हारे साथ रहती हूँ। किसी कुत्तेकी तरह मैं तुम्हारे पैरोंके आसपास हमेशा चक्कर काटती रहती हूँ। कभी आगे, कभी पीछे। रातको भी मेरी सेवामें कभी रुकावट नहीं पड़ती। तुम्हें झूठ लगता हो, तो ऐन आधी रातको दीया जलाकर देख लो।

‘ मैं तुमसे इतना प्यार करती हूँ। परंतु तुम ज़रूर, हरएकसे यह कहते फिरते हो कि छाया मुझपर अवलंबित है। क्या, तुम्हें यह शोभा देता है? अब मैं यह कुछ न सुनूँगी। यदि तुम्हें यह स्वीकार हो कि मेरा और तुम्हारा नाता बराबरीका है, तभी मैं तुम्हारे साथ रहूँगी। नहीं तो मेरा रास्ता मुझे खुला हुआ है —!’

शरीरने उसे अपने पास खींच लिया, दुलारसे उसे सहलाया और वह उससे बोला, – ‘ पगली हो तुम, छाया! इस जगको कोई मैंने तो निर्मित किया नहीं है। जिसने मुझे जन्म दिया है, उसीने तुम्हें भी पैदा किया है। उसके नियमोंका उल्लंघन इस जगमें कोई भी नहीं कर सकता।

‘ याद है तुम्हें? एक बार तुम और मैं – दोनों समुद्र देखनेके लिये गये थे। समुद्रकी लहरें नाचते नाचते आगे बढ़ रही थीं। तुम्हें और मुझे लगा कि वे

इसी तरह आगे बढ़ती आयेंगी और हमें डुबो देंगी। हम दोनों भागते हुए दूर चले गये। दूरसे धड़कते हुए हृदयसे देखने लगे।

'परंतु उन लहरोंने हमारा पीछा न किया था। वे ज़रा आगे आगे आयीं और फिर चुपचाप पीछे जाने लगीं। उस समय मेरे मनमें कौनसी कल्पना आयी थी, बताऊँ? मुझे लगा, सागर एक सुन्दर सितार है! इस जगको निर्माण करनेवाली शक्ति इस सितारको निरंतर बजा रही है। नाचती, झूमती और उमड़ती हुई आगे बढ़नेवाली लहरें उस सितारकी एक लयबद्ध गत है। सारे जगको ऊँचे ऊँचे मधुर स्वरोंसे भर देनेवाली! नाचती, झूमती और उमड़ती हुई पीछे पीछे जानेवाली लहरें उस सितारकी दूसरी लयबद्ध गत है। सारे जगको मंद मंद मधुर स्वरोंसे भर देनेवाली!'

'मुझें तुम्हारे इस काव्यकी ज़रूरत नहीं! मैं अपना अधिकार चाहती हूँ! बोलो, तुम्हारा और मेरा नाता बराबरीका है – यह तुम्हें स्वीकार है या नहीं?'

'नहीं।'

'सबूत?'

'सत्यको प्रमाणकी ज़रूरत नहीं होती।'

छाया क्रोधित हो गयी। 'मैं स्वतंत्र होऊँगी, मैं आज़ाद होऊँगी, मैं स्वतंत्र होऊँगी!'– वह क्रोधसे पुटपुटायी।

शरीरने कहा,– 'कल दो बार मैं तुम्हारी परीक्षा लूँगा।

'मध्यान्हको – सूरज बिलकुल सिरपर आ जायेगा तब – और आधी रातको सारा जग नींदकी गोदमें सोया हुआ होगा तब। हर बार मैं तुम्हें तीन तीन बार पुकारूँगा। उन पुकारोंका यदि तुम उत्तर दे दोगी, तो मैं यह स्वीकार कर लूँगा कि तुम स्वतंत्र हो!'

दोपहर आयी। धरणी तपने लगी। सूरज बिलकुल सिरपर आ गया।

धूपमें खड़े होकर शरीरने पुकारा,– 'छाया, छाया, छाया —'

किसीने भी उत्तर न दिया।

आधी रात हुई। सारा जग डरे हुए बालककी तरह मुँहपर अँधेरेकी चद्दर ओढ़कर चुपचाप सो गया था।

दीया न जलाकर शरीरने पुकारा, – 'छाया, छाया, ओ छायारानी! —'

कहींसे कोई जवाब न मिला।

विजयी शरीरने निद्राकी आराधना शुरू की। परंतु किसी भी तरह उसकी कृपा-दृष्टि उसकी ओर न मुड़ती थी! उसे लगा, आनंदसे उन्मत्त हो जानेके कारण कदाचित आज मुझे नींद न आती होगी। करवटें बदलता हुआ तड़पता रहा।

एकदम उसे एक आवाज़ सुनायी दी। बहुत गहराईसे – पाताललोकसे कोई बोल रहा था। उस मधुर पर गंभीर स्वरके स्पर्शसे शरीर पुलकित हो गया।

वह स्वर बोला, – 'तू भी छाया है!'

क्रोध और भयसे शरीर थरथराने लगा। वह ज़ोरसे चिल्लाया, – 'नहीं, नहीं, नहीं!'

उस स्वरका मंद स्मित उसके कानोंमें पड़ा।

शरीर चीख उठा, – 'मैं छाया हूँ? किसकी? किसकी छाया, हूँ?'

'मेरी।' – वह स्वर हँसते हुए बोला, 'उपभोगके प्रत्येक क्षण तुझे लगता है, मैं सुखी हूँ! परंतु दूसरे ही क्षण तेरी अतृप्ति जाग्रत हो जाती है। तू यदि स्वतंत्र होता, तो तुझे यह आभास न होता। यह मोहका अनुभव हुआ। मृत्युके क्षण तो तू —'

शरीरसे वे विचित्र भयंकर बोल आगे नहीं सुने जाते थे। काँपता और छटपटाता हुआ वह उठा। उसने दीया जलाया। अब उसे थोड़ी हिम्मत आयी। वह हँसने लगा।

उसने पीछे मुड़कर देखा। दीवालपर छाया हँस रही थी।

वह विजयी स्वरमें बोली, – 'शर्त मैंने जीत ली। मैं स्वतंत्र हूँ। तुम्हारी बराबरीकी हूँ!'

शरीरने चुपचाप गरदन हिला दी।

●●●

७१

प्रोफ़ेसर ऐन्ड्रोक्लीज़

प्रोफ़ेसर ऐन्ड्रोक्लीज़ अब पचासके पार निकल गये थे। लेकिन सरकसमें सिंह और शेरोंके काम अभीतक वे ही करवाया करते थे। प्रोफ़ेसर साहबकी बड़ी इच्छा थी कि मेरे बाद मेरा पुत्र इस व्यवसायको आगे चलावे, शेरों और सिंहोंको अपने सामने घुटने टेक देनेके लिये बाध्य कर देनेमें जो उन्माद है, उसका वह उपभोग लेवे। परंतु इस इच्छाके सफल होनेके कोई भी चिन्ह दिखायी न देते थे। जिन उपन्यासोंमें झिरझिरी साड़ियाँ पहनी हुई तरुणियाँ नायिकाओंके रूपमें शानसे अकड़कर चलती हैं और नायकोंको चोरी चोरीसे चुम्बन देती हैं, ऐसे उपन्यासोंके परेकी दुनिया प्रोफ़ेसर साहबके चिरंजीवको अज्ञात थी!

पुत्रके बारेमें इस तरह हुए आशाभंगके कारण प्रोफ़ेसर साहब कभी कभी उदास हो जाते। अंतमें, मनकी इस खिन्नताको दूर करनेके लिये उन्होंने किसी नये प्रयोगमें ध्यान लगा देनेका निश्चय किया। बचपनमें पुराण पढ़नेवाले किसी पंडितजीके मुँहसे उन्होंने विश्वामित्रके द्वारा नवीन सृष्टिके सृजनकी कथा सुनी थी। उन्होंने अपने मनमें सरकसके विश्वामित्र बननेका निश्चय किया।

आजतक उनके सरकसमें शेर और बकरी एकसाथ खाते-पीते थे। प्रोफ़ेसर साहबके दिलमें यह बात जम गयी कि यह खेल अब बहुत पुराना हो गया है।

उन्होंने इसी प्रयोगको सिंह और खरगोशके साथ सफल कर देनेपर कमर कसी। वह सिंह उन्हें आफ्रिकाके जंगलमें मिला था। उसके पैरका काँटा निकालनेके कारण अथवा उसका कोई दूसरा काम कर देनेके कारण वह उनका दोस्त हो गया था।

प्रयोग आरंभ हो गया। परंतु कुछ भी हो, सिंह आखिर पशु ही था। प्रोफ़ेसर साहबके नये ध्येयवादकी वह कल्पना न कर सकता था! सामने जितने भी खरगोश आते, उन सबको वह खत्म कर देने लगा।

कुछ दिन बीते। फिर चाहे इसलिये हो कि उसे एक ही पकवानको खाते अरुचि हो गयी थी, अथवा सरकसमें आये हुए किसी नेताके अहिंसापर दिये गये भाषणको सुनकर, उसकी आँखें खुल जानेके कारण हो, या इकन्नीका टिकट लेकर सरकसके पशुओंको देखने आनेवाले किसी लड़केके द्वारा हितोपदेशकी 'सिंह और खरगोश'वाली सहजभावसे कही गयी कथाको सुनकर उसका मर्म हृदयपर अंकित हो जानेके कारण हो, किंवा अन्य किसी खानगी कारणसे हो, प्रोफ़ेसर महाशयकी ओर प्रेमसे देखते हुए उसने खरगोशको सहलाना शुरू कर दिया।

प्रोफ़ेसरके आनंदकी सीमा न रही। उस दिन तारपर काम करनेवाली सरकस सुंदरीसे उन्होंने सिंहपर डिठौना लगवा दिया।

अब वह भाग्यशाली खरगोश सिंहसे गुप्त बातें करने लगा। उसके शरीरपर खेलने लगा। यह मानकर कि जैसे वह नर्म नर्म घास ही है, उसकी अयालको कुतरने लगा।

बातकी बातमें यह चमत्कार सबकी चर्चाका विषय बन गया। प्रोफ़ेसर साहबके सरकसकी दिशामें लोगोंका ताँता बंधने लगा। रातको सरकसके तंबूकी ओर देखनेसे दर्शकोंको यही लगता जैसे वहाँ किसी जाग्रत देवताकी जत्रा भरी हो अथवा किसी लोकप्रिय राजनैतिक दलकी सभा हो रही हो।

अब प्रोफ़ेसर साहबकी उदासी एकदम भाग गयी। उनका सारा अहंकार जाग्रत हो गया। ज़िंदा रहूँ, खूब खूब जीऊँ, इससे भी बड़े बड़े चमत्कार करके दिखाऊँ—यह सारी दुनिया सरकसकी तरह है, उसमें क्रांति कर देनी चाहिए—इस तरहके विचारोंने उन्हें बेचैन कर डाला।

एक दिन एक धार्मिक नेता उनका खेल देखने पधारे। सिंह और खरगोशकी

यह घनिष्ठता देखकर वे प्रसन्न हो गये। बधाईका भाषण देते समय वे प्रोफ़ेसर साहबको लक्ष्यकर बोले,– 'महाशयजी, मैं स्वीकार करता हूँ कि आपका करतब बहुत महान् है। परंतु मुझे दुख होता है कि यह प्रतिमा यहाँ सरकसके तंबूके भीतर ही बंद पड़ी हुई है! बाहरकी दुनियामें क्या क्या अनर्थ हो रहे हैं, नीतिकी पद पदपर कैसी दुर्दशा हो रही है, सिनेमा देखनेके बहाने थिएटरमें जाकर, वहाँके अँधेरेमें तरुण और तरुणियाँ क्या क्या कुकर्म कर रहे हैं – इसकी आपको कोई कल्पना नहीं। यदि सिर्फ़ सरकसके तंबूके भीतर खरगोश और सिंह प्रेमसे रहने लगे, तो क्या इतनेसे दुनिया थोड़े ही सुधर जानेवाली है? इस विशाल विश्वके तंबूके भीतर स्त्री और पुरुषोंको एक दूसरेकी ओर पवित्र दृष्टिसे देखना चाहिए। तरुण पुरुषको चाहिए कि तरुण स्त्रीको वह अपनी माता माने। तरुण स्त्रीको चाहिए कि वह तरुण पुरुषको अपना पिता माने – पिता ही नहीं, बल्कि पितामह माने —'

तालियोंकी प्रचण्ड कड़कड़ाहटमें नेता महाशयके आगेके शब्द किसीको भी सुनाई न पड़े, परंतु इस सुने हुए और न सुने हुए भाषणका प्रोफ़ेसर ऐन्ड्रोक्लीज़-पर विलक्षण परिणाम हुआ। प्रोफ़ेसर साहबने सरकसके एक दूसरे व्यवसायीको अपनी सरकस मय उस सिंह और खरगोशके भी बेच डाली।

• • •

बहुत सोच-विचार करनेके बाद दुनियाको नीतिमान बनानेके लिये प्रोफ़ेसर साहबने एक आश्रम खोला। इस आश्रममें सिर्फ़ तरुणों और तरुणियोंको ही प्रवेश मिल सकता था। यह सुभाषित ध्यानमें रखकर कि चतुरोंको कोई भी सुधार पहले अपने घरसे ही आरंभ करना चाहिए, उन्होंने अपने चिरंजीवको आश्रममें आकर रहनेकी आज्ञा की। पिताजीकी इच्छाको सम्मानित करनेके लिये, खास-कर अपने मनमें यह सोचकर कि सरकसके द्वारा प्राप्त पिताजीकी संपत्तिके लिये मुझे वैराग्यका यह नाटक खेलना चाहिए, चिरंजीव आश्रममें आकर भरती हो गये। वहाँकी तरुणियोंके झुंडको देखकर उन्हें अपने आजतकके अज्ञानपर बड़ी दया आयी। उनका विश्वास हो गया कि दुनियाके सारे उपन्यासकार अत्यंत अरसिक लोग हैं। विशेषकर एक अठारह वर्षकी तरुणीको देखकर —

कहते हैं वह किसी वेश्याकी लड़की थी। उसकी ओर देखकर चिरंजीवको

लगा – जीवन भर इसीकी ओर देखता रहूँ। दूसरा कोई उद्योग न करूँ; यहाँतक कि उपन्यास भी न पढ़ूँ!

पिताजीके द्वारा समझाकर बताये गये आश्रमके नियमोंको सुनते ही चिरंजीवने उस लड़कीकी ओर पीठ फेर दी। लेकिन उसे फेरते समय वे रह-रहकर अपने मन-ही-मन कह रहे थे – 'ईश्वर जैसा बेवकूफ़ दुनियामें कोई न होगा। मनुष्यको पीठपर आँखें देना छोड़कर —'

प्रोफ़ेसरने सरकसका अनुशासन आश्रममें शुरू कर दिया। इसके कारण वह सुचारु रूपसे चलने लगा। उसकी ख्याति सर्वत्र फैल गयी। उनके अहंकार-वृक्षमें पहले पत्ते और फूल आये थे। अब उसपर सुंदर फल लटकने लगे।

एक दिन एक बड़े राजनैतिक नेता आश्रम देखने आये। वहाँके तरुणों और तरुणियोंका संयम देखकर वे दंग रह गये। आश्रमवासियोंके बीच भाषण करते समय वे बोले, – 'भाईयो और बहनो, आपके आचार्यजीका कर्तृत्व अत्यंत महान् है। हमारी बाहरकी दुनियामें यदि नज़दीकसे ताँगा चला जाय और उसमें आँचल-की फरफराहटका थोड़ासा भी आभास हो, फिर भी हम सब पुरुष पीछे मुड़-मुड़कर उस ताँगेकी तरफ़ देखते रहते हैं। परंतु यहाँ – यहाँपर मैं देखता हूँ कि सुंदर तरुणीका धक्का लग जानेपर भी कोई रोमांचित तक नहीं होता। निसर्गपर आप लोगोंके गुरुजीने जो विजय प्राप्त की है, वह निःसंदेह बहुत बड़ी है। सरकसके सिंहको खरगोशसे प्रेम करनेके लिये सिखानेकी अपेक्षा यह अधिक कठिन काम है। परंतु आपके आचार्यका कर्तृत्व इस आश्रमकी चहारदीवारीके भीतर ही बंद रहे यह अत्यंत दुःखकी बात है। बाहर बड़े काम उनकी राह देख रहे हैं। एक गाँव-में दो दल हो गये हैं। एक दल दूसरेका जानी दुश्मन बन गया है। वहाँके मनुष्य पशुकी तरह बर्ताव कर रहे हैं। उन जानवरोंमें इन्सानियत पैदा कर देनेमें हम नेता लोग बिलकुल असमर्थ हैं। यह काम हमारे बूतेके बाहर है। इसलिये मैं आचार्यजीसे यह विनम्र निवेदन करूँगा कि वे —'

• • •

आश्रमका प्रबंध अपने लड़केके ज़िम्मे लगाकर प्रोफ़ेसर साहब उस गाँवमें गये। वहाँके दोनों दलोंके मुखियोंसे वे मिले। उन्हें शीघ्र ही विश्वास हो गया कि सरकसका कोड़ा और आश्रमके धर्मग्रंथ – ये दोनों साधन यहाँ बेकार हैं।

लेकिन पराभवको पल्लेमें बाँधकर वापस लौट जानेके लिये उनका अहंकार किसी भी तरह तैयार न होता था।

सकरसमें जो सम्पत्ति उन्होंने कमायी थी, उस सबको वे यहाँ ले आये। गाँवमें गुप्त दान शुरू हो गये। बातकी बातमें वहाँका ज्वालामुखी शान्त होने लगा। पहले एक दूसरेके सिरमें पत्थर मारनेवाले ग्रामवासी अब एक दूसरेके गलेमें पुष्पहार पहनाने लगे!

उस अकल्पित शान्तिस्थापनाकी अद्भुत वार्ता चारों ओर फैल गयी। प्रोफ़ेसरके यशके नगारे सब ओर निनादित होने लगे। एक समाचारपत्रने लिखा, – 'पहले राक्षसोंसे युद्ध करते समय स्वर्गके देव लोग पृथ्वीके राजाओंको बुलाया करते थे। परंतु अब यदि देव और दैत्योंकी लड़ाई फिरसे शुरू हो जाये, तो इंद्र प्रोफ़ेसर ऐन्ड्रोक्लीज़को ही निमंत्रित करेगा, इसमें हमें तिलमात्र भी शंका नहीं।'

उस समाचार-पत्रके कटिंगको सुरक्षित रखनेके लिये प्रोफ़ेसर साहबने जब अपनी तिज़ोरी खोली, तब उनके ध्यानमें आया कि अपनी सारी पूंजी समाप्तिपर आ गयी है।

गाँवके गुप्त दान बंद हो गये।

दान बंद होते ही दंगे पहले जैसे फिर शुरू हो गये। उन लड़नेवाले लोगोंको उपदेश देनेके लिये प्रोफ़ेसर साहब आगे बढ़े। उन्हें देखते ही दोनों दलके लोग क्षणभर अपनी आपसी शत्रुता भूल गये और उन्होंने, 'बदमाश! शोहदा कहींका!' आदि अपशब्दोंके साथ कुछ डंडों और पत्थरोंको जोड़कर उनका स्वागत किया।

निराश होकर प्रोफ़ेसर साहब अपने आश्रमकी ओर लौटे! परंतु अब आश्रम अपने स्थानपर था कहाँ! पड़ोसके गाँवके लोगोंसे उन्हें पता चला कि वहाँकी सारी चीज़ोंको बेच-बाचकर वेश्याकी लड़कीके साथ उनके चिरंजीव कहीं लापता हो गये हैं।

पागलकी तरह वे इधर उधर भटकने लगे! घूमते-घामते एक दिन आधी रातको वे किसी शहरके बाहर एक तंबूके पास पहुँचे। भीतर सरकसका खेल हो रहा होगा। एकदम उनके मनमें आया – 'सीधा भीतर चला जाऊँ और सिंहके पिंजड़ेमें घुसकर अपने इस पराभूत जीवनका अंत कर डालूँ।'

वे पागलकी तरह दौड़ पड़े। द्वाररक्षककी परवाह न कर, लोगोंके चिल्लानेकी

ओर ध्यान न दे, वे सिंहके पिंजड़ेमें घुस गये। इस इरादेसे कि सिंह चिढ़कर मुझपर एकदम टूट पड़े, उन्होंने उसकी अयालको पकड़कर ज़ोरसे झकझोरा। सारे लोग भयभीत हो गये। परंतु दूसरे ही क्षण उस भयका आश्चर्यमें रूपान्तर हो गया। वह सिंह प्रोफ़ेसर ऐन्ड्रोक्लीज़का हाथ चाटने लगा था। उन्होंने ध्यानसे देखा। हाँ — वही वह आफ्रिकाका सिंह था। सारी दुनियामें सिर्फ़ वही एक उन्हें नहीं भूला था!

● ● ●

७२
पर्वतकन्या

पिताके अंगपर खेलनेवाली पर्वतकन्या थी वह! खेलते-खेलते वह नीचे फैली हुई पृथ्वीकी ओर देखती। अपने पिताके उत्तुंग स्थानपर उसे बड़ा अभिमान होता। यदि वह अपने हाथ ऊपर उठाता तो आसानीसे आसमान छू लेता। फिर वह कहता,– 'लड़की, तू बड़ी भाग्यवंती है! आकाशके मेघोंका काजल तेरी आँखोंमें लगानेवाला पिता तुझे मिला है। चाँदनीके पुष्पोंको तोड़कर उन्हें अपनी बेटीके केशोंमें गूँथनेकी क्षमता रखनेवाले पिताके घर तू जन्मी है!'

पिताके इन शब्दोंको सुनकर पर्वतकन्या खिलखिलाकर हँस पड़ती।

• • •

कालपुरुषकी[1] अनादि और अनंत परिक्रमाएँ जारी ही थीं। प्रातःकालके पूर्व-दिशाके रंग सायंकालको पश्चिम दिशापर उंडेले जा रहे थे। वसंतकी कोमल लाल पत्तियोंके हेमंतमें रुक्ष पीले पत्ते बनकर, वे गलकर नीचे गिर रहे थे, जीवन-सागर जन्म-मृत्युके ज्वार-भाटेके साथ नित्य हँसता-नाचता आगे बढ़ रहा था, और सिसकियाँ लेता और आहें भरता पीछे जा रहा था।

१ समय।

अब पर्वतकन्या पहलेकी तरह अपने पितासे स्वच्छन्दतापूर्वक नहीं खेल सकती थी, उसके शरीरपर चढ़कर खेलते न बनता था। कोई एक मीठा विचित्र संकोच महसूस करने लगी थी वह! अकेली बैठी रहनेमें, अकेली घूमनेमें, अपने आप ही गुनगुनानेमें उसे अब अधिक आनंद आया करता। वह जो गीत गुनगुनाती उसका स्पष्ट अर्थ स्वयं उसकी भी समझमें न आया करता। एक बात अवश्य उसे पूर्णरूपसे प्रतीत हुआ करती – उस गीतके तालपर अत्यन्त मधुर स्वप्न मेरे आसपास नाच रहे हैं। मैं फूलरानी हूँ। वे स्वप्न ही स्वर्गीय पंखवाली छोटी छोटी तितलियाँ हैं।

इसी तरह मन-ही-मन गुनगुनाती हुई एक दिन वह पृथ्वीपर आयी। उसने सहजभावसे पीछे मुड़कर देखा। पर्वतका वह उग्र और ऊबड़-खाबड़ रूप देख-कर वह चकराई। उसे भ्रम हुआ कि मेरा पिता पाषाण-हृदयी है। इस कल्पनाके साथ ही वह काँपने लगी। अब उससे वहाँ खड़ा नहीं रहा जाता था। तूफ़ानी हवाकी तरह वह मनमानी भागने लगी।

वह स्वयं यह नहीं जानती थी कि मैं कहाँ जा रही हूँ! दूरसे यदि कोई उसे अपने पिता जैसा दीखता तो वह उसका चक्कर लगाकर जानेकी तैयारी करती और जहाँ वह पीछे रह गया कि फिरसे जल्दी जल्दी दौड़ने लगती।

धीरे धीरे वह मंद गतिसे चलने लगी। परंतु कहाँ जाना है, इसका अभीतक उसे कोई पता न था।

एकाएक एक भव्य-गंभीर नाद उसके कानोंमें पड़ा। उसके रोमांच खड़े हो गये। उसे लगा – यह नाद मेरे कानोंमें निरंतर निनादित होता रहे। कानसे लग-कर हँसी करनेवाली हवासे उसने पूछा, –‘ कौन गा रहा है री?’

उसने उत्तर दिया, –‘ रत्नाकर!’

उसकी आँखोंके सामने विविध रत्न-राशियाँ चमकती हुई जाने लगीं। उन्हें देखते-देखते वह अपने होश भूल गयी।

जब वह होशमें आयी तब उसने इतना ही महसूस किया कि मैं एक नीले सुंदर महलमें रत्नजड़ित मंचकपर हूँ। चारों दिशाएँ उस महलकी चार दीवालें थीं। मंचकपर चन्द्रकोरका दीप मन्द मन्द प्रकाशित हो रहा था। अमृतके प्यालोंको हाथोंमें लिये अप्सराएँ खड़ी थीं। इस अद्‌भुत दृश्यको देखकर अनंत

और अनादि परिक्रमा कर रहा कालपुरुष क्षण-भर जैसे उन्मत्त-सा हो गया, जहाँके तहाँ रुक गया और उसकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगा।

● ● ●

रत्नाकरके कठोर स्वरसे वह उस सुख-निद्रासे जागी। अब स्वप्न-सृष्टिके उस विशाल महलकी दीवालें खड़खड़ाकर गिर पड़ी थीं। उस सुन्दर मंचकके टुकड़े टुकड़े हो गये थे।

उसने भयभीत दृष्टिसे उस पार देखा। रत्नाकर हँसता हुआ उसके पास आया और बोला, – 'पगली कहींकी! इतना डरनेको क्या हो गया? अपना कर्तव्य कर रहा हूँ मैं! मेरा धर्म ही है यह!'

रत्नाकरपर उसे इतना क्रोध आया कि कुछ न पूछिये!

और धीरे धीरे वह क्रोध बढ़ता ही चला। उसे पहले लगा था कि उसके अस्पष्ट स्पर्शमें अमृत है, परंतु उससे एकरूप हो जानेके कारण अपने जीवनका सारा माधुर्य लुप्त हो गया है, ऐसा अब उसे पद पदपर लगने लगा। प्रेमकलहका स्थान कलह-प्रेमने ले लिया। अनेक बार उसे छोड़कर वापस अपने पिताके घर जानेके लिये वह निकली। वह उसे बिदा देनेके लिये कुछ क़दम आगे बढ़ा। परंतु प्रत्येक बार उसका बनावटी आवेश लुप्त हो जाता और प्रत्येक बार वह उसके साथ अपने घर लौट जाती।

लेकिन रह-रहकर उसे लगता कि मैं उस समय व्यर्थ ही एक अंधीकी तरह इस रत्नाकरकी ओर दौड़ पड़ी!

कालपुरुषकी परिक्रमा जारी ही थी। एक दिन सूर्य-किरणोंके विमानमें बैठकर, पर्वतकन्या स्वर्ग गयी। वहाँके रथमें बैठकर, कृष्णमेघोंकी पीठपर बिजलीके कोड़े बरसाती हुई, वह सर्वत्र घूमी। स्वर्गसे ऊबकर वह फिरसे पर्वतकन्या हो गयी। फिरसे पिताको छोड़कर वह दूर दूर दौड़ने लगी। अनेक तृषार्त वृक्ष-लताओंके व्याकुल हुए जीवोंको सुखी करनेमें अपने जीवनको लगा देनेका उसने निश्चय किया। फूलोंके हार और गालियोंका समबुद्धिसे स्वागत करती हुई और मार्गके गड्ढोंको भरती हुई वह निश्चयके साथ आगे जाने लगी। उसके कानोंमें एक भव्य-गंभीर नाद पुनः पड़ा।

उसने फिरसे हवासे पूछा, – 'कौन गा रहा है री? —'

● ● ●

७३

प्रतिध्वनि

तरुण प्रवासीने आँखें खोलकर देखा।

अत्यन्त घना जंगल —

आकाशमें सूरज काफ़ी ऊपर चढ़ गया होगा! परंतु उसका प्रकाश धरतीको स्पर्श नहीं कर सकता था। ऊँचे वृक्षोंके दूरतक फैले हुए पर्णसंभारमेंसे नीचे आनेका प्रयत्न करनेवाली किरणोंकी ओर उसने देखा। वह अपने आप ही हँसा। जालसे बाहर निकलनेके लिये हाथ-पाँव पटकनेवाली रुपहली मछलियोंकी उसे याद हो आयी!

परंतु वह क्षण-भरके लिये ही!

उस प्रशान्त अरण्यकी नीरवता और शीतलतासे उसका मन भर गया था।

अनजाने अपने शैशवका उसको स्मरण हो आया! जब वह किरकिर करने लगता, तो माँ उसे आँचलके भीतर ले लेती।

यह मीठी याद —

उसके मनमें आया — जैसे सारे जगकी माँ ही मुझे गोदमें लेकर बैठती। उसके स्तनोंसे शुभ्र धाराएँ बहतीं, वे दूधकी न होतीं; सुखशान्तिकी होतीं, ब्रह्मानंदकी होतीं।

उसे यह आभास हुआ कि वह सुख, वह शान्ति, वह आनंद इस अरण्यमें है। आसपासके गगनचुंबी वृक्षोंको देखकर पहले उसके मनमें यह आया था कि किसी क्रूर अदृश्य शक्तिने मुझे इस कारागारमें लाकर बंद कर दिया है। मैं उसका बंदी हूँ। मैं कहीं भाग न जाऊँ, इसलिये नाना प्रकारके हथियारोंसे सज्जित इन पहरियोंको उसने खड़ा कर दिया है। परंतु अब उसके मनमें आया कि किसी मंगल अदृश्य शक्तिने मुझे शान्ति देनेके लिये मेरे शयनागारके चारों तरफ़ इन प्रसन्नमुख रक्षकोंका प्रबंध कर दिया है।

किसी बालकको किसी सुंदर, प्रचण्ड राजमहलमें ले जाकर छोड़ दें और उस छोटे बच्चेकी यह स्थिति हो जावे कि कौनसा भाग देखूँ और कौनसा न देखूँ, ठीक इसी प्रकारका अनुभव अब उस प्रवासीको हुआ। बीचहीमें हरियालीमेंसे लुकता-छिपता जा रहा निर्झर उसे मिलता। बीचहीमें सुंदर सुगंधित फूलोंसे खिली हुई वन-लता उसका स्वागत करती। इधर उधर भ्रमण करनेवाली नन्ही तितलियां बीचहीमें उसके शरीरपर आकर बैठ जातीं और जैसे उससे कहतीं, – 'कितने दुर्बल हो जी, तुम! तुमपर दया आती है हमें! धीरे धीरे चलकर तुम्हें यह सुंदर अरण्य देखना पड़ रहा है। हम जैसे पंख यदि तुम्हें होते तो – हम अभी यहाँ, तो थोड़ी देरमें उस पारके पर्वतपर बड़े मज़ेमें भटकती रहती हैं।'

● ● ●

उसने दूर दूर ध्यानसे देखा। दो टेकड़ियाँ क्षितिजकी गोदमें सोयी हुई-सी दीख रही थीं। जैसे दो जुड़वाँ बहनें हों। बड़ा विलक्षण साम्य था। उसने उन दोनों टेकड़ियोंपर चढ़ने और वहाँसे दीखनेवाले मोहक दृश्योंको आँखोंमें भर लेनेका मनमें निश्चय किया।

घूमते-घामते और रमते-रमते वह पहली टेकड़ीपर आकर खड़ा हो गया। उसकी आँखें सामने फैले हुए सौंदर्यके सागरको पीना ही चाहती थीं, तभी —

किसीका करुण विलाप उसके कानोंमें पड़ा। कौन कहाँ रो रहा है, यह वह नहीं समझ पाता था। क्षण-भर उसे लगा कि जिस टेकड़ीपर मैं खड़ा हूँ, वही विलाप कर रही है! फिर उसके ध्यानमें आया कि टेकड़ीके नीचेसे यह करुण स्वर आ रहा है।

अभीतक वह आनंदकी लहरियोंपर तैर रहा था। उस विलापके कारण उन प्रशान्त लहरियोंका प्रक्षुब्ध तरंगोंमें रूपान्तर हो गया।

जल्दी जल्दी उसने पहली टेकड़ी पीछे छोड़ी। दूसरी टेकड़ीके सबसे ऊँचे स्थान-पर जाकर वह खड़ा हो गया। उसकी आँखें सामने फैले हुए सौंदर्यके सागरको पीना ही चाहती थीं, तभी—

किसीका अनिर्बन्ध हास्य उसके कानोंमें पड़ा। उसे पता न चलता था कि कौन कहाँ हँस रहा है। क्षण-भर उसे लगा कि जिस टेकडीपर मैं खड़ा हूँ वही खिलखिला कर हँस रही है। फिर उसके ध्यानमें आया कि टेकड़ीके नीचेसे यह हास्य-ध्वनि आ रही है।

धीरे धीरे टेकड़ी उतरकर वह नीचे आया। वह हास्य उसे अधिक स्पष्ट रूपसे सुनायी पड़ने लगा। उसकी दिशामें वह चलने लगा टेकड़ीसे कुछ दूरीपर एक तरुणी बैठी हुई उसे दिखाई दी। वह लगातार हँस रही थी। उसके कपड़े बिलकुल मामूली ही थे। परंतु उसकी बड़ी बड़ी आँखोंमें विलक्षण चमक दीख रही थी। उसके मनमें यह विचित्र शंका आयी कि यह तरुणी कोई पगली तो नहीं है!

वह उससे चार क़दम दूर ही खड़ा रहा। उसने स्नेह-पूर्ण स्वरमें प्रश्न किया,–'देवीजी, तुम्हें इतना आनंद क्यों हो रहा है?'

अपनी विशाल भावपूर्ण आँखोंको उसपर स्थिर करती हुई वह बोली, –'अरे पागल, कितने सुंदर अरण्यमें भगवानने लाकर मुझे छोड़ा है! यहाँके फूल, पत्ते, वृक्ष–सब लगातार हँस रहे हैं। फिर मैं ही क्यों न —'

आगे और कुछ न कहकर वह फिरसे हँसने लगी।

उसके इस उत्तरसे भौचक्का-सा हुआ प्रवासी दूसरी टेकड़ीकी दिशामें चलने लगा। उस टेकड़ीसे थोड़ी दूर बैठी हुई एक तरुणी उसे दिखाई दी। उसके शरीरपर ज़रीके कपडे थे। वह लगातार सिसक सिसककर रो रही थी। उसकी बंद आँखोंसे आँसू टपक रहे थे। यह कोई पगली तो न हो, यह विचित्र शंका प्रवासीके मनमें आयी।

उसके पास जाकर अपने थरथराते हुए हाथको उसके स्कंधपर रखकर स्नेहपूर्ण स्वरमें उसने प्रश्न किया, –'दीदी, तुम्हें इतना दुःख क्यों हो रहा है?'

आँखें खोलकर उसकी ओर भयभीत दृष्टिसे देखती हुई वह बोली, –'अरे अक्लमंद, कितने भयानक अरण्यमें भगवानने लाकर मुझे छोड़ दिया है! हिंस्र पशुओं और विषैले सर्पोंसे यह अरण्य भरा हुआ है। सुन–ठीकसे कान लगाकर सुन–उनकी चिंघाड़े --वे फुसकारे —

आँखें बंद कर वह कान लगाकर सुनने लगा। उसकी सिसकियों और दूरसे सुनाई पड़नेवाले उस दूसरी तरुणीके अस्पष्ट हास्यको छोड़कर उसे और कुछ भी सुनाई न पड़ा।

● ● ●

७४

खोज

किसी भी तरह उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि आखिर मैं चाहता क्या हूँ! लेकिन उसकी बेचैनी न जाती थी। पहले वह नर्म नर्म तकियेपर मस्तक रखते ही निद्रामग्न हो जाया करता। तकियेपर मस्तक मथते हुए क्षणक्षणमें उसका मन मधुर स्मृति-लहरियोंपर तैरने लगता। माँके आँचलसे चिपटकर किया हुआ शैशवका दुग्धपान, ग्रीष्मकी घबराहटमें प्राप्त हुआ नदीका शान्त शीतल स्नान, यह आभास होकर कि त्रिभुवनका सारा सौन्दर्य अपने सामने खड़ी मुग्धतामें अवतीर्ण हो गया है, यौवनके उन्मादमें होश खोकर किया हुआ आत्मदान, पक्षियोंकी चहककी याद दिलानेवाले पैरोंके कड़ोंके बजते ही सुनाई पड़नेवाला विश्वगान – ये सारी स्मृतियाँ जैसे माँकी ममतासे उसे थपथपाती थीं। फिर किसी बालककी तरह वह सो जाता था।

आजकल भी जब वह बिस्तरपर लेटता, तो वे स्मृतियाँ उसके मनमें जागृत हो जातीं, उसकी खुली आँखोंके सामने बार बार नाचतीं-गातीं चली जातीं। परंतु किसी भी तरह उसे नींद न आती। पहले क्षणार्धमें खिल जानेवाली वे कलियाँ अब उसे निर्माल्यवत् लगतीं। पहले रोमांच खड़े कर देनेवाला उनका स्नेहशील स्पर्श अब उसे पिशाचके शीतल हाथकी तरह प्रतीत होता! उस स्पर्शसे उसके रोंगटे खड़े हो जाते।

मानो गाते हुए गगनमें स्वच्छन्दतासे उड़ रहे पक्षी किसी क्रूर शिकारीके छर्रों द्वारा लहूलुहान होकर धरतीपर पड़े हुए थे, उस शिकारीने हलके हाथसे उनका रक्त पोंछा था, उनके चमड़ोंमें भूसा भर दिया था। दूरसे वे सजीव प्रतीत हो रहे थे। परंतु—परंतु उनके पंख अचल थे—कंठ मूक थे—और उनकी आँखें पथरिया गयी थीं।

पहले अपनी रुचिके पकवानको वह पेटभर खाता था। उस समय शरीरके भीतरके असंतोषके बुदबुदोंकी आवाज़ जाने कहाँ लुप्त हो जाती थीं। घड़ा संतोषसे भर जाया करता था।

पहले बागके फूलोंमें उसे विशाल इन्द्रधनुष्यके रंग दिखा करते। अब इन्द्र-धनुष्यमें उसे किसी विलासी अप्सराके केशकलापसे मसलकर फेक दिये हुए ऊन-का भास होने लगा।

पहले, द्रव्य गिनते हुए भिन्न भिन्न सिक्कोंकी आवाज़ उसको नयी नयी तर्ज़से गानेवाले संगीतज्ञोंकी तरह लगती। अब उसे उनमें तपे हुए लोहेपर लुहारके द्वारा मारे जा रहे घनकी आवाज़ें सुनायी पड़ने लगीं।

पहले शयनमंदिरमें प्रवेश करनेवाली पत्नीकी वह बड़ी अधीरतासे प्रतीक्षा करता। एक पल उसे एक युगकी तरह प्रतीत हुआ करता। परंतु अब उसकी आहट पाकर भी उसके हृदयका फव्वारा सूखा ही बना रहता।

पतंगकी डोर बालकके हाथमें होती है, लेकिन पतंग आकाशमें ऊँचा उड़ता रहता है। उसे तीव्रतासे लगने लगा कि मेरे विषयमें भी यही हो गया है।

विचार करते-करते उसके मनमें आया—आजतक मैं एक साधारण मनुष्य-की तरह जीवित रहा; मैं सतहपर चलता फिरता रहा। मेरे जीवनको शिखर नहीं। इस गंदी लीकसे मेरा मन ऊब उठा है। सालोंतक ही अन्न खाकर जीभ जिस प्रकार ऊब जायेगी, अथवा एकही-सा वस्त्र पहनकर जिस प्रकार शरीर विद्रोह करेगा, उसी तरह मेरी आत्माकी स्थिति हो गयी है।

इन अनाड़ी गाँवमें मेरी आत्माका विकास करनेवाली एक भी बात नहीं है। मेरी बेचैनी मेरे अलौलिक असंतोषसे उत्पन्न हुई है, इस सात्त्विक तृष्णाके शान्त हुए बिना मुझे संतोष न मिलेगा। जबतक मुझपर बुढ़ापेकी छाया नहीं पड़ी है, तभी एक आत्माको संतोष देनेका मार्ग मुझे खोज लेना चाहिए।

एक दिन आधी रातको वह उठा और चुपचाप प्रवास करनेके लिये घरसे बाहर चल दिया।

घूमते-घामते वह एक निसर्गसुन्दर गाँवमें आया। विश्रांतिके लिये वह नदी किनारेके मंदिरकी ओर मुड़ा। मंदिरमें कोई समारोह हो रहा था।

उसने आगे बढ़कर देखा। एक कवि विशाल जन-समूहके सामने प्रीतिकी महिमाको गाकर सुना रहा था। सँपेरेकी बीनके सुरपर नाग जिस तरह झूमे, उस तरह वह विशाल जन-समुदाय उस गीतको सुनकर मस्त होकर झूम रहा था! उस गीतके शब्द कितने कोमल, कितने रंगीन और कितने स्वच्छंद थे! जैसे किसी प्रेमीके पहले स्पर्शसे लज्जित हुई तरुणीके गालोंपर छायी हुई मोहक छटा! उस गीतकी कड़ी कड़ीसे नयी नयी कल्पनाएँ प्रकट हो रही थीं! जैसे कि बागमें एक दूसरेका पीछा करती हुई दौड़ रही तितलियाँ! और अन्तिम कड़ीकी वह उत्कट उदात्त भावना! कवि गा रहा था —

'प्रियतमे, मैं जानता हूँ कि प्रेम एक यज्ञ है। इसलिये यह देखो, मैंने उसमें अपने आपकी आहुति दे दी। सुंदरी, अब नदी सागरमें मिल गयी है। मैं नहीं जानता कि तुम नदी हो या सागर! पृथ्वी और आकाशका मिलन हो गया है। मैं आकाश हूँ या पृथ्वी, इसका मुझे होश नहीं रहा है। हे देवी, चाहो तो प्रेमीके पंचप्राणोंकी पैंजनियाँ पैरोंमें पहनकर तुम जीवन-नृत्य करो। उन पैंजनियोंसे तुम्हें एक ही झंकार सुनाई देगी —' मैं तुम्हारा हूँ, प्यारी, मैं तुम्हारा हूँ! प्रिये, मैं तुम्हारा ही हूँ।''

अतिथिकी हैसियतसे कविके घर ही ठहर जानेका अवसर प्राप्त हो जानेसे उस प्रवासीको अत्यानन्द हुआ। आधी रातके क़रीब किसी कोलाहलके कारण वह कुछ आधा-सा जाग पड़ा। उसे लगा – पासमें कहीं या तो आग लग गयी होगी या कोई चोरी हो गयी होगी।

वह छटपटाता हुआ उठकर बैठ गया।

वह आवाज़ घरके भीतरसे आ रही थी। उसे लगा – कविराज पत्नीसे लड़ रहे होंगे। वह ध्यानसे सुनने लगा। रातका भात मुलायम हो जानेके कारण कवि कठोर वाक्ताडन कर रहे थे। उनकी प्रियतमा फूटफूटकर रो रही थी। अन्तमें बंद की हुई बिल्ली जिस तरह उलट पड़ती है, उस तरह वह भी प्रत्युत्तर देने लगी। उसने बड़े तावसे कविजीके किसी गुप्त प्रेम-प्रकरणका भंडा-फोड़

करना आरंभ कर दिया। अंतमें इस उक्तिका आश्रय लेकर कि शब्दोंसे कृति सौ गुनी श्रेष्ठ होती है, कवि महाशयने अपना मुँह बंद कर लिया और—

प्रवासी चुपचाप उठा और किसीसे कुछ भी न कहकर घरसे बाहर निकल पड़ा।

रमते-रमाते वह एक पर्वतके पठारपर बसे हुए एक गाँवमें आया। गाँवमें बड़ी धूमधाम थी। देशके शत्रुओंको हटा देनेवाला सेनापति आज अपने जन्म-गाँवको आ रहा था। उसके स्वागतमें प्रवासी भी शामिल हो गया। भागते हुए बादलोंसे गंगाके प्रवाहमें गिरनेवाली पर्जन्यकी बूँदोंकी तरह वह आनंदकी लहरोंपर तैरनेवाले उस जन-समुदायमें मिल गया।

सेनापतिका भाषण सुनते हुए उसकी भुजाएँ फड़कने लगीं। उसे विश्वास हो गया कि जो मैं चाहता हूँ वह मुझे यहाँ निश्चित मिल जायेगा।

सेनापति किसी बिगुलकी तरह ऊँचे स्वरमें कह रहा था, – 'मेरी मातृभूमिकी इस मिट्टीमें बड़ा दिव्य गुण है। उसने मुझे वीर बनाया। यह न भूलो कि इस गाँवके बच्चे बच्चेको वीर पुरुष बनना होगा! यह मेरा दृढ विश्वास है कि इस गाँवके अंतिम मनुष्यके खूनकी अंतिम बूँद धरतीपर गिरतेतक हमारा देश परतंत्र नहीं होगा।'

अतिथिकी हैसियतसे प्रवासीने सेनापतिके साथ भोजन किया। भोजन करते समय सेनापति मेरी ओर बार बार क्यों देख रहा है यह उसकी समझमें नहीं आता था। परंतु उसे उस बातपर गर्व हुआ। सेनापतिके डेरेमें ही उसके भी सोनेका प्रबंध कर दिया गया।

आधी रातके लगभग किसी विचित्र स्पर्शसे प्रवासी आधा-सा जाग पड़ा। उसे शक हुआ कि कोई सर्प तो मेरे बदनपरसे नहीं जा रहा है।

वह छटपटाकर उठ बैठा। डेरेके भीतर आनेवाली चाँदनीकी धुँधली रोशनीमें उसने अपने नज़दीक एक आकृतिको बैठे हुए देखा। उसके हाथोंमें रुपयोंसे भरी हुई एक मोटी थैली घुसेड़ता हुआ वह व्यक्ति बोला, – 'दोस्त, तुमसे मुझे कुछ काम है।'

उस भर्राई हुई आवाज़को प्रवासी पहचान गया। वह सेनापतिकी थी। वह आवाज़ कह रही थी, – 'कल सुबह तुम मेरे साथ राजधानी चलो। तुम्हें मैं राजाका शरीर-रक्षक बना देता हूँ। मौक़ा देखकर तुम राजाको इस दुनियासे

खत्म कर दो। उसके कोई लड़का नहीं है। उसके बाद मैं ही उस सिंहासनका उत्तराधिकारी हूँ। राजाको खत्म कर देनेके बाद, साल दो साल तुम फरार रहो। फिर मेरे पास आना। मैं तुम्हें अपना सेनापति बनाऊँगा – महामंत्री बना दूँगा!'

इतना कहकर सेनापति अपने स्थानपर वापस चला गया। थोड़ी देरके बाद प्रवासीको खर्राटे भरनेकी आवाज़ सुनायी पड़ने लगी। राजाके खूनका मनमें चक्कर काटते हुए इस मनुष्यको झटसे इतनी शान्तिके साथ नींद कैसे आ गयी, यह देखकर अतिथिको बड़ा आश्चर्य हुआ।

वह उठा और किसीसे कुछ भी न कहकर गाँवसे बाहर चल दिया।

यह सोचकर कि शहरोंका अनुभव काफ़ी हो गया, वह अब तपोवनोंमें घूमने लगा। रमते-रमाते वह एक नदीके उद्गम स्थानमें आया। वहाँके तपोवनमें भी लोगोंकी बड़ी भीड़ देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसने एक पथिकसे प्रश्न किया, – 'यह काहेकी यात्रा लगी है?'

उसने हँसते हुए उत्तर दिया, – 'तुम इस दुनियामें रहते हो या परलोकमें? आज यहाँ बड़ी ज़ोरदार बहस होनेवाली है। स्वामी आस्तिकानंद और नास्तिकानंद परमेश्वरके अस्तित्वके बारेमें चर्चा करेंगे। देशके सारे विद्वान इस चर्चाको श्रवण करनेके लिये इस तपोवनमें इकट्ठे हुए हैं।'

उसने दोनों स्वामियोंके दर्शन लिये। उनके तेजःपुंज शरीरोंको देखकर उसके मनमें उन दोनोंके प्रति असीम आदर उत्पन्न हुआ।

दोनों ही बड़े विद्वान पंडित थे। वाद-विवाद दस घंटे होता रहा! परंतु जीत किसीकी भी न होती थी। अंतमें दोनों झगड़ेपर उतारू हो गये।

आस्तिकानंद चिल्लाकर बोले, – 'तुम देशद्रोही कुत्ते हो! ईश्वर कहीं नहीं है। वह मनुष्यमें भी नहीं है – यही तुम्हारा विश्वास है न?'

नास्तिकानंदने गर्जकर उत्तर दिया, – 'नहीं, ईश्वर कहीं भी नहीं है। तुममें नहीं है – मुझमें नहीं है।'

'तो — फिर —' इस तरह कहकर आस्तिकानंदने, वादविवादके पहले जिसकी पूजा की थी उस देवमूर्त्तिको उठाया, और उसे नास्तिकानन्दके सिरपर दे मारा।

सिर फट गया था फिर भी नास्तिकानंदने उस देवमूर्त्तिको उठाया और उसे

आस्तिकानंदकी खोपड़ीपर मारते हुए वह बोले, – 'मुझे मारनेके लिये तुम्हारे देवताको आना पड़ा! परंतु सृष्टिका एक मामूली पत्थर तुम्हारा फैसला कर देगा। जा, यह निश्चिन्त करनेके लिये कि परमेश्वर है या नहीं, सीधा स्वर्गको चला जा!'

दोनों बेहोश होकर गिर पड़े। किसीसे कुछ न कहकर प्रवासी उस भीड़से बाहर निकला और जहाँ रास्ता मिला वहाँ दौड़ने लगा।

वह अब घर लौटकर आ रहा था, यह सच है। परंतु रह-रहकर उसे लगता – मैं जिसे खोजने गया था वह मुझे न मिला। मेरा गुमा हुआ सुख मुझे अभीतक नहीं मिला है। उसकी चाल मंद पड़ गयी। यह जानते हुए भी कि यदि मैं कुछ जल्दी चलूँ तो शामतक अपने घर पहुँच जाऊँगा, उसे जल्दी जल्दी क़दम बढ़ानेकी इच्छा ही नहीं होती थी। समरभूमिसे हारकर लौटे हुए सैनिकके समान उसकी दशा हो गयी थी।

आसमानके चूल्हेके अंगारे दहक रहे थे। मानो विश्वमाताका वह रसोई बनानेका समय था! प्रवासी थका हुआ, उदास मनसे मार्गके किनारे वृक्षकी छायामें बैठ गया। इसी समय अठारह-बीस वर्षकी एक कृषक युवती उसे दिखाई दी। कितने जल्दी जल्दी वह अपने पतिके लिये कलेवा ले जा रही थी! चिलचिलाती हुई धूपकी, बदनसे बह रहे पसीनेकी उस प्रसन्नमुख युवतीको ज़रा भी परवाह न थी। उसका सारा ध्यान खेतकी ओर – वहाँ कलेऊकी प्रतीक्षामें बैठे हुए अपने पतिकी ओर लगा हुआ था। प्रवासीको अनजाने कविकी गृहस्थीकी याद हो आयी!

वह उठा और गाँवमें गया। मंदिरके सामने ही एक जुलाहेका घर था। घरका मालिक ही करघा चला रहा था। वह उससे बातें करने लगा। उसने देखा कि जुलाहिन बीमार होनेके कारण, घरके कामका बहुत नुकसान हो गया था। – परंतु जुलाहा किसीको भी दोष न देता था – किसीसे भी ईर्षा नहीं करता था! न जाने क्यों, सेनापतिके डेरेकी वह आधी रात प्रवासीकी आँखोंके सामने खड़ी हो गयी

धूप ढल गयी। शालाकी छुट्टीका समय हो गया था। प्रवासी शालाके पास जाकर खड़ा हो गया। शिक्षकके बदनपर रफ़ू किया हुआ कुरता था। परंतु वह हँस रहा था, लड़कोंके साथ गा रहा था, उनकी आँखोंमें आनंदके फव्वारोंको थै थै नचा रहा था! प्रवासी अतृप्त दृष्टिसे उस दृश्यको देखता रहा।

उसे 'ईश्वर है या नहीं' विषयपर दो सन्यासियोंमें हुए पाषाण-युद्धका स्मरण हो आया! वह जल्दी जल्दी चलने लगा।

आधी रातके लगभग वह अपने गाँवकी सीमाके पास पहुँचा। अँधेरेकी चद्दर ओढ़कर सृष्टिदेवीकी गोदमें वह सीधासादा छोटा-सा गाँव सोया हुआ था। उसने ऊपर देखा। तारिकाएँ आँखें मिचकाकर कह रही थीं, – 'तू जो खोजने गया था वह यहीं है।'

●●●

७५

अंगूर

उस बगीचेकी अंगूरकी लताओंमें लटकनेवाले अंगूरके गुच्छे बड़े मनोहारी दीख रहे थे।

ऐसा भ्रम होता था कि आकाशके आँगनमें छितरे पड़े हुए अगणित नक्षत्रोंको किसीने कोमल हाथोंसे बीनकर इन गुच्छोंको गूँथा होगा। ये कोमल हाथ सुबह ही दबेपाँव पूर्वके द्वारमें आकर खड़ी हो जानेवाली उषाको छोड़कर और किसके हो सकते हैं?

बगीचेके पासकी सड़कसे गुज़रनेवाले तीन मनुष्य उन सुंदर गुच्छोंकी ओर देखते हुए खड़े हो गये।

एक था आठ-दस सालका लड़का।

दूसरा था पचीस-तीस वर्षका तरुण।

तीसरा था साठ-सत्तर वर्षका वृद्ध।

लड़केने कहा, – 'मेरे मुँहमें कैसा पानी भर आया है! यदि कोई गुच्छोंको तोड़कर मुझे दे दे, तो मैं उन सबको बात-की-बातमें खा जाऊँगा!'

उसके शब्दोंको तरुणने सुना। उसका विश्वास हो गया कि उन शब्दोंको उसने पहले कभी कहीं सुना है। परंतु कहाँ सुना है, इसका उसे किसी भी तरह स्मरण नहीं हो रहा था!

वह उस लड़केकी ओर मुड़कर बोला, – ' लड़के, तुम अभी छोटे हो। इन सुंदर अंगूरोंको क्या खाकर ही खत्म कर देना चाहिए ? अँ हँ ! '

वह मन-ही-मन पुटपुटाने लगा, – ' सौन्दर्यको परमेश्वरने भले ही भंगुरताका अभिशाप दिया हो। परंतु मनुष्य उस सौन्दर्यको उःशाप दे सकता है। कला सौन्दर्यको अमर करती है ! '

वह क्षणभर ठहरा और हरे, फीके हरे और फीके पीले रंगके उन सुंदर अंगूरोंकी ओर देखता हुआ बोला, – ' इन अंगूरोंका चित्र खींचनेके लिये मेरा हाथ किस तरह उत्सुक हो रहा है ! रंग – मुझे रंग चाहिए। कोई रंग ला दो मुझे ! '

उसकी ये सारी बातें वृद्धके कानोंमें पड़ीं। उसे विश्वास हो गया कि मैंने पहले कहीं न कहीं ज़रूर सुना है। पर कहाँ सुना है, यह किसी भी तरहसे उसे स्मरण नहीं हो रहा था। वह उस तरुणकी ओर मुड़कर बोला, – ' महाशय, अभी तुम तरुण हो। सुंदर अंगूरोंका चित्र बनाकर तुम्हें क्या मिलनेवाला है ? जगमें अभी तुम्हें सामना करना है। जीवनकी यात्रामें तुम्हारे पैर लहूलुहान होंगे। उस दुःखको भुलानेके लिये मनुष्यको अपने पास कुछ रखना चाहिए। '

तरुणकी ठीकसे समझमें नहीं आ रहा था कि वृद्ध क्या कह रहा है।

उस वृद्धने इशारेसे तरुणको बिलकुल अपने निकट बुलाया और उसके कानमें मुँह लगाकर उससे कहा, – ' अंगूरकी बढ़िया शराब बनती है। '

● ● ●

७६
वर्षगाँठ

एक बार एक भिखारी भीख माँगता-माँगता राजधानीमें आया। उसने कभी राजा नहीं देखा था, राजप्रासाद नहीं देखा था। घूमते-घामते वह राजप्रासादके पास आ पहुँचा।

उस दिन उसकी झोली क़रीब क़रीब भर चुकी थी। उसमें चाँवल थे, ज्वार थी, सत्तू था, गेहूँ थे। परंतु उसे लगा– 'अभी झोलीमें दो-तीन मुट्ठी अनाज और रह सकता है। उसको राजासे ही क्यों न माँग लूँ? उसके पास शायद ऐसा कोई अनाज हो जिसे मैंने पहले कभी न देखा होगा। वह मुझे देखने मिल जायेगा, खाने मिल जायेगा। साथ ही देशके सारे लोग जिसे आदरसे 'महाराज, महाराज' कहते हैं वह कैसा है, यह भी मुझे अनायास ही देखनेको मिल जायेगा!'

परंतु प्रवेशद्वारपर ही पहरीने उसे रोक लिया।

भिखारी हँसने लगा। उसके मनमें आया – ये लोग कहीं पागल तो नहीं हैं!

वह मुख्य पहरीसे बोला, – 'भाई! मैंने यह सुना था कि पागल और गुनहगार स्वच्छंद न घूमें, इसलिये पागलखाने और कारागारके द्वारपर पहरी रखे जाते हैं। राजमहलमें उनकी क्या ज़रूरत है? अथवा प्रबंधकी सहूलियतके लिये राजा-साहबने जेल और पागलखाना दोनों राजमहलके भीतर ही लाकर रख लिये हैं?'

बात करते करते भिखारीने उस पहरीके कंधेपर हाथ रख दिया। जैसे वह किसी कोढ़ीका हाथ हो, ऐसा मानकर उस पहरीने वह झटसे हटा दिया!

पहरियोंके मुखियाके मनमें तीव्र इच्छा हुई कि चार कोड़े मारकर भिखारीको भगा दूँ। वह अपने मातहतोंको ऐसी आज्ञा दे ही रहा था कि इसी समय स्वयं राजा ही वहाँ आ गया।

वह दरबारमें जा रहा था। राजाको देखनेकी भिखारीकी इच्छा सुनते ही वह बोला, – 'राजमहाल ही क्यों, तुम्हें मैं दरबार भी दिखा देता हूँ। आओ मेरे साथ।'

आजका दरबार राजाकी वर्षगाँठके निमित्त भरा था। राजा सिंहासनपर बैठा। उसने भिखारीको अपने पासके आसनपर बैठनेका संकेत किया। सारे लोग चकित होकर देखने लगे। वर्षा-कालके मेघोंकी गड़गड़ाहटको लज्जित करनेवाली तालियोंकी कड़कड़ाहटसे सारा सभागृह गूँज उठा।

राजाके सामने एकके बाद एक बहुमूल्य उपायन भेंटके रूपमें आने लगे। आँखोंको चौंधिया देनेवाले, रत्न, ऐसे वस्त्र, जिन्हें देखकर ऐसा लगता कि उन्हें कम-से-कम एक बार तो स्पर्श करके देख लें, नाना प्रकार और नाना आकारकी वस्तुओंका जैसे एक सम्मेलन ही वहाँ भर गया था!

भेंट देनेका कार्यक्रम समाप्त हुआ।

राजाने भिखारीकी ओर देखा।

सुंदर सरपोशोंसे ढकी हुई विविध वस्तुओंपरसे भिखारी बार बार दृष्टि घुमा रहा था।

राजाने हँसते हुए भिखारीसे कहा, – 'तुम्हें जो माँगना हो, माँग लो। वह तुम्हें तुरंत —'

भिखारी उन सारी बहुमूल्य सुंदर वस्तुओंकी ओर टकटकी लगाये खड़ा रहा। कोई वादक वीणाके तारोंपरसे उँगली फेर दे, कोई प्रणयी पुरुष प्रेयसीके लावण्यको नाखूनसे लेकर सिरतक ध्यानपूर्वक देखे, उस तरह उसका वह देखना सब लोगोंको लगा।

'माँगो, तुम्हें जो माँगना हो, माँग लो!' – राजाने कहा।

भिखारी मौन था।

'माँगो, मेरे दोस्त, माँग ले। इन सुंदर वस्तुओंमेंसे जो तुम्हें अच्छी लगती हो वह—'

भिखारीके होंठ हिले।

यह सोचते ही कि अब वह बोलेगा, राजा एकदम चौंका।

'माँगूँ? चाहे जो माँगूँ?' – भिखारीने गंभीर स्वरमें प्रश्न किया।

राजा मनमें घबड़ाया। वर्षगाँठके अवसरपर भेटके रूपमें प्राप्त हुई सारी वस्तुओंकी ओर भिखारी कुछ समयके पहले ललचाई हुई दृष्टिसे देख रहा था। यदि उन सब बहुमूल्य वस्तुओंको वह माँग ले तो? और इसका क्या भरोसा कि इतनी वस्तुओंसे ही उसे संतोष हो जायेगा? आखिर भिखारी ही तो है! इस प्राणीने अपने जीवनमें झिलमिल वस्त्र क्या कभी पहने होंगे? सिरपर मुकुट पहननेकी तो बात ही छोड़ो, परंतु हाथकी अँगुलीमें एक छल्ला पहनना भी इसे कभी नसीब हुआ होगा क्या? इस भुखमरे और भिखमंगेने कहीं मेरा पूरा राज्य ही माँग लिया तो!

यह देखकर कि राजा कुछ भी नहीं बोल रहा है, भिखारीने फिर कहा,– 'माँगूँ? माँगूँ, महाराज?'

सारी सभा तटस्थ हो गयी। सभाके पंडित लोग मनमें कह रहे थे–'महाराजने व्यर्थ ही इस पागलको वचन दे दिया। पहले बलिने वामनको इसी प्रकार वचन दिया था जिसके परिणाम स्वरूप उसे अपने आपको पातालमें बंद कर लेना पड़ा।'

राजाकी आँखें चमकीं।

सभा और भी अधिक उत्सुक हो गयी।

राजा हँसता हुआ बोला,–'मित्र, तुम्हारे परिवारमें कितने लोग हैं?'

'मेरा कोई परिवार ही नहीं है, महाराज!'

'मेरी दशा बिलकुल विपरीत है, मित्र! सारी प्रजा मेरा परिवार है। यदि मुझे कोई कुबेरकी सम्पत्ति भी लाकर दे दे, तो इस परिवारके प्रत्येक व्यक्तिके हिस्सेमें एक एक कौड़ी भी आयेगी या नहीं, इसका मुझे शक है। इसलिये वर्षगाँठके निमित्त मैं उपहारोंको स्वीकार करता हूँ।'

राजा रुका।

भिखारी असमंजसमें पड़ गया।

राजा आगे कहने लगा, – 'मेरे इस बड़े परिवारके लिये जितनी सम्पत्ति मिले उतनी मुझे आवश्यक ही है। मित्र, इसलिये आज तुम भी मुझे कुछ भेट करो!'

भिखारीकी मुद्रापर कारुण्यकी छाया फैलने लगी।

उसने गर्दन झुका दी।

थोड़ी देरके बाद गर्दन उठाकर उसने राजाकी ओर अश्रु-पूर्ण नेत्रोंसे देखा।

भिखारीके सामने दोनों हाथ फैलाकर राजा बोला, – 'दो, मित्र, मुझे वर्ष-गाँठके निमित्त कोई भेट दो। किसी भी तरहकी – कुछ भी —'

भिखारीकी आँखें एकदम चमक उठीं।

एक ही समय वह हँस रहा था और रो रहा था। किसी विजयी सेनापतिकी तरह शानसे आगे बढ़ा और कँधेपर टँगी हुई अपनी झोलीको उसने राजाके हाथमें खाली करना शुरू किया।

राजाकी अंजली ऊपरतक भर गयी।

परंतु भिखारी रुका नहीं।

अनाज नीचे छितरने लगा।

सारी सभा विस्मयचकित हो गयी। हरएकको यही लग रहा था जैसे मैं कोई अद्भुत स्वप्न देख रहा हूँ।

खाली हुई झोलीको कंधेपर टाँगकर भिखारी जाने लगा। जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाता हुआ वह सभागृहके द्वारतक आया। सारे लोगोंकी आँखें उसपर स्थिर हो गयीं।

कँपित स्वरसे राजाने पुकारा —

'मित्र —'

भिखारी रुका। पीछे मुड़कर वह राजाकी ओर देखने लगा।

राजा बोला, – 'मित्र, तुम क्या चाहते हो, यह तुमने मुझसे नहीं कहा! मुझसे बिना मिले और राजमहलको देखे बग़ैर तुम जा रहे हो!'

किसी रूप-गर्विताकी तरह सारे सभाजनोंकी ओर तीव्र कटाक्ष फेंकता हुआ भिखारी लौट पड़ा। वह फिर सिंहासनके सामने खड़ा हो गया। सबके प्राण कानोंमें सिमट गये।

परंतु भिखारीके होंठ न हिले। उसने कंधेसे अपनी झोली उतारी और वह राजाके दाहिने कंधेपर टाँग दी।

सारी सभा भयभीत हो गयी।

राजा किसी पाषाण-मूर्तिकी तरह मौन था।

भिखारीने राजासे कहा,– 'महाराज, आपका परिवार बहुत बड़ा है। नीचे जो अनाज़ पड़ा हुआ है, उसका कुछ न कुछ उपयोग उसको होगा ही। उसे रखनेके लिये मुझे यह झोली आपको पहले ही दे देनी थी। परंतु मनुष्यका मन बड़ा लालची होता है। मैंने अनाज दिया। परंतु झोलीका मोह मैं सँवरण न कर सका!'

भिखारी सभागृहके बाहर गया।

दृष्टिसे ओझल होतेतक सारे लोग उसकी ओर निश्चल दृष्टिसे देख रहे थे।

जब वह दृष्टिसे ओझल हो गया तब उन्होंने राजाकी ओर देखा।

राजा सिंहासनसे नीचे उतर पड़ा था। अश्रु-पूर्ण नेत्रोंसे गलीचेपर फैले हुए अनाजके दानोंकी ओर वह देख रहा था।

वह झुका और गलीचेपर पड़े हुए अनाजको समेटकर अपनी झोली भरने लगा!

●●●

७७

घड़ी

एक सुंदर उपत्यकामें बिलकुल एक ओर बसा हुआ छोटा सा गाँव था वह। लौकिक व्यवहारसे दूर जाकर ध्यान-धारणा करनेवाले तपस्वीकी तरह वह प्रतीत होता था। शहरका एकाध सुधार चूते चूते वहाँ पहुँच जाता, न पहुँचता हो यह बात न थी। परंतु अभीतक वहाँके जीवनकी लीक पुरानी ही थी। धरती ही गाँवकी माता और वर्षा उसका पिता। पक्षियोंका गाना और नदीका नहाना; फुलोंमें गहने, तो खेतोंमें खज़ाने! संध्याकी गुलाल और सूरजकी घड़ी!

परंतु जीवनकी गति बड़ी विलक्षण है। क्या, सर्प कभी सीधा रेंगता हुआ जाता है? क्या, नदी कभी बिना मोड़ लिये बहती है? जीवन भी उसी तरह है।

शहर देखने गया हुआ एक युवक किसान एक दिन एक घड़ी लेकर अपने गाँव वापस आया। उस घड़ीको देखने उसके घर सारा गाँव टूट पड़ा। अँधेरा हो गया, फिर भी लोग आ ही रहे थे। देवदर्शन करके घड़ी देखनेको आये हुए कुछ बूढ़े लोगोंने उस युवकसे कहा, – ‘पगले, व्यर्थ ही रुपये बरबाद किये तूने? हम जैसे देहातियोंको ज़रूरत क्या है इतने महँगे यंत्रकी? सूरजके साथ हमारा दिन निकलता है और उसके साथ ही वह डूबता है!’

वह तरुण उन बूढ़ोंके अगुआसे बड़ी शानके साथ बोला, – 'यहीं आप गलती कर रहे हैं, दादाजी! पीढ़ियोंसे सूरजपर भरोसा रखकर हम काम करते आये हैं। इसके कारण हमारा कितना जीवन व्यर्थ चला गया, इसका आप लोगोंने कभी कोई हिसाब लगाया है क्या? सूरजका क्या, कभी छः बजे निकलता है, कभी सात बजे मुँह दिखाता है, कभी जल्दी सो जाता है, कभी बहुत देर-तक जागता रहता है! इसी लिये मैंने जानबूझकर यह घड़ी खरीदी है। बड़ा अजीब यंत्र है यह, दादाजी! पहलेकी घड़ियाँ घंटे बजाती थीं, गजर बजाती थीं, परंतु यह तो बेटी मनुष्योंसे बातें करती है। मनुष्यको इसकी तरह दूसरा दोस्त न मिलेगा इस दुनियामें।' बोलते-बोलते घड़ीकी ओर अभिमानसे देखता हुआ वह बोला,– 'अरे बाप रे, नौ बज गये!'

तुरंत ही घड़ी बोलने लगी, – 'नौ बज गये, नौ बज गये, उठो, चलो – भागो – जल्दी जल्दी सो जाओ। नहीं तो उठनेको देर हो जायेगी।'

इन शब्दोंको सुनते ही वे बूढ़े लोग चकित हो गये। तुरंत ही वे झटसे उठ बैठे। लेकिन जाते-जाते बड़े भक्तिभावसे उस घड़ीको प्रणाम करनेके लिये न भूले!

बीचके कमरेमें बैठी हुई शांतिसे बातें करनेवाली घड़ीकी उस कृषक युवकने पहले बड़ी सराहना की। परंतु सराहना मनोहारी रंगका जरीका वस्त्र भले ही हो, पर उसका रंग हमेशा ही कच्चा होता है। नयी घड़ीके बारेमें उस कृषक युवकका यही हुआ। वह उसे खासी बड़ी कीमत देकर खरीद लाया था। इसलिये पहले पहल वह उसकी ओर टकटकी लगाये खड़ा रहता। उसे चाबी देनेमें देर हो जाती, तो बच्चा भूखा रहा इसलिये चुकचुकानेवाली माँकी तरह उसकी मनःस्थिति हो जाती!

लेकिन समय प्रत्येक कलिको निर्माल्य बना देता है। धीरे धीरे उसे लगने लगा कि यदि यह घड़ी इतनी बोलनेवाली न होती, तो बड़ा अच्छा होता। अपने छोटे बच्चेके नन्हे हाथोंका आलिंगन दूर करके उठनेकी उसे हिम्मत नहीं पड़ती थी। उसे भय लगता कि मेरे छौनेकी नींद टूट जायेगी। परंतु पाँच बजते ही घड़ी चिल्ला पड़ती,– 'उठो, उठो, पाँच बज गये। आकाशका सूरज बड़ा आलसी है। अभीतक नहीं उठा है वह। चलो, उठो, काममें लग जाओ।'

दिन-भर वह घड़ी इसी तरह बकबक करती रहती। कृषकके बूढ़े पिताको, परिश्रमी पत्नीको और छोटे छोटे बच्चोंको सावधान करनेमें उसे बड़ा आनंद आता।

एक दिन वह कृषक पसीनेसे तरबतर हुआ ही घर लौटकर आया। तुरंत ही उसकी पत्नीने गुड़ और पानी लाकर उसके सामने रखा। 'हुश्श' करके नीचे बैठता हुआ और उसकी ओर देखता हुआ वह बोला —

'अरे बाप रे, कैसी भयंकर धूप है इस वक्त!'

उसकी पत्नी कुछ कहने ही जा रही थी, तभी घड़ीने हँसकर कहा, — 'पागल हो तुम। अभी सिर्फ़ दस बज़कर तेरह मिनट हुए हैं। बहुत हुआ तो पाँच दस सेकंद अधिक हो गये होंगे। क्या, दस बजे कभी भयंकर धूप हो जाती है?'

इन शब्दोंको सुनते ही उस कृषकको बड़ा क्रोध आया! उसे लगा — उठूँ, और उस घड़ीको बाहर फेक दूँ! परंतु यह किया तो पत्नी मुझपर हँसेगी, इसलिये वह चुप रहा। लेकिन गुड़-पानीका स्वाद लेते हुए उस घड़ीकी ओर देखकर दो-तीन बार उसने दाँत-होंठ चबाये।

आधी रातको अँधेरेमें वह धीमे उठा और दबेपाँव बीचके कमरेमें आया। उसे घड़ीके पास दो अस्पष्ट आकृतियाँ खड़ी हुई दिखाई दीं। आगे बढ़कर उसने देखा। एक थी उसकी पत्नी और दूसरे थे उसके पिताजी।

उसे देखते ही पत्नी रूठे हुए स्वरमें पुटपुटायी, — 'तुम क्यों आ गये यहाँ? मैं इस मरीको घूड़ेपर फेंक देनेवाली थी। अँधेरा हो जानेपर जब तुम घर नहीं लौटते तो मेरे मन हज़ार बिच्छू डंक मारते हैं। फिर मैं लगातार दरवाज़ेके सामने टहलने लगती हूँ। तब मुझे देखकर यह दुष्ट हँसती है, और कहती है — 'पगली कहींकी! ऐसी कौन बड़ी रात हो गयी है? सिर्फ़ सात बजकर बीस मिनट ही तो हुए हैं! बहुत ही हुए हों तो पाँच-सात सेकंद और हो जाये होंगे। इस तरह अधिर होनेके लिये तू कोई नयी दुलहन तो है नहीं!''

उसका पिता कँपित स्वरमें बोला, — 'बहू! तू क्यों छूती है उस चांडालिनीको! इस बूढ़ेकी कलाईकी ताक़द दिखाता हूँ ससरीको! चुड़ैल कहींकी! रातको खाँसते-खाँसते जब मुझे नींद नहीं आती, तब मैं बिस्तरसे उठ जाता हूँ और बीचवाले कमरेमें टहलने लगता हूँ। मुझको टहलता हुआ देखकर यह दुष्टा घड़ी हँसकर कहती है - 'बुढ़ऊ, चुपचाप सो जाओ बिस्तरपर। अजी, जिसे मृत्युके पदचाप सुनायी दे रहे हैं, उसे नींद कैसे आयेगी? अभी तो सिर्फ़ दो बजकर पाँच मिनट हुए हैं। बहुत हुआ तो पाँच-दस सेकंद अधिक हो गये होंगे। सूर्यके रथको सात ही घोड़े जुते रहते हैं दादाजी, सौ नहीं!''

तीनों घड़ीका उच्चाटन करनेके लिये आगे बढ़े। इसी समय वह घड़ी हँसकर बोली,—'तुम लोगोंने व्यर्थ ही अपनी नींद खराब की। इस समय सिर्फ़ बारह बजकर तेरह मिनट हुए हैं। बहुत ही हुआ तो पाँच-दस सेकंद अधिक हुए होंगे। अब जाकर चुपचाप सो जाओ और सुबह जो भी दण्ड मुझे देना हो, खुशीसे दे देना। तुम जैसे मूर्खोंके घरमें रहनेकी मेरी भी कहाँ इच्छा है?'

सुबह उठते ही पत्नीने पतिसे कहा,—'यदि हम घड़ी फेंक देंगे, तो लोग हमारी हँसी उड़ा देंगे। इसलिये —'

पिताने कहा,—'यही मैं भी कह रहा था! घरानेकी प्रतिष्ठा भी तो आखिर कोई चीज़ है या नहीं?'

घड़ीने हँसते हँसते छः बजाये और डोलते-डोलते वह बोली,—'मित्रो, एक बात ध्यानमें रखो। आधी रातको मनुष्यके मनमेंके भूत जाग जाते हैं।'

● ● ●

७८
स्त्री और पुरुष

बड़ा सुंदर दीखता वह पतंग। किसी खिले हुए कमलकी तरह। उसके विविध रंगकी मोहक छटाओंको देखकर तितलियाँ भी मनमें घुल-घुलकर काँटा होने लगतीं।

और उसीके रंगकी उसकी वह सुकुमार, लचीली और लजीली डोर। जैसे कमल-तंतुकी ही बनी थी वह!

बीच – बीचमें वायुलहरियाँ आतीं। पतंगके कानोंसे लगतीं और गाती गाती दूर निकल जातीं। उसे उन गीतोंका अर्थ कुछ भी समझमें नहीं आता था। परंतु उसे यह आभास अवश्य होता कि उनमें कुछ मिठास भरी है। उसका हृदय फड़फडाने लगता, तड़पने लगता, चरफराने लगता।

फिर उसके मनमें आता – अपने गलेके आसपास पड़ा हुआ यह रेशमी करपाश प्रीतिका नहीं, वह आसक्तिका है। गरुड़की तरह गगनको छूनेकी शक्ति मुझमें है। स्वर्गके अमृतको धरापर लानेकी ताक़त मेरे पँखोंमें है। परंतु यह डोर – यह सुकुमार तंतु भगवानने मेरे गलेमें क्यों बाँध दी?

दुनिया यह मानती है कि अबला होनेके कारण स्त्री पुरुषोंके बाहुपाशमें सुख पाती है और उसकी छातीपर मस्तक रखकर विश्राम पाती है!

परंतु दुनिया कितनी भोली है !

स्त्री पुरुषकी छातीपर इसलिये मस्तक रखती है जिससे अनायास ही पता चल जाय कि पुरुषके हृदयमें क्या चल रहा है ।

पतंगके मनकी हलचल डोरको इसी तरह मालूम हो गयी । वह खिन्नतासे अपने आप ही हँसी और बोली,- 'सच यही है कि पुरुष नित्य नये फूलकी चाह करनेवाला भ्रमर है !'

एक दिन किसी अल्हड़ प्रेमीकी तरह उसके आसपास नाचते हुए पतंग गुनगुनाया,- 'प्रिये, तू मेरी है, मैं तेरा हूँ । मैं राजा, तू रानी; मैं आत्मा, तू शरीर । तेरी जानपर मैं आकाशमें खूब ऊँचाईपर गोल गोल उड़ूँगा । तुम सदा मेरा साथ दोगी न ? आँधी चले, तूफ़ान आवे, कुछ भी हो - हम एक दूसरेको कभी नहीं छोड़ेंगे । एक दूसरेसे कभी अलग न होंगे ।'

किसी मुग्ध प्रेयसीकी तरह पतंगके स्कंधपर दुलारसे अपना मस्तक रगड़ती हुए डोरने कहा,-'मेरे राजा, मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगी हँ । जन्मजन्मान्तरतक हम दोनों साथ ही रहेंगे, एक दृष्टिसे देखेंगे, एक सुरसे गायेंगे, एक पूरमें नहायेंगे ।'

पतंग उड़ने लगा । समुद्रकी लहरोंपर तैरती हुई ऊपर-नीचे होनेवाली नौकाकी तरह वह दीख रहा था । डोर जल्दी जल्दी अपने बाहुपाशसे उसे मुक्त कर रही थी, वह जल्दी जल्दी ऊपर चढ़ रहा था ।

बीचहीमें उसने मुड़कर अपनी प्रियतमाकी ओर एक प्रेमपूर्ण कटाक्ष फेंका । सुकुमार भुजलताको ऊँची उठाकर हँसते हँसते वह उसे संकेत कर रही थी,- 'लौट आओ, लौट आओ ।'

पतंग हँसता हुआ पुटपुटाया,-'भीरु कहींकी !'

अब पतंग बहुत ऊँचा चला गया । पश्चिम दिशामें छोटे-बड़े मेघ रंगपंचमी मना रहे थे । उसके मनमें उनपर जाकर क्रीड़ा करनेकी तीव्र इच्छा पैदा हुई । वह और भी ऊपर जानेकी कोशिश करने लगा ।

लेकिन उससे ऊपर जाते न बनता था । वह जहाँके तहाँ चक्कर काटने लगा । एक-दो बार वह गोल गोल घूमा भी जैसे उसे गश आ गया हो ।

यह अनुभव उसके लिये जितना नया उतना ही विचित्र था । हवा पहलेकी तरह ही कोमल मधुर ध्वनिके साथ बह रही थी । मेघ पहले जैसे ही नाना प्रकार-के रंगोंको मिश्रित कर एक दूसरेके बदनपर डाल रहे थे । वह खेल देखनेके लिये

पश्चिमकी तरफ किसीकी प्यारी आँखें चमकनी लगी थीं। कोई लजीली अप्सरा होगी वह! स्वर्गके गवाक्षसे धीरेसे झाँककर देखनेवाली —

दबेपाँव उस अप्सराके सामने जाकर खड़ा हो जाऊँ, उससे पूछूँ कि इन सारे मेघोंसे मैं कितना अधिक सुंदर दीखता हूँ —

पतंगके मनमें इस प्रकारकी कितनी ही इच्छाएँ क्षणार्धमें उत्पन्न हो गयीं। परंतु वह जहाँके तहाँ स्थिर हो गया था। उससे एक अँगुल भी ऊपर जाते नहीं बनता था।

उसने क्रोधसे पीछे मुड़कर देखा। हाँ — वही वह चांडालनी —

उसकी प्रेयसी उसे पीछे खींच रही थी। वह कह रही थी,—' प्रियवर, अब बस हो चुका। कुछ थोड़े तो नीचे आओ। ज़रा मेरे निकट आओ। कहाँ जा रहे हो तुम? मेरे प्राण जैसे छटपटा रहे हैं। मेरे मनकी यह खींचातानी तुम क्या देख नहीं पा रहे हो? तुम्हारे लिये मेरे प्राण सूखे जाते हैं — '

उससे आगे बोला नहीं जाता था!

आकाशके गवाक्षसे मेघोंकी क्रीड़ा देखनेवाली अप्सराके उन्मादक कटाक्षका चिन्तन करता हुआ पतंग चिल्लाया, — ' छोड़, छोड़ मुझे! '

' मैं तुम्हारी हूँ न, प्यारे? ' — डोरने बड़े दुलारसे प्रश्न किया।

उसने उपहास-भरे स्वरमें उत्तर दिया, — ' तू मेरी है। पर कौन? '

' रानी! '

बिकट हास्य करते हुए उसने उत्तर दिया, — ' रानी नहीं, दासी! '

मर्ममें बाण लगे हुए हरिणीकी तरह उसकी तनुलता थरथर काँपने लगी। परंतु शीघ्र ही अपने मन और शरीरको सम्हालती हुई वह बोली, — ' मेरे राजा, हम दोनों एक दूसरेके लिये जन्मे हैं। तुम इस तरह मुझे छोड़कर चले जाओगे तो — सिर्फ़ अपने ही सुखके लिये मैं यह नहीं कह रही हूँ। तुम्हारी भलाईके लिये — मेरे प्यारे, तुम्हारे लिये। तुम राजा, मैं रानी — तुम आत्मा, मैं शरीर। '

' बन्द कर तेरी यह बकवास! मैं इस स्वर्गकी अप्सराका चुम्बन लेना चाहता हूँ। वह मैं लूँगा, उसे अपनी भुजाओंमें भरकर ही मैं नीचे उतरूँगा। तुझसे उसके पैर दबवाऊँगा — छोड़ — छोड़ दे मेरे पैरकी पकड़ — नहीं छोड़ती? — नहीं? — '

उसने सारी शक्ति समेटकर उसे लात मारी। वह दूर जा पड़ी।

अब वह स्वतंत्र हो गया था। उसे लग रहा था कि क्षणार्धमें गगनके द्वारमें

जाकर खड़ा हो जाऊँ। परंतु दूसरे ही क्षण उसका हृदय काँप उठा। ऊपर जानेके बदले वह चक्कर खाता हुआ नीचे आने लगा था। किसी भी तरह उससे अपना संतुलन सम्हालते न बनता था। अनेक बड़ी मक्खियाँ छोटी मक्खियोंको घेर लें और उन्हें काटना शुरू कर दें, इस तरहका आभास उसे होने लगा।

भयभीत होकर उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। उसके शरीरको क्षणक्षणमें जख्मोंकी अधिकाधिक वेदनाएँ हो रही थीं। नन्हे मेमने पर टूट पड़नेवाले भेड़ियेकी तरह लगनेवाली काटती हुई हवा—पद पदपर अपने हाथोंके भाले उसके शरीरमें घुसेड़नेवाले पेड़—उपहाससे हँसनेवाले पृथ्वीपरके असंख्य कंकड़-पत्थर—इन सबका उसके मनको बोध हो रहा था। परंतु उनकी ओर आँखें खोलकर देखनेकी हिम्मत उसमें न थी।

अन्तमें छिन्नभिन्न स्थितिमें वह कहीं भी जाकर गिर पड़ा। बहुत देरके बाद उसने डरते-डरते आँखें खोलकर अपने आसपास देखा। सर्वत्र घोर अँधेरा फैला हुआ था। उसने अपनी दृष्टि ऊपरकी ओर घुमायी। जिस विशाल काले जलाशयकी तलीमें वह पड़ा हुआ था उसके किनारेपर किसीके शुभ्र छोटे छोटे फूल खिले हुए थे।

कुछ समयके पहले रंग खेलनेवाले उन मेघोंका नामोनिशान भी नहीं दिखाई पड़ता था। और वह मोहक आँखोंवाली अप्सरा? वह तो केवल भ्रम—

मसली हुए देह और थके हुए मनको लेकर वह बहुत देरतक उसी तरह पड़ा रहा।

आधी रात हो गयी। उसे किसीकी अस्पष्ट आहट सुनाई देने लगी। क्या, यह भूत होगा?

पतंगका जख्मी शरीर सिहर उठा!

वह कान लगाकर सुनने लगा। धीरे धीरे वे शब्द स्पष्ट रूपसे सुनाई पड़ने लगे,—'मेरे प्यारे, कहाँ हो तुम?—कहाँ कहाँ खोजूँ तुम्हें? अभीतक हम—हम दोनों एक ही हैं—पर मैं तुम्हारी रानी हूँ न? फिर मुझे छोड़कर—राजा—राजा—मेरे राजा—तुम्हारी रानी तुम्हें पुकार रही है——'

अपनी रानीकी पुकारका उत्तर देनेकी उसके मनमें तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। पर उसके मुँहसे शब्द ही नहीं निकलते थे!

● ● ●

७९

मीलका पत्थर

घूमते हुए मैं एक मीलके पत्थरके पास आया। मुझे कुछ थकावट-सी लग रही थी। इसलिये थोड़ा विश्राम लेनेके लिये मैं उसपर बैठनेका विचार करने लगा।

इसी समय मेरे कानोंमें शब्द पड़े, – 'ए मूर्ख मनुष्य ––'

मैं चकित होकर देखने लगा। आसपास कहीं परिंदा भी पर नहीं मार रहा था।

यह सच है कि वह पत्थर एक वीरान मैदानके किनारे था! परंतु दिनदहाड़े वहाँ भूत आते हों यह बात ––

मुझे फिर शब्द सुनाई पड़े, – 'मनुष्यकी तरह मूर्ख प्राणी इस संसारमें दूसरा कोई नहीं होगा!'

उस पत्थरपर जल्दी जल्दी चढ़नेवाला एक काला चमकदार चींटा यह कह रहा था – यह अब कहीं मेरे ध्यानमें आया। मैं कुतूहलसे उसकी बातें सुनने लगा।

वह हँसता हुआ आगे बोला, – 'मनुष्य इस पत्थरको मीलका पत्थर कहकर अपमानित करते हैं! परंतु उन मूर्खोंको यह कहाँ पता है कि यह स्वर्गकी सीढ़ी है!'

वह जल्दी जल्दी ऊपर चढ़ने लगा। उस पत्थरके बिलकुल ऊपर पहुँच गया। फिर वह हर्षातिरेकसे चिल्लाया, – 'अब स्वर्ग केवल दो अँगुल और रह गया है!'

उसके पीछे पीछे अनेक चींटें जल्दी जल्दी ऊपर चढ़ रहे थे। उनमेंका एक मोटा चींटा झटसे आगे बढ़ा। उसका धक्का लगते ही वह पहला चींटा लड़खड़ाकर नीचे गिर पड़ा।

तुरंत ही वह चिल्लाया,—'ऐसे तो मैं नीचे कूदनेहीवाला था। सारी चिउँटियाँ कहती हैं कि यह सीढ़ी स्वर्गसे लगी है। मैं अपनी आँखोंसे देखना चाहता था कि वह सच है या झूठ! पगली कहींकी! यह निरा मीलका पत्थर है। दूसरा कुछ नहीं। मनुष्यके समान चतुर प्राणी दुनियामें दूसरा कोई नहीं!'

● ● ●

८०

विजय-स्तंभ

विजयी राजाने सेनाके साथ नगरमें प्रवेश किया। अनाथ बालकों, विधवा स्त्रियों और अपाहिजोंसे वह कहने लगा, – 'आओ, मेरे पास आओ। मैं शान्तिका उपासक हूँ।'

परंतु कोई भी उसकी बातपर विश्वास करनेके लिये तैयार न होता था।

राजाको बहुत दुख हुआ। नगरमें एक बड़ा स्तंभ बनवाकर उसपर अपने शान्ति-संदेशको खुदानेका उसने निश्चय किया।

एक प्रचण्ड स्तंभ तैयार हो गया। उसपर किसी योगिनीकी तरह दीखनेवाली शान्तिदेवीकी आकृति खुदवा दी गयी! उस देवीकी आँखोंमें माँका वात्सल्य था, गलेमें फूलोंकी माला थी, होंठोंपर उषाका स्मित था, हाथोंमें मेघोंके कुंभ थे।

वह स्तंभ सबको दिखाई दे इसलिये उसको नगरके मध्यभागमें खड़ा करनेका निश्चय किया गया। उसके लिये एक स्थान खोदा जाने लगा। उस स्थानको खोदते हुए उसमें अनेक टूटे-फूटे पत्थर मिलने लगे। उन पत्थरोंपर चित्रविचित्र आकृतियाँ खुदी हुई थीं। उन आकृतियोंका अर्थ किसीकी भी समझमें न आता था।

सारे पत्थर बाहर निकालकर दूर एक पर्वतपर रहनेवाले अन्वेषकके यहाँ भेज

दिये गये। राजाके द्वारा तैयार किया गया स्तंभ नगरके मध्यभागमें बड़ी धूमधामसे खड़ा कर दिया गया। प्रत्येक नागरिक आते-जाते उस स्तंभके पास रुकता, शान्ति-देवीको प्रणाम करता, और उसपर खुदे हुए 'मैं शान्तिका उपासक हूँ'– शब्दोंको मुँहसे कहकर आगे बढ़ जाता।

राजा कृतकृत्य हो गया।

यह देखनेके लिये कि उन पत्थरोंकी आकृतियोंका मतलब अन्वेषककी समझमें आया या नहीं, राजा एक दिन उस दूरवर्ती पर्वतपर गया।

अन्वेषक आनंदसे नाचता हुआ उससे बोला,– 'महाराज, ये पत्थर मामूली नहीं हैं। इन सबपर मिलकर एक आकृति खुदी हुई है। इस आकृतिकी आँखोंमें माँका वात्सल्य है, उसके गलेमें फूलोंकी माला है, होंठोंपर उषाका स्मित है, हाथोंमें मेघोंका कुंभ है। उस आकृतिके नीचे 'मैं शान्तिदेवीका उपासक हूँ' शब्द खुदे हुए हैं। मेरा नम्र निवेदन है कि इन सब पत्थरोंको जोड़कर, आप उस मूर्त्तिको तैयार करें और नगरदेवीके रूपमें नगरमें उसकी स्थापना करें! यह अत्यंत प्राचीन शिल्प है और उस शिल्पकी कला भी कितनी सुंदर है!'

अन्वेषक समझ न पाया कि राजा चुपचाप गर्दन लटकाये वापस क्यों चला गया।

● ● ●

८१

दुःख

मैं अत्यंत बेचैन हो गया। दुनियामें जहाँ देखता, वहाँ एक ही दृश्य मुझे दिखायी देता था। बड़ी मछली छोटी मछलीको निगल जाती थी।

मैं ज्ञानवृद्ध धर्मपंडितोंके पास गया। उनसे मैंने अपना दुःख कहा। उन्होंने मेरी ओर विचित्र दृष्टिसे देखा। वह दृष्टि पुटपुटा रही थी— 'पागलखानेसे भागा हुआ कोई पागल होगा यह!'

मेरे सामने जीर्ण पोथियोंका ढेर लगाते हुए वे बोले, —'इन पोथियोंको पढ़, जिससे तेरा समाधान होगा। अरे पागल, जबसे संसारका निर्माण हुआ है तबसे यही होता आ रहा है। इस संसार-चक्रकी मूल खोज़ निकालना परमेश्वरको महा-मूर्ख मान लेनेके समान है।'

उन्हें बुरा न लगे इसलिये मैंने उन पोथियोंके पन्ने उलटकर देखे। परंतु मेरे हृदयमें चुभ गये हुए काँटेकी नोक बोंथरी नहीं हुई। बल्कि मुझे यह आभास हुआ कि उसमें कोई विषैली चीज़ चुपड़ दी गयी है।

उनसे बिदा लेकर मैं वैज्ञानिकोंके पास गया। मैंने उनके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया। वे मेरी ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। शायद उन्हें यह लगा हो कि चन्द्रमा या मंगलसे आया हुआ यह कोई प्राणी है! आकृतियों और

आँकड़ोंसे भरे हुए अनेक मोटे मोटे ग्रंथ मेरी ओर फेंकते हुए वे बोले, – ‘इन्हें पढ़कर देखो, तो तुम्हें जो पहेली तंग कर रही है, वह क्षणार्धमें हल हो जायेगी। बड़ी मछली छोटी मछलीको निगले, यह सृष्टिका न्याय ही है।’

उनके संतोषके लिये मैंने उन ग्रंथोंके पन्ने उलटकर देखा। परंतु वे मुझे संतोष न दे सके।

पारधीके भयसे दौड़नेवाले हरिणकी तरह मैं मारा मारा घूमा। झोपड़ीसे लेकर राजमहलतक, और देवालयसे लेकर श्मशानतक, सर्वत्र मैंने चक्कर काटे। प्रत्येकसे मैंने यह एक ही प्रश्न पूछा। सबने मुझे सहानुभूति दिखायी और मुझे पागल समझा।

एक मानस-शास्त्र-विशारदने मुझे सलाह दी, – ‘अन्तर्मनकी अतृप्त इच्छाके कारण तुम इस तरह पागल जैसा बर्ताव कर रहे हो। सच पूछा जाय तो मछलियाँ कितनी स्वादिष्ट होती है, यह चखकर देखनेकी तीव्र इच्छा तुम्हें हो रही है! परंतु तुम्हारे सारे संस्कार इस आहारके विरुद्ध हैं। इसलिये तुम्हें यह प्रश्न एक भूतकी तरह डरा रहा है। मित्र, एक बार दिल पक्का करो और मछलियाँ खाओ। जब तुम छोटी और बड़ी दोनों प्रकारकी मछलियोंको बड़े स्वादसे चपचप करके खाने लगोगे, तब तुम्हारे ध्यानमें आ जायेगा कि उनमेंकी कौन किसको निगलती है, यह प्रश्न कितनी मूर्खताका है।’

एक काम-शास्त्र-पारंगत मेरे कानसे लगकर धीरे धीरे कहने लगा,– ‘पगले, तेरी विवाहकी उम्र हो गयी है, इसलिये तुझे यह आभास निरंतर हो रहा है। बचपनमें तूने कविताओंमें पढ़ा था न कि स्त्रीकी आँखें मछलीकी तरह होती हैं? वही विचार तेरे मनके बहुत भीतर तलमें बैठा है। भैया, कोई सुन्दर स्त्री खोज़ ले और उसके साथ भाँवर फिर ले। जब तुझे यह पता चल जायेगा कि उसकी आँखोंमें छोटी और बड़ी मछलियाँ किस तरह खुशीसे एक साथ रह रही हैं, तो तुझे जो आभास हो रहा है वह बातकी-बातमें गायब हो जायेगा।’

किसीने कहा,– ‘तुम्हारे सामने कोई ध्येय नहीं है, इसलिये तुम्हें ऐसा हो रहा है। ध्येयवादी बनो।’

किसीने उपदेश दिया,– ‘अरे पागल, तेरे मनमें जो कल्पनाएँ आ रही हैं, वे काव्यके लिये बड़ी अनुकूल हैं। बेटा, तू कवि बन!’

इस तरह किसीने कुछ, किसीने कुछ कहा। उपदेशके बराबर सस्ती चीज़ दुनियामें दूसरी कोई नहीं होती!

परंतु मेरे मनकी बेचैनी उसी तरह बनी रही। मैं दुनियासे ऊब उठा। आत्महत्याके विचार मेरे मनमें बार बार आने लगे।

एक दिन शामको घूमता हुआ मैं आबादीसे बहुत दूर निकल गया। ऐसा भ्रम हुआ जैसे पश्चिम दिशामें बड़ा दावानल जल रहा था। फिर भी मैं चला ही जा रहा था। वह दावानल बुझ गया। सब तरफ़ काले कोयले फैल गये। फिर भी मैं आगे ही बढ़ा जा रहा था। बीचहीमें मुझे लगा, अभीतक यह दावानल पूरी तरहसे न बुझा होगा! इन कोयलोंसे भी उसकी चिनगारियाँ चमक रही हैं।

मैं एक खुले मैदानपर आया। वहाँ एक बालक आकाशकी ओर दृष्टि लगाये बैठा हुआ था और गा रहा था।

मैं धीरेसे उसके पास गया। उसका गाना अब मुझे स्पष्ट रूपसे सुनाई पड़ने लगा। उसमेंके एक शब्दका भी अर्थ मेरी समझमें न आया। परंतु उसके मीठे सुरोंसे मेरा प्रक्षुब्ध मन धीरे धीरे शान्त होने लगा।

मेरी आहट पाते ही वह बालक उठा, मेरी ओर दौड़ता हुआ आया और मेरे गलेमें बाहें डालकर बोला,—'कहानी कहिये, मुझे कोई एक नयी कहानी सुनाइये। बहुत दिनोंसे किसीने मुझे नयी कहानी नहीं सुनायी है।'

मैं नीचे बैठ गया। मेरी गोदमें सिर रखे हुए आकाशकी ओर देखनेवाले उस बालकसे मैं कथा—कथा काहेकी?—अपनी व्यथा सुनाने लगा।

'एक बहुत बड़ा समुद्र था। उसमें बहुत-सी मछलियाँ थीं। कुछ छोटी थीं, कुछ बड़ी थीं। एक दिन वहाँकी एक बड़ी मछली और छोटी मछलीमें लड़ाई हो गयी। बड़ी मछलीने छोटी मछलीको कसमसाकर काट खाया। उसका खून उसे बड़ा स्वादिष्ट लगा। बड़ी मछलीने हँसते हँसते मुँह खोला और वह छोटी मछलीको निगल गयी।

'उस दिनसे उस समुद्रमें निरंतर ऊधम मच गया। जब इच्छा होती तभी बड़ी मछली अपनेसे छोटी मछलीको निगल जाने लगी।'

बोलते बोलते मैं रुक गया।

उस बालकने उत्सुकतासे प्रश्न किया —

'आगे क्या हुआ?'

मैंने विषण्ण मनसे कहा —

'कुछ नहीं!'

मेरी ओर चकित दृष्टिसे देखता हुआ वह बोला, – 'ऐसा कैसे होगा ?'

मैंने उत्तर दिया,– 'वे बड़ी मछलियाँ किसीकी भी नहीं सुनतीं !'

वह बालक तड़ाकसे उठ बैठा और मेरी उँगली पकड़कर मुझे उठाता हुआ बोला, – 'चलो, हम उस समुद्रके पास चलें। वहाँ जानेपर तुम्हारी ओर उँगली दिखाकर मैं उन बड़ी मछलियोंसे कहूँगा, 'ये मुझसे कितने अधिक बड़े हैं। पर ये मुझे तंग नहीं करते। मुझे यदि कोई खाने आयेगा, तो मैं इनके पीछे जाकर छिप रहूँगा। तुम्हें भी इसी तरहका बर्ताव करना चाहिये !'

लड़केके ये शब्द सुनते हुए मेरी आँखोंमें आँसू भर आये।

तुरंत ही वह बालक डबडबाई हुई आँखोंसे मेरी ओर देखने लगा। गद्‌गद स्वरमें उसने मुझसे पूछा, – 'आप क्यों रोते हैं ?'

अपने आँसुओंका कारण मुझे उससे कहते नहीं बनता था। जिनके यहाँ मैं आजतक गया था वे सारे वैज्ञानिक, धर्मपंडित और बड़े बड़े लोग मेरी आँखोंके सामने खड़े हो गये थे। इस कल्पनासे कि किसी समय वे भी इसी बालककी तरह होंगे, मेरा मन व्याकुल हो गया था।

● ● ●

८२

कलंक

वह एक नया राज्य था। इस नये राज्यमें नये जगको निर्मित करनेकी प्रतिज्ञा करके महामंत्रीने राज्यव्यवस्थाकी बागडोर अपने हाथमें ली थी।

इस नये जगके स्वप्न दिखाई दें, इसलिये महामंत्री अनेक बार अपनी प्रासाद-तुल्य पर्णकुटीकी अटारीपर बैठा करते थे।

उनके कुछ शत्रु कहा करते,– 'वे वहाँ बैठकर हवा खाया करते हैं।'

कुछ विरोधी उनकी हँसी उड़ाया करते। कहते,– 'पत्नीके होंठोंसे होंठ लगाये बिना महामंत्रीजीका मस्तिष्क ही काम नहीं करता!'

महामंत्री जानते थे कि विरोधियोंकी जीभमें हमेशा ही विष चुपड़ा रहता है। इसलिये इस प्रकारके कुत्सित उद्‌गारोंकी ओर उन्होंने कभी भी ध्यान न दिया।

पुराने ज़मानेकी सारी अपवित्रताको किस तरह निकाल दें, इसका विचार करनेमें उन्होंने कितनी ही रातें बिता दीं। नाना प्रकारकी कल्पनाएँ उन्हें सूझती थीं। उन कल्पनाओंकी भीड़को देखकर उनके मनमें आया कि– ध्येयवादी भी एक प्रकारका शराबी होता है!

लेकिन इस कल्पनाके मनमें आते ही उनका बदन सिहर उठा। भूलसे ही क्यों न हो, पर शराबकी कल्पना मेरे मनको छू गयी, इसका उन्हें विलक्षण दुःख हुआ।

वे तुरंत ही उठे और प्रायश्चित करनेके लिये आधी रातके कड़ाकेके जाड़ेमें उन्होंने शीतल जलसे स्नान किया !

• • •

एक दिन आधी रातको इसी तरह वे बैठे हुए विचार कर रहे थे।

जुम्हाई लेनेके लिये उन्होंने ऊपर देखा। आकाशमें पूर्ण चन्द्रबिंब हँस रहा था। महामंत्री उसकी ओर देखने लगे। क्षणार्धमें उनके भव्य भाल-प्रदेशपर शिकनें दिखाई देने लगीं; उस चंद्रमापर एक काला दाग़ स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

हमारे राज्यमें इस चन्द्रमापर कलंक हो ? इस नये युगमें ? और मेरे महामंत्री होते हुए ? नये जगकी निर्मिति करनेके लिये किसी योगीकी तरह मेरे रात-रातभर चिंतन करते हुए ?

महामंत्री उठे और नीचे देखते हुए अस्वस्थ मनसे अटारीपर टहलने लगे। उन्होंने अपने मनमें प्रतिज्ञा की कि कुछ भी हो अपने राज्यके इस चंद्रमापरका कलंक दूर करना ही चाहिए।

प्रतिज्ञा करके उन्होंने फिरसे ऊपर देखा। आकाशका कलंकित चंद्रबिंब कुछ समयके पहलेकी तरह ही हँस रहा था। उन्हें उस चटोर चन्द्रमापर बड़ा तरस आया। अटारीपर घुटने टेककर, आँखें बंद किये हुए वे परमेश्वरकी प्रार्थना करने लगे,—' प्रभो ! इस कलंकित चन्द्रमाको क्षमा कर दीजिये। इस अभागे जीवनको अपने पापका भी ज्ञान नहीं है।'

• • •

दूसरे दिन महामंत्रीने इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर विचार करनेके लिये राजधानीके सारे विद्वान नागरिकोंकी सभा बुलायी। चंद्रमापरका कलंक किस तरह दूर किया जाये, इस विषयमें सूचनाएँ करनेके लिये उस सभामें एक प्रतिनिधि-समिति नियत की गयी। सभामें लड़के, स्त्रियाँ, साहित्यिक और बेकार लोगोंकी बड़ी भीड़ थी। इनमेंसे हरएकका एक एक प्रतिनिधी इस समितिमें लिया गया।

इसी समय दाढ़ी बढ़ी हुई, बदनपर फटे कपड़े पहना हुआ एक वृद्ध उस भीड़से आगे बढ़ा और बोला,—' मुझे भी समितिमें लीजिये, महाराज!'

' किसके प्रतिनिधि होकर तुम समितिमें शामिल होना चाहते हो?'—महामंत्रीने मृदु स्वरमें प्रश्न किया।

उसने पीछे मुड़कर देखा। सभामें एकत्रित हुए लोगोंमें उसकी तरह फटे

कपड़े पहना हुआ एक भी व्यक्ति न था। सारे पुरुष दाढ़ी घोंटकर आये थे। उन हज़ारों लोगोंमें उसकी तरह झुर्रीदार चेहरेवाला एक भी पुरुष नहीं दीख रहा था!

वह गर्दन झुकाकर महामंत्रीसे बोला,–'मैं किसीका भी प्रतिनिधि नहीं हूँ। मेरी जातिके लोग दुनियामें हमेशा ही थोड़े हुआ करते हैं-पर–मैंने अपना सारा जीवन ग्रहलोकके अवलोकनमें बिताया है!'

'ग्रहलोकके अध्ययनका स्थान ज्योतिष-विद्यामंदिरमें है। इस प्रतिनिधि समितिमें नहीं।'

महामंत्रीके इस उत्तरका सभाने प्रचण्ड करतल ध्वनिसे स्वागत किया।

'परंतु–मंत्रिमहाराज—' वह वृद्ध स्थानसे टससे मस न होकर बड़े तावसे कहने लगा।

'यह कोई पागल मालूम होता है।'–महामंत्रीने हँसकर कहा।

उन्होंने शीघ्र ही रक्षकोंको संकेत किया। पागलको एक पलके भीतर सभासे हटा दिया गया।

'महामंत्रीकी जय'के नारोंमें सभा समाप्त हुई।

• • •

पागलखानेमें रखा हुआ वह बूढ़ा अधिकारीसे प्रति दिन पूछता,–'उस समितिकी सूचनाएँ प्रकाशित हो गयीं क्या?'

अधिकारीको उसके इस विचित्र पागलपनपर बड़ा आश्चर्य होता। सूचनाएँ प्रकाशित होते ही, उसने वह सूचना-पत्र लाकर उस वृद्धको दिखाया। लेकिन उसे देते हुए वह धीरेसे बोला,–'आज महामंत्रीजी पागलखानेका निरीक्षण करने आ रहे हैं। सूचना-पत्र पढ़ लेनेके बाद उसे छिपा देना। उन्हें यह पता नहीं चलना चाहिए कि तुझे वह मैंने दिया है।'

सूचना-पत्रको पढ़ना आरंभ करते ही उस वृद्धकी मुद्रापर पहले मंद स्मित उमड़ पड़ा, फिर वह धीरेसे हँसा और अंतमें तो किसी भी तरह उसे उससे अपनी हँसी रोकी नहीं जा रही थी।

पागलखानेके अनेक पागल उसके चारों तरफ़ इकट्ठे हो गये। परंतु कोई भी यह नहीं समझ पा रहा था कि उसे इतना आनंद क्यों हो रहा है।

वह बूढ़ा बार बार उस पत्रको पढ़ता और खिलखिलाकर हँसने लगता।

अंतमें सारे पागलोंके आग्रहसे वह उस सूचना-पत्रको ज़ोरसे पढ़ने लगा —

चन्द्रमापरका कलंक

लड़कोंके प्रतिनिधिका मत ।

चन्द्रमाका धब्बा सफेद शुभ्र स्याहीसोख पर गिरी हुई स्याही है। यह धब्बा नहीं निकल सकता। परंतु सरकारको इस बातका अवश्य विचार करना चाहिए कि चाँदनीसे स्याहीसोख तैयार करके वे अपने राज्यमें सब विद्यार्थियोंको बिना मूल्य किस तरह वितरण किये जा सकते हैं।

स्त्रियोंके प्रतिनिधिका मत ।

चन्द्रमाका धब्बा काजलका दाग़ है। ऐसा लगता है कि काजल लगाते समय चन्द्रमाका हाथ भूलसे उसके गालपर पड़ गया होगा, दर्पणके सामने जब वह खड़ा होगा तब उसे वह दाग़ दीख जायेगा और वह उसे सहज ही पोंछ डालेगा। हमारी सरकारको इसके लिये इतना चिंतित होनेका कारण नहीं। परंतु इस उदाहरणसे एक बात स्पष्ट होती है। पुरुष आजकल आँखोंमें काजल लगाने लगे हैं। ललनाओंके नैसर्गिक अधिकारपर पुरुष जातिका यह अतिक्रमण है। इसलिये पुरुषोंके बारेमें काजलबंदीका क़ायदा सरकारको जितने जल्दी संभव हो उतने जल्दी अमलमें ले आना चाहिए।

साहित्यिकोंके प्रतिनिधिका मत ।

साहित्यिकोंमें सदा ही दलबंदी होती है। इसलिये मेरा प्रामाणिक मत यह है कि चन्द्रमापर दाग़ दो प्रकारसे हो सकता है। एक तो यह हो सकता है कि अपने नन्हेको कुदृष्टिसे बचानेके लिये उसकी माँने गालपर वह दिठौना लगा दिया हो! अथवा यह हो सकता है कि प्रणयके समय चन्द्रमाकी प्रणयिनीने उसके गालको काट खाया हो और यह दाग़ उसी दंशका चिन्ह हो। (कृपाकर हॅवलॉक एलिस देखिये।) व्यक्तिशः मैं दूसरे मतको ही स्वीकार करूँगा। पहला मत वात्सल्य रसका पोषक है। परंतु साहित्यके आधुनिक बाज़ारमें इस रसका भाव बहुत उतर गया है। इस दाग़को पोंछनेका प्रयत्न करना मूर्खता होगी। प्रेमके चिन्ह अमर होते हैं। भारतके ताजमहलपर लिखी हुई कविताओंको हमारी सरकार एक बार अवश्य पढ़कर देखे।

बेकारोंके प्रतिनिधि[illegible] मत ।

यह दाग़ कैसे पड़ गया — यह कहना बड़ा कठिन है। यह कहनेके

लिये विद्वत्ताकी आवश्यकता है। विद्वत्ता केवल शालामें ही प्राप्त होती है। हमने कभी शालाका मुँह नहीं देखा। इसलिये इस विषयमें हमारा कुछ अधिक कहना सत्यका विपर्यास करना होगा।

परंतु यह दाग़ दूर किस तरह किया जाय, यह बतानेका अधिकार हमारा ही है। यहाँसे चन्द्रमातक पहुँच सके ऐसी एक नसेनी बनायी जाये– परंतु उसे बनानेमें बहुत दिन लग जायेंगे। हमारे राज्यकी मामूली नसेनी-पर ही एक बेकार चढ़े, फिर दूसरा बेकार उसके कंधेपर खड़ा हो, इसके बाद तीसरा बेकार चढ़कर दूसरेके कंधेपर खड़ा हो – इस तरह करते करते आखिरी मनुष्यके हाथमें चन्द्रमा आते ही, वह अपने जेबसे रुमाल निकालकर उसे अपने आँसुओंसे भिगोकर कलंकको पोंछ डालना चाहिए। सरकार यदि इस योजनाको अमलमें लावे, तो अपने राज्यका चन्द्रमा तो निष्कलंक होगा ही। लेकिन इसके साथ ही बेकारीकी समस्याको अत्यंत सरल रीतिसे हल कर देनेका श्रेय भी महामंत्रीको प्राप्त हो जायेगा।'

• • •

उस सूचना-पत्रका पढ़ना समाप्त हुआ ही था, तभी महामंत्री पागलखानेका निरीक्षण करने आ पहुँचे।

निरीक्षण करते करते वे उस वृद्धके पास आकर खड़े हो गये।

'कहिये, सब ठीक है न, वैज्ञानिकजी?' – उन्होंने स्नेहसिक्त स्वरमें प्रश्न किया।

'सर्वत्र आनंद ही आनंद है, महामंत्रीजी, परंतु आपसे एक छोटीसी भूल हो गयी है।'

अहिंसात्मक पद्धतिसे आँखें तरेरकर महामंत्रीने पूछा,–'भूल? और मुझसे?'

'भूलकी क्या बात? वह तो भगवानसे भी हो जाती है?' – महामंत्रीकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखता हुआ वह वृद्ध बोला। क्षणभर चुप रहकर वह फिर बोला, – 'आपने मुझे पागलखानेकी सज़ा दी। परंतु मेरे अपराधकी तुलनामें वह बहुत सौम्य है। आपको तो मुझे समुद्रमें डुबो देना चाहिए था!'

'वह किसलिये?'

'आपके राज्यको लगा हुआ कलंक हूँ मैं।'

• • •

८३
घाटी और पर्वत

ईश्वर सृष्टिकी रचना करने लगा।

युगोंसे उसकी आँखोंके सामने अनगिनती कल्पना-चित्र नाच रहे थे। उसे ऐसा हो गया था कि उनमेंके किनको पहले रँगूँ और किन्हें बादमें। उन कल्पना-चित्रोंमें एक विशाल सागर था; उसके पृष्ठ-भागपर सुन्दर फीके नीले रंगकी लहरें आँखमिचौली खेल रही थीं। उन लहरोंकी तरह ईश्वरके मनमें भी अनंत सौन्दर्य उमड़ रहे थे। उनमेंकी एक मोहक आकृतिके थोड़ी अस्पष्ट-सी होते ही, वहाँ तुरंत दूसरी अंकित हो जाती।

ये सारे चित्र साकार हो जावें, इसलिये वह सृष्टिको जल्दी जल्दी बनाता गया — उसकी कल्पनारूपी मकड़ी जिस तरह कोमल सुंदर जाल फुर्तीसे बुननेवाली थी उस तरह, उसकी कल्पनाका कवि जैसी मधुर और मोहक पँक्तीयाँ लिखनेवाला था उस तरह। उसकी कल्पनासे फूल, तारिकाएँ, घाटी, पर्वत, नदी, समुद्र आदि सहस्रों वस्तुएँ निर्मित होने लगीं। उनके रंग, रूप और आकार कैसे हैं, इसका उसे भी ज्ञान न होता था। प्रत्येक वस्तुको निर्माण करते समय वह आनंदके समुद्रमें डूब रहा था। परंतु प्रत्येक वस्तुकी निर्मिति होते ही उस समुद्रके निकट-वर्ति असंतोषके रेतीले मैदानमें वह छटपटाकर गिर पड़ता था। फिर उस

असंतोषसे छुटकारा पानेका एक ही मार्ग उसे दिखाई देता और वह था आगेके सृजनमें खो जानेका !

ईश्वरके सारे स्वप्न साकार हो गये । अनिर्वचनीय आनंदसे उसका अंतःकरण भर गया । अब उसने सोचा कि विश्राम किया जाय । परंतु उस विचारने उसके मनमें प्रवेश किया ही था तभी अनेक काँटोंने उसकी नाकमें दम कर दिया । वह ध्यानसे देखने लगा कि वे काँटे कौनसे हैं । सृजनके आनंदमें जिस असंतोषके शूल उसे बोंथरे लगे थे, वही अब उसे तीव्रतासे चुभने लगे ।

निर्मितिके परिश्रमसे वह थक गया था; परंतु इस कंटकशैयापर पड़े हुए विश्राम करना असंभव था । वह उठा । यह देखनेके लिये कि मेरे द्वारा निर्मित प्रत्येक वस्तुमें कहीं कोई दोष तो नहीं रह गया है; वह सृष्टिमें सर्वत्र घूमने लगा ।

पहले उसने आकाशकी तारिकाओंकी पूछताछ की ।

वे हँसकर बोलीं, – 'देवाधिदेव, हमारा सब ठीक चल रहा है । कोई–कोई कमी नहीं है हमें । लेकिन हममेंसे किसी एकाधके मनमें बीचहीमें आ जाता है —'

'क्या आ जाता है ?' – ईश्वरने उत्सुकतासे प्रश्न किया ।

'वे नीचे फूल दीख रहे हैं न ? वे हमसे अधिक सुंदर हैं । अच्छा होता यदि ईश्वर हमें पृथ्वीपर पैदा करता; उसे लगता है कि फिर मैं अधिक सुंदर दीखती । परसों इस पागलपनके आवेशमें एक नीचे कूद पड़ी —'

'और फूल बनकर वह पृथ्वीपर हँसने लगी ?'

'आँ हाँ ! पत्थर होकर पड़ी हुई है वहाँ !'

ईश्वर हँसते हँसते समुद्रके किनारे गया । समीप ही एक नदी सागरमें मिली थी । उस संगमपर उसे बड़ा विलक्षण दृश्य दिखाई दिया । नदी और समुद्र आपसमें लड़ रहे थे । समुद्र अपने हाथोंसे नदीको पीछे हटा रहा था । नदी अपनी भुजाओंमें उसे कसकर भर रही थी । दोनों ज़ोर ज़ोरसे चिल्ला रहे थे ।

ईश्वरने नदीसे कहा, – 'यदि तुम दोनोंकी आपसमें न पटती हो, तो मैं तुम्हें पीछे ले चलता हूँ ।'

नदी हँसी और बोली, – 'पीछे जाकर छोटासा तालाब बनकर रहनेकी और कीचड़से भर जानेकी मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है । मुझे विशाल जीवन जीना है । इस समुद्रका खारापन मैं पसंद नहीं करती । परंतु उससे मैं एकरूप हो जाना चाहती हूँ ।'

ईश्वर समुद्रकी ओर मुड़कर बोला, – 'यदि तुझे यह नदी पसंद न हो, तो —'

खिलखिलाकर हँसते हुए समुद्रने उसे बीचहीमें रोक दिया। वह बोला, – 'भगवान, तुम्हारी सृष्टिका तुम्हें ही कोई ज्ञान नहीं है! मैं नदीसे लड़ता अवश्य हूँ; परंतु उसका कारण दूसरा है। बिना लड़े प्रेमपर कभी रंग ही नहीं चढ़ता!'

ईश्वर हँसता हुआ आगे बढ़ गया। इस कल्पनासे कि मेरी सृष्टिमें कहीं कोई दोष नहीं रहा है, वह आनंदित हो गया था। घूमते-घामते वह एक ऊँचे पर्वतके और गहरी घाटीके बीचमें आ पहुँचा।

उसने पर्वतसे पूछा, – 'क्यों बाबा, सुखसे तो हो न?'

पर्वतने इतनी जोरसे गर्दन हिलाकर 'ना' कहा कि ऐसा लगने लगा कि कहीं उसका शिखर टूटकर तो नीचे न आ गिरेगा। वह माथेपर बल चढ़ाकर बोला,– 'भगवन, इस पोलमें ऊँची गरदन करके रात-दिन मुझे खड़ा रहना पड़ता था। मेघ आते-जाते मुझसे ठठोली करते हैं, मुझे चपत ज़माते हैं। परंतु उनसे मैं बदला नहीं ले सकता। अपनी जगहसे टस से मस नहीं हो सकता मैं। मेरी तुलनामें देखिए यह नीचेवाली घाटी कितनी सुखी है! उसे स्रोतका सुन्दर कमरबंद है। उसके पैरके पक्षियोंके पैंजन हमेशा रुमझुम रुमझुम करते रहते हैं। सूरज ऊग आता है, फिर भी कोहरेकी सुन्दर नीली-सी रजाई ओढ़कर वह गहरी नींद सो सकती है। कुछ भी करो, भगवान, और मुझे उसकी जगह ले चलो!'

ईश्वरने घाटीसे पूछा, – 'तुम तो सुखी हो न?'

नाक सिकोड़कर घाटीने उत्तर दिया,– 'ईश्वरजी, तुम बड़े अन्यायी हो। पर्वतकी दासी बनाकर तुमने मुझे पैदा किया। उसके पैरोंसे मुझे कसकर बाँध दिया। रातको यदि वह सिर्फ़ अपना हाथ ऊँचा कर दे तो मज़ेसे आकाशके तारे तोड़ सकता हैं, परंतु उसकी माला बनाकर पहननेके लिये केश कहाँ हैं उसके पास? नंग-धडंगा निरा पत्थर तो है वह! मैं उन आकाशके फूलोंको चाहती हूँ। मुझे पर्वतकी जगह ले चलो!'

'तथास्तु!' – कहकर ईश्वर विश्रामके लिये चल दिया।

अपनी युग निद्राको समाप्त कर वह सृष्टिका निरीक्षण करनेके लिये लौटा। पृथ्वीपर फूल हँस रहे थे। आकाशमें तारिकाएँ चमक रही थीं। नदी और समुद्रका प्रेमकलह पहले जैसा ही जारी था। लेकिन पहले जिस जगह घाटी थी,

वह घाटी न दीखती थी और जहाँ पर्वत था वहाँ पर्वत न दिखता था। एक वीरान मैदान वहाँ फैला हुआ था।

इस दृश्यको देखकर ईश्वर खिन्न हो गया। इसी समय उस रेतीले मैदानके भीतरसे बिलकुल गहरे स्वरमें उसे शब्द सुनाई पड़े, – 'भगवान! मुझसे भूल हुई। क्षमा कीजिये। मैं पोलमें आनंदसे रहूँगा ...'

'भगवान! मैंने भूल की, क्षमा कीजिये मुझे। पर्वतके चरणोंमें रहकर भी बहुत सुख है ...'

●●●

८४

अहंकार

एक चिउँटी शक्करके कणकी खोजमें घूम रही थी। घूमते-घामते उसे मटरका एक दाना दिखाई दिया। वह डरते-डरते उसके पास गयी और स्नेहपूर्ण स्वरमें बोली, – 'तुम कौन हो, जी?'

'मैं? मेरा नाम तू नहीं जानती? मैं एक नया ग्रह हूँ। शुक्रसे भी अधिक सुंदर। मुझे बनानेके बाद ब्रह्माजी कितनी ही देरतक मुझे कौतुकसे देखते हुए बैठे रहे थे! पर हाँ, तू कौन है?'

'मैं हरिणसे भी सुंदर एक नया प्राणी हूँ। हाथी, सिंह, हरिण – इन सबको बनानेके बाद भी ब्रह्माजीको संतोष न हुआ। तब उन्होंने अपने चारों सिरोंकी बुद्धि इकठी करके बड़े प्रयाससे मुझे बनाया।'

मटरका दाना बोला, – 'हे ब्रह्माजीके प्रिय प्राणी, मैं तुम्हारा हार्दिक अभिनंदन करता हूँ।'

चिउँटी मधुर स्मित करती हुई बोली, – 'हे ब्रह्माजीके प्रिय ग्रह, मैं भी तुम्हारा हार्दिक अभिनंदन करती हूँ।'

इसी समय एक बालक रेंगते-रेंगते वहाँ आया। मटरके दानेको चटसे मुँहमें डालकर वह चिउँटीको पकड़ने लगा। वह उसकी पकड़में न आती थी। उस गड़बड़ीमें वह कब कुचल गयी इसका उस बालकको भी पता न चला!

● ● ●

८५

आत्मा

राखकी एक बड़ी ढेरीमें एकदम कोई चीज़ चमकी। बादलोंमें बिजली चमके उस तरह।

निद्राधीन ढेरीको उस चमकनेका बोध हुआ। अध-खुली आँखोंसे उसने पूछा,—'कौन, कौन है वह? मेरी समाधिको भंग कौन कर रहा है?'

'मैं—मैं—अग्निका एक कण।'

'अग्नि?'

'हाँ, अग्नि!'

'दूर हो। हे पापी प्राणी, मुझसे दूर हट जा। हमारा कुल राखका है। हमारी परंपरा शान्तिकी है। हम अहिंसाके उपासक हैं। 'जलाना' शब्द भी हम अपने कोशसे निकाल देनेवाले हैं।'

'जिसमें हिंसा करनेकी शक्ति ही नहीं है, वह यदि अहिंसाका पुराण—'

'चुप! हमारे सिरपर भी यदि कोई पैर रख दे, फिर भी हम उसे नहीं जलाते। अग्नि अत्याचारी है। वह जलाती है। चलो, भागो, अपना मुँह काला करो यहाँसे—'

वह कण हँसता हुआ बोला,—'मुझे तो ईश्वरने चमकना सिखाया है। फिर मैं अपना मुँह काला कैसे करूँगा?'

राखकी ढेरी चिढ़ उठी। उसने अपना अंग मथा। वह अग्निकण राखकी एक तहमें लुप्त हो गया।

थोड़ी देरके बाद ऊपरकी राखने पुकारा,– 'अरे ओ अग्निके कण! —'

भीतरसे किसीने भी पुकारका कोई उत्तर न दिया।

फिरसे ऊपरकी राखने पुकारा, 'अरे, ए चतुर कण —'

भीतरसे शब्द आये, – 'क्या है?'

'वहाँ क्या कर रहा है तू?'

'मैं शान्तिकी उपासना कर रहा हूँ।'

'बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!'

'परंतु मित्र। एक बात ध्यानमें रखना। मेरी इस उपासनामें किसीकी भी रुकावट मुझे सहन न होगी। कहींसे भी कोई अग्निका कण आ जायेगा और व्यर्थकी चखचख करने लगेगा —'

ढेरीने हँसते हुए उत्तर दिया,– 'इसकी तुम कुछ भी फिक्र न करो। तुम अपनी शान्तिकी उपासनाको निर्विघ्न चालू रखो।'

● ● ●

८६

परिक्रमा

चारों ओरसे लोगोंके दलके दल मंदिरकी ओर चले आ रहे थे। जैसे भिन्न भिन्न दिशाओंसे समुद्रमें आकर मिलनेवाली नदियाँ।

आज भगवानकी परिक्रमाका दिन था।

उस भीड़को देखकर, एक भिखारीका बालक ललचाई दृष्टिसे मंदिरकी ओर मुड़ा।

मंदिरका कलश सूर्यप्रकाशमें जगमगा रहा था। जैसे किसी सम्राटके मुकुटका देदीप्यमान रत्न।

उस बालकने क्षण भरके लिये भी उस कलशकी ओर कुतूहलसे न देखा। लोग मंदिरके महाद्वारसे चिंउँटियोंकी तरह भीतर जा रहे थे। उस बालकने इतना ही देखा था कि आसपास बिना कहीं शक्करके दानोंके चिंउँटियाँ इस प्रकारके दल बाँधकर नहीं जातीं।

उसने हरएकके सामने बार बार हाथ पसारा। किन्तु वह खाली ही रहा।

इतनेमें एक तेजस्वी सन्यासी कर्कश स्वरमें संस्कृतका श्लोक गुनगुनाता हुआ उसके सामनेसे निकल गया।

एक रूपवती नर्तकी उसकी ओर कुछ देखती और न देखती हुई-सी भीतर अदृश्य हो गयी। जाते जाते उसके पैरोंकी पाजेबें अवश्य ज़ोरसे बजीं।

धनी और विद्वान्, व्यापारी और कृषक, रंभा और कुब्जा – उसके सामनेसे मनुष्योंका समुद्र गरजता हुआ जा रहा था। उस समुद्रकी अगणित लहरें नृत्य करती हुई आयीं और हँसती-खेलती चली गयीं। लेकिन वह बालक अवश्य सूखा ही खड़ा हुआ था।

अन्तमें महाराजकी सवारी आयी। सारी आशा बालककी आँखोंमें आकर सिमट गयी। लेकिन राजाधिराजका ध्यान भगवानकी ओर था। उन्होंने महाद्वारके इस पार ही आँखें बंद करके भगवानकी वंदना की। उस ध्यान-मग्न स्थितिमें ही वे भीतर गये।

अब उस बालकसे न रहा गया। भीड़के भीतर घुस रहे एक छोटे बच्चेके हाथमें रखी मिठाईपर वह टूट पड़ा। चील हारपर टूटकर उसे ले उड़े, उस तरह वह बालक मिठाई लेकर भागने लगा।

इसी समय भीतरसे नौबत बजनेकी आवाज़ सुनाई दी। उस भागनेवाले बालकका कुतूहल जाग्रत हुआ। अपने जीर्ण फटे हुए कुरतेमें उस मिठाईको जैसे तैसे छिपाकर, वह महाद्वारसे भीतर पहुँचा।

सामने क्या हो रहा है, इसका कोई पता नहीं चल रहा था। किसीने मधु-मक्खियोंके असंख्य मधु-कोशोंको छेड़ दिया था। उनसे बाहर निकलनेवाली लाखों मधु-मक्खियाँ चारों ओर भनभनाती हुई घूम रही थीं।

जनसमूहमें एकदम स्तब्धता फैल गयी। समुद्रका सरोवरमें रूपान्तर हो गया। भगवानकी उत्सव-मूर्त्ति रथमें प्रस्थापित कर दी गयी। सबने मस्तक नम्र करके भगवानकी जय बोली। रथ खींचनेवाले भक्तोंने हास्य-युक्त मुद्राओंसे अपनी सेवा प्रारंभ की।

लेकिन रथ किसी भी तरह अपने स्थानसे टससे मस नहीं होता था। खींचने-वाले लज्जित हो गये। देखनेवाले चकित रह गये। जिन्हें अपनी शक्तिपर अभि-मान था ऐसे अनेक लोग आगे बढ़े। वे रथ खींचने लगे। लेकिन वह रत्तीभर भी आगे न बढ़ता था। लगता था जैसे कर्णके रथकी तरह इस रथके पहियोंको भी पृथ्वी निगल गयी थी।

मधु-मक्खियाँ गरजने लगीं। समुद्र क्षुब्ध हो गया।

'यह तो बड़ा असगुन है!' – जहाँ तहाँ कानाफूसी होने लगी।

पुजारी आगे बढ़ा। उसने हाथ जोड़े। राजाने, सन्यासीने, नर्तकीने, पंडितने,

सेठ-साहूकारोंने – सारे भक्तोंने हाथ जोड़े। उस बालकको भी लगा कि हाथ जोड़ूँ। लेकिन उन्हें जोड़ना संभव न था। उसने अपने फटे हुए कुरतेके नीचे जो मिठाई छिपायी थी, उसे उसने अपने एक हाथसे दबा रखा था।

हाथ जोड़े तो उसे कहाँ रखे ?

वह अकेला ही बिना हाथ जोड़े खड़ा रहा।

किसी बहुत गहरी गुफ़ासे आवाज़ आवे, उस प्रकार रथसे शब्द सुनाई पड़ने लगे, – ' पापके पर्वतने रथका मार्ग रोक रखा है। किसी पापीने इस मंदिरमें प्रवेश किया है। सामने आकर वह अपना पाप स्वीकार कर ले, तभी रथका मार्ग खुलेगा। '

पुजारीने थोड़े ही दिन पहले महाराजके द्वारा भगवानके गलेमें पहनायी गयी मोतियोंकी मालाकी एक लड़ी चुरा ली थी। वह सभय दृष्टिसे मूर्त्तिकी ओर देखने लगा।

यह कहकर कि संधि-पत्रका मूल्य एक कोरे कागज़के बराबर भी नहीं होता, पड़ोसके निर्बल राष्ट्रपर आक्रमण करनेकी योजना राजाने आज दोपहरको निश्चित की थी! वह भौंचक्का होकर मूर्त्तिकी ओर देखने लगा।

नर्तकीकी ओर बार बार देखनेवाले सन्यासीने चुपचाप आँखें मूँद लीं।

भगवानके आगे नृत्य करने आयी नर्तकी, अनेक रातोंका स्मरण होकर, कातर दृष्टिसे भगवानकी ओर देखने लगी।

शास्त्रग्रंथोंमें प्रक्षिप्त श्लोक जोड़नेवाले पंडित, ग़रीबोंसे मनमाना ब्याज ऐंठनेवाले साहूकार, स्वर्णमें मिलावट करनेवाले स्वर्णकार – सब गड़बड़ा गये। प्रत्येक एक दूसरेकी ओर देख रहा था। हरएक चाहता था कि कोई दूसरा झट-से आगे बढ़े और अपना पाप स्वीकार करके रथका मार्ग खोल दे।

परंतु कोई भी आगे न बढ़ रहा था।

सन्यासीसे लेकर नर्तकीतक और राजासे लेकर पंडिततक सब लोग भयभीत हो गये।

सब लोग बार बार हाथ जोड़कर रथकी ओर देखने लगे। और करुण वाणीसे भगवानकी प्रार्थना करने लगे।

उस प्रचण्ड जनसमूहमें हाथ नहीं जोड़े थे केवल एकने – उस भिखारीके बालकने !

निरभ्र आकाशसे जिस प्रकार मेघ-गर्जना होती है, उस तरह रथसे आवाज़ आयी —

'रथका आगे न बढ़ना अत्यन्त अशुभ है। यदि आज रथ आगे नहीं बढ़ा, तो इस वर्ष वर्षा न होगी। आगामी वर्ष भयंकर अकाल पड़ेगा। लाखों लोगोंको तड़प-तड़पकर अपने प्राणोंसे हाथ धोने पड़ेंगे। तुम लोगोंमें जो पापी हो, वह तुरंत आगे बढ़े। वह अपना अपराध स्वीकार करेगा, तभी आज रथ आगे बढ़ेगा। सब लोग सुखी होंगे।'

वह भिखारीका बालक तीरकी तरह भीड़में घुसा। उल्काके वेगसे वह रथके सामने आकर खड़ा हो गया। अपने फटे हुए कुरतेको खोलकर दिखाता हुआ वह बोला, –'भगवन, कुछ समय पहले मैंने यह मिठाई चुरायी थी। मैं सुबहसे भूखा था। इसलिये मैंने यह चोरी की। मैं पापी हूँ।'

दूसरे ही क्षण रथ आगे बढ़ा। परिक्रमा आरंभ हुई।

लेकिन भगवानकी मूर्त्तिकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

सब लोग कहने लगे, –'भगवानकी आँखोंसे आनंदाश्रु बह रहे हैं।'

उस दुर्लभ तीर्थको लेनेके लिये सब लोग प्रतिस्पर्धासे आगे बढ़े।

राजा हँसा।

सन्यासी प्रसन्न हो गया।

नर्तकीने नृत्य आरंभ किया।

उस प्रचण्ड जनसमूहमें केवल एक ही नहीं हँस रहा था – वह भिखारीका बालक। वह बार बार व्याकुल दृष्टिसे भगवानकी मूर्त्तिकी ओर देख रहा था। अब भगवान क्यों रो रहे हैं – उन्हें क्या दुख हो रहा है, यह उसकी समझमें न आता था।

●●●

पार्श्वभूमि

१

एक लघुनिबंधकारने विनोदसे यह प्रश्न पूछा है कि 'रॉबिनसन क्रूसोकी तरह यदि आपको भी किसी वीरान द्वीपमें बरसों जीवन बिताना पड़े, तो आप किन दस पुस्तकोंको अपने साथ ले जायेंगे?' उसका निबंध पढ़ते समय मुझे लगा था कि दसतक गिनती गिननेसे पहले ही, मैं अपनी पसंदकी दस पुस्तकोंके नाम तुरंत गिना दूँगा। लेकिन—

मैं वह सूची बनाने बैठा ही था, तभी मुझे विश्वास हो गया कि यह काम बड़ी टेढ़ी खीर है।

हमारे बहुतसे मित्र होते हैं, जो गप्पें लगाते समय, चाय पीते समय, अथवा सिनेमा देखते समय हमारे आनंदको बढ़ाते हैं! लेकिन विपत्तिके समय हमारे दुःखको महसूसकर उसे बँटानेके लिये हमारे पास दौड़कर आ जाये, ऐसा सहृदय उनमें शायद ही होता है।

पुस्तकोंकी भी यही बात है। कुछ पुस्तकें हम सफरसे ऊबनेके लिये पढ़ते हैं, कुछ पुस्तकें प्रथितयश लेखकोंकी होनेके कारण हमें पढ़नी ही पढ़ती हैं (जगकी दृष्टिसे हम पिछड़े हुए माने जायेंगे, यह मनुष्यको अकारण ही लगा रहता है), कई पुस्तकोंकी भेट हमारी इतवारको छुट्टी होनेके कारण होती है और

कई पुस्तकें अश्लील मार्तंडों द्वारा दी गयी अवास्तव प्रसिद्धिके कारण ही, हमारी आँखोंके सामने खड़ी रहती हैं। इस प्रकारकी भीड़से अपनी अत्यन्त प्रिय दस पुस्तकोंको चुनकर निकालना, क्या मरुभूमिमें इतस्ततः बिखरे हुए स्वर्णकणोंको बीननेकी तरह ही कठिन नहीं है?

चुनाव केवल दस पुस्तकोंतक ही सीमित होनेके कारण, सूची बनाते समय, मन इस प्रकार चकरा जाता है, कि कुछ पूछिये ही नहीं! बिना सुगंधवाले फूल सहज ही अलग किये जा सकते हैं। लेकिन गुलाब और सोनचम्पाके फूलोंमें चुनाव करना पड़े, तो झटपट निर्णय क्या दें और कैसे दें? दुनियामें बुरा ही भलेका शत्रु नहीं है। उत्तम भी उसका बैरी ही सिद्ध होता है!

बचपनसे नाटकोंकी रुचि होनेके कारण, उस वीरान द्वीपपर ले जानेके लिये अनेक नाटक मैंने बार बार उठाये। फिर भी अंतमें मुझे यह मानना ही पड़ा कि शेक्सपीअर अथवा इब्सेनको छोड़कर, दूसरा कोई भी नाटककार मेरा उस एकान्तमें साथ न दे सकेगा।

इन दस पुस्तकोंकी सूचीमें कौनसा उपन्यास समाविष्ट करूँ, यह समस्या तो मुझसे कभी भी हल न हुई। हरिभाऊ[1], शरच्चन्द्र, हार्डी, तुर्गनेव, स्टीफन ज़्वाइग — ये सभी मेरे प्रिय उपन्यासकार हैं।

और साथमें काव्य-संग्रह कौनसा ले जाया जाय?

इस प्रश्नका उत्तर निश्चित करते समय तो मेरा दिमाग़ ही घूम गया! छि! साहित्यके प्रत्येक विभागसे अपनी पसंदकी एक ही पुस्तक चुननेकी अपेक्षा किसी राजकन्याका स्वयंवर सम्पन्न करना सहज होगा!

लेकिन इन दस पुस्तकोंकी सूचीमें, दो नामोंको निश्चित करते समय मेरा मन ज़रा भी असमंजसमें न पड़ा। वे हैं रामायण और ईसपनीति। मेरी दृष्टिसे रामायण निरा महाकाव्य नहीं है। वह जीवनको मार्ग दिखानेवाला तत्त्वज्ञानका ग्रंथ है। जिसे यह सीखना हो कि आपत्तियोंके साथ हँसते हँसते किस तरह लड़ें, उसका रामायणके बिना काम नहीं चलेगा।

हो सकता है कि वर्तमान समयमें मेरा रामायणका चुनाव बहुतसे लोग पसंद न करेंगे। लेकिन इसके लिये कोई मुझे अधिक दोष भी न देगा। लेकिन यह

१ हरिभाऊ : हरि नारायण आपटे : आद्य मराठी उपन्यासकार।

देखकर कि अपनी पसंदकी पुस्तकोंमें मैं ईसपनीति चुनी है, वही लोग मुझपर हँसने लगेंगे। यह बात उन्हें कुछ ऐसी लगेगी जैसे फुटबॉल खेलनेवाला उस खेलको छोड़कर, फिरसे गोलियाँ खेलने लगे! कुछ लोग तो उपरोधसे मंद मुस्कानके साथ मन-ही-मन यह भी कहेंगे कि 'महाशयजीकी बुद्धि आठ-दस सालके बालकके बराबर ही बढ़ी हुई मालूम होती है!

२

कोई कुछ भी कहता रहे, जगके पहले चतुर रूपक-कथाकारकी दृष्टिसे, ईसपकी बुद्धिमत्ताके प्रति मुझे अत्यंत आदर है। तेजस्वी तारा पृथ्वीसे कितना ही दूर हो, फिर भी उसका प्रकाश पृथ्वीतक पहुँचता ही है। ईसपकी बात भी कुछ ऐसी ही हो गयी है। ढाई हज़ार वर्ष बीत गये। लेकिन उसका कुशल कथाविलास वर्तमान सुधरे हुए जगको भी मोहित कर दे, इतना रमणीय है। ईसपकी कल्पनाएँ कविकी थी, उसका निरीक्षण विनोदपंडितका था और उसकी बुद्धि तत्त्वज्ञकी थी—संसार-विन्मुख तत्त्वज्ञकी नहीं! किन्तु असंख्य द्वन्द्वोंसे परिपूर्ण इस संसारका स्वागत करनेवाले तत्त्वज्ञकी!

स्पष्ट कहे हुए कटु सत्यको दुनिया सहसा नहीं चाहती। वह बहुधा प्रभावशाली भी नहीं होता। यह महसूस करके ही, ईसपने रूपक-कथाको अपनाया और अपनी प्रतिभासे उसे विभिन्न प्रकारसे सजाकर, जगके सामने उसे उपस्थित किया।

कल्पनाका चमत्कार रूपक-कथाका एक प्रमुख और प्रभावशाली गुण है। ईसपकी अनेक लोकप्रिय कहानियोंमें, पशुपक्षियोंके प्रतीक होनेके कारण, और उन कथाओंके द्वारा प्रकट हुए सत्योंका ईसपके पश्चात्के साहित्यमें, अनेक रमणीय प्रकारोंसे प्रदर्शन होनेके कारण, उसकी कल्पनाशक्तिका आजके पाठकको पूर्ण रूपसे आभास नहीं होता। बटन दबाकर बिजलीकी बत्ती जलानेवालोंमें कितने लोगोंको एडिसनकी कष्टपूर्ण तपस्या और उसकी अलौकिक प्रतिभाकी जानकारी होती है? वही बात है यह! लेकिन ईसपकी कल्पनाशीलता कितनी तरल और सुंदर थी, यह जाननेके लिये उसकी एक अप्रसिद्ध कहानी 'मृत्यु और कामदेव' अवश्य पढ़िये। मानवी मनको सतत चुभनेवाले शल्योंमें दो शल्य हैं—तरुणोंकी

अकाल मृत्यु और वृद्धोंका घिनौना प्रेमविलास! ये दोनों अनिष्ट बातें जगमें कैसे आरंभ हुई, इसका विचार करते करते ईसपने नीचे लिखी चमत्कारपूर्ण कथा लिखी।

कथा इस प्रकार है :

वसंतके विविध खेल खेलकर, कामदेव बिलकुल थक गया था। ऊपरसे ग्रीष्मकी तेज़ गरमी पड़ रही थी। कामदेवको यह भय होने लगा कि तरकशमें रखे उसके पुष्पबाण कहीं सूख न जायें और उनकी अनी गलकर न गिर पड़े। किसी शान्त स्थानमें जाकर विश्रांति लेनेके विचारसे, उसने एक गुफ़ामें प्रवेश किया।

वह गुफ़ा मृत्युकी थी। उसके विषैले बाण गुफ़ामें सर्वत्र फैले हुए थे। लेकिन धूपसे बिलकुल थके हुए कामदेवको वे दिखाई ही न दिये! उस शान्त स्थानमें वह लेट गया। तुरंत ही निद्राने उसपर अपना मोहन-जाल फैला दिया। कामदेव जब सोया तब उसके तरकशके बाण ज़मीनपर गिर पड़े और मृत्युके बाणोंमें मिल गये।

नींद खुलते ही कामदेवने जल्दी जल्दी कुछ बाण समेटकर अपने तरकशमें रखे और वह तुरंत गुफ़ासे बाहर निकल पड़ा। लेकिन गुफ़ाके अँधेरेमें उसे यह पता ही न चला कि उसके बाण कौनसे हैं और उन बाणोंके सिवा क्या और भी कोई बाण उनमें मिल गये हैं!

बाहर आनेपर पूर्ववत् तरुण-तरुणियोंपर उसने अपना शर-संधान प्रारंभ किया। परंतु कभी कभी भिन्न परिणाम होनेके कारण, वह चकित होने लगा। पहले उसके बाण लगते ही तरुण-तरुणी प्रेम-वश हो जाया करते थे। अब बीचहीमें कुछ शरबद्ध लोग मृत्युवश होने लगे।

उधर मृत्युको भी यह देखकर कि उसके कुछ बाण असफल हो जाते हैं, आश्चर्य होने लगा। वह हमेशा वृद्धोंपर ही अपने बाण छोड़ा करती थी और जिनपर वह बाण छोड़ती थी वह निश्चित निष्प्राण हो जाया करता था। लेकिन अब ज़रूर एकाध बूढ़ा उसका बाण लगनेपर प्राणांतक वेदनाओंसे विव्हल होनेके बदले, कामपीड़ासे व्याकुल होकर, कुछ अजीब ही तमाशे दिखाने लगा!

इस कथाकी कल्पनाके समान ही, ईसपकी 'जीभ' नामक कहानीकी मार्मिकता-का नमूना भी, देखने योग्य है।

ईसप जांथसका रसोइया था। एक दिन भोजके लिये जांथसने ईसपको सबसे अच्छे पकवान बनानेका हुक्म दिया। ईसपने बकरेकी जीभके भिन्न भिन्न पकवान तैयार किये। सारे मेहमान उन पदार्थोंपर जैसे टूट पड़े। लेकिन जांथस नाराज़ हो गया, क्योंकि ईसपने केवल जीभके ही भिन्न भिन्न पदार्थ बनाये थे! उसके यह पूछते ही कि 'तूने यह क्यों किया?'—

ईसपने उत्तर दिया,—'दुनियामें जीभके समान अच्छी चीज़ और दूसरी कोई भी नहीं है।'

दूसरे दिन जांथसने जानबूझकर, उससे सबसे बुरे पकवान बनानेके लिये कहा। पहले दिनके मेहमान ही भोजके लिये आये थे। सब आकर देखते हैं, तो आज भी सब पदार्थ बकरेकी जीभके ही बने थे।

अब ज़रूर जांथससे अपना क्रोध नहीं रोका गया। वह झल्लाकर ईसपसे बोला,—'अरे, कल तो जीभके बने सारे पदार्थ बहुत अच्छे थे, फिर आज ये इतने खराब कैसे हो गये?'

ईसपने उत्तर दिया,—'स्वामी! दुनियामें जीभके समान जिस तरह दूसरा अच्छा पदार्थ नहीं, उसी तरह उसके समान बुरा पदार्थ भी नहीं है!'

ईसपका यह उत्तर कितना मार्मिक और मर्मभेदक है! जो जीभ प्रणयकी मीठी मीठी बातें करती है, वही कलहके कटु शब्द भी कहती है। जीभ जिस प्रकार मित्रता जोड़ती है, उसी तरह वह मित्रता तोड़ भी देती है। क्राइस्टने अपने प्रेमके तत्त्वज्ञानको जीभकी सहायतासे ही लोगोंके गले उतारा और वर्तमान समयके युद्ध-युगके प्रवर्तक उसीका उपयोग करके, जगमें द्वेषके तत्त्वज्ञानका प्रसार कर रहे हैं।

कल्पना और मार्मिकताकी जोड़का रूपक-कथामें रंग भरनेवाला तीसरा गुण है जीवन-संदेश। तत्कालीन लोक-स्थितिको ध्यानमें रखकर ईसपने प्रत्येक कथाके अन्तमें सार देनेकी पद्धति अपनायी। यह पद्धति जीवन-संदेशके लिये मारक है। वर्तमान समयका कोई बहुत साधारण रूपक-कथाकार भी उसे नहीं अपनायेगा। लेकिन यदि सारको छोड़कर हम ईसपकी कथाएँ पढ़ने लगें, तो उनके जीवन-संदेशकी सामर्थ्य हमारे सहज ही ध्यानमें आ जाती है।

उसकी एक बहुत साधारण-सी कहानी ' मनुष्य और सिंह ' लीजिये। यह पचीस सौ वर्षका निरा चमत्कार-पूर्ण कल्पनाविलास नहीं है। आजका हमारे आसपासका स्वार्थी जग भी उसमें प्रतिबिंबित हुआ है। इस कहानीमें यह सिद्ध करनेके लिये कि मनुष्य सिंहकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, एक महाशय सिंहको सिंहपर सवार मनुष्यकी एक तसवीर दिखाते हैं।

सिंह तुरंत उत्तर देता है, — ' जिसने यह तसवीर बनायी है, वह मनुष्य था। यह तसवीर यदि सिंह बनाता, तो उसमें यह दृश्य दिखाया जाता कि मनुष्यके सीनेपर चढ़कर सिंह उसे फाड़ रहा है। '

ईसवी सन्से पहलेके ईसपनीतिके सिंहके ये उद्गार आज भी हमें सर्वत्र सुनाई पड़ रहे हैं। सुधारकी सीमापर पहुँची हुई बीसवीं सदीके हर तरहके गुलामोंके हृदयमें जो उबाल उठ रहे हैं, वे इन्हीं उद्गारोंकी प्रतिध्वनियाँ हैं। साम्राज्य-वादकी छायामें जिनकी प्रगति रुक गयी है, ऐसे स्वातंत्र्यवादी राष्ट्र, उच्च वर्गकी दासतामें दबोचा गया हुआ अभागा दलित वर्ग, पूंजीवादके राक्षसी नृत्यमें रौंदे जानेवाले दीन और निर्धन लोग — इन सबके अन्तरंगमें एक ही आक्रोश निरंतर घूमता रहता है — और वह यह कि, ' मनुष्यके द्वारा बनाये गये चित्रमें सिंहकी अयाल पकड़कर उसपर हँसते-खेलते सवार होनेवाला मनुष्य दिखाया होता है। लेकिन जिस दिन वह चित्र सिंह बनायेगा, उस दिन दुनिया यही दृश्य देखेगी कि मनुष्यके सीनेपर बैठकर सिंह उसे फाड़ रहा है। '

हमने अभीतक यह देखा कि ईसपकी कथाओंमें रूपक-कथाके मुख्य अंग कल्पना, मार्मिकता और जीवन-संदेश किस तरह दिखाई देते हैं। इन गुणोंके सम्मिलनसे जो कृति निर्मित होगी वह सुन्दर हो, यह स्वाभाविक ही है। लेकिन सुन्दर और अमर — इन दोनोंमें बड़ा अन्तर होता है। प्रतिभामें जबतक सर्वस्पर्शनी शक्ति नहीं होती, तबतक कलाकार अमर कृति निर्मित नहीं कर सकता।

इस विशालताका गुण भी ईसपकी कहानियोंमें पाया जाता है। ओसकी बूँदमें आकाश दिखाई दे, उस तरह उसकी छोटी छोटी कथाओंमें मानवी जीवनके विभिन्न स्वरूपोंके स्पष्ट प्रतिबिम्ब अंकित हैं। उसकी ' दो स्त्रियोंका पति ' शीर्षक कहानीमें तरुण स्त्री पतिके सफेद केश और प्रौढ़ स्त्री काले केश उखाड़ती है और वह गंजा हो जाता है, यह केवल हास्यरसकी कहानी नहीं है। परस्पर विरोधी

कल्पनाओंके शिकार होकर, आत्मनाश कर लेनेवाले मनका भी वह एक चित्र है। 'नक़लची और किसान' कहानीमें सूअरके चिल्लानेकी नक़ल करनेवालेकी लोग प्रशंसा करते हैं। लेकिन कंबलके भीतर सूअरके बच्चेको छिपाकर और उसे चिकोटी काटकर चिल्लानेके लिये बाध्य करनेवाले किसानको वे अवश्य कलाहीन कहते हैं और उसकी खिल्ली उड़ाते हैं! सच्चा सूअर जब चिल्लाता है तो वे कहते हैं, –'छि! छि! पहले नक़लचीने सूअरका हूब-हू शब्द निकालकर दिखाया। उससे आधा भी यह नहीं निकल सकता!' धर्म, राजनीति, कला, साहित्य इत्यादि क्षेत्रोंमें असलकी अपेक्षा नक़लकी झूठी प्रशंसा किस तरह होती है, इसका ईसपके द्वारा किया गया यह चित्रण असत्य है, यह कौन कहेगा?

२

ईसपकी यह कथा-पद्धति पचीस सौ वर्ष पहलेके समाजको पसंद रही होगी। तथापि आजके सुधरे हुए जगको वह पुरानी लगे बिना न रहेगी, ऐसी शंका अनेकके मनमें आ जाती है। लेकिन यह आपत्ति उठानेवाले लोग बहुधा इस बातकी ओर ध्यान नहीं देते कि सुंदर रूपक-कथाका चमत्कार फीका नहीं पड़ता और जीवनपर भेदक प्रकाश डालनेकी उसकी शक्ति भी कभी कम नहीं होती। यह भले ही सच हो कि आधुनिक कालमें, कथा-शैलीमें विलक्षण विचित्रता आ गयी है, कथाके विषयोंका अभूतपूर्व विस्तार हो गया है और कथा-क्षेत्रमें अनेक प्रतिभाशाली कलाकारोंका बहुविध विलास प्रत्यक्ष देखनेको मिल रहा है, फिर भी हम देखते हैं कि बड़े बड़े लेखक भी रूपक-कथाके द्वारा अपना मनोगतभाव प्रकट करते ही हैं। आधुनिक रूसी लेखक 'सोलोगव' की साहित्यमें लंबाईकी दृष्टिसे बिलकुल छोटी किन्तु परिणामकी दृष्टिसे बहुत बड़ी एक कथा है। उसका नाम है – समता।

कहानी केवल इतनी है :

'एक बड़े मच्छने एक छोटी मछलीको पकड़ा और उसे निगलनेके लिये अपना मुँह खोला।

छोटी मछली चीख पड़ी, – 'अन्याय! अन्याय! यह सरासर अन्याय हो रहा है! यह सच है कि तुम बड़े हो और मैं छोटी हूँ। लेकिन मुझे भी ज़िंदा रहनेका हक़ है। कानूनकी निगाहमें सब मछलियाँ बराबर हैं!'

बड़े मच्छने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, – 'कानूनकी बेकार बातोंकी क्या ज़रूरत? तुम्हारी यही इच्छा है न, कि मैं तुम्हें न निगलूँ? ठीक है! तो फिर तुम्हीं मुझे निगल डालो। निगलो – निगलो – खोलो अपना मुँह – इस तरह घबराओ नहीं, बेटा! मैं तुमपर कोई एकदम टूट नहीं पड़ूँगा।'

छोटे मछलीने हिम्मत बाँधकर अपना मुँह खोला और बड़े मच्छको निगलनेका पराकाष्ठाका प्रयत्न किया। अन्तमें गहरी साँस लेकर निराशासे वह बोली,–'तुम्हारा ही कहना ठीक है, बाबा! निगल डालो मुझे!''

इस कहानीको पढ़नेके लिये पूरे दो मिनट भी नहीं लगते। लेकिन पढ़नेके उपरान्त दो वर्षके बाद भी उसका विस्मरण नहीं होता। किसी करुण गीतके स्वर जिस तरह कानोंमें घूमते रहते हैं, उसी तरह इस कथाके द्वारा दिखाया गया भेदक सत्य अपने मनमें निरंतर घुलता रहता है। जगमें सशक्तोंके द्वारा निर्बलों-पर और सम्पन्नोंके द्वारा निर्धनोंपर पद पदपर होनेवाले अन्याय इस कथामें, कितने प्रभावशाली ढंगसे चित्रित किये हैं।

रवीन्द्रकी 'Gift' नामकी रूपक-कथा भी इसी प्रकार अविस्मरणीय है।

इस कहानीका राजा सड़कके किनारे खड़े हुए एक भिखारीके पास अपना रथ रोक लेता है और उससे भिक्षा माँगता है। भिखारी बड़ी अनिच्छासे अपनी झोलीसे चार दाने निकालकर, राजाको दे देता है। भिखारी अपनी कुटियामें आकर झोलीका अनाज ज़मीनपर उडेलकर देखता है। उसने राजाको जितने दाने दिये होते हैं, उतने ही सोनेके कण उस अनाजमें उसे दिखाई देते हैं। वह पश्चात्तापसे अपने आपसे कहता है, – 'यदि मैं झोलीका सारा अनाज राजाको दे देता, तो कितना अच्छा होता?'

त्यागसे पराङ्मुख होनेवाले और जीवनकी उदात्तताकी ओर पीठ फेरकर, स्वार्थमें निमग्न रहनेवाले मनुष्योंके हृदय, जीवनकी अंतिम घड़ियोंमें, भिखारीकी तरह ही व्याकुल होते होंगे! सच है न?

४

रूपक-कथाका आधुनिक पद्धतीका विकास देखना हो, तो खलील ज़िब्राँकी कहानियाँ पढ़नी चाहिये। मुझे यद्यपि ऐसा लगता हो कि विरान द्वीपपर साथमें ले जायी जानेवाली दस पुस्तकोंमें ईसपनीति होनी ही चाहिए, फिर भी यदि मेरे सामने यह सवाल खड़ा हो जाय, कि ईसप या ज़िब्राँ?, तो उसे मैं कभी भी हल न कर सकूँगा। ज़िब्राँकी अनेक रूपक-कथाओंमें कल्पना, जीवनसंदेश, मार्मिकता और विशालता – इनमेंसे कम-से-कम दो-तीन गुणोंका सुंदर संगम होता है। उसकी रूपक-कथाको एक ही उपमा शोभा देगी – बिजलीकी। बिजली क्षण-भरको ही चमकती है, लेकिन उस एक उज्ज्वल क्षणमें, वह समूचे आकाशको प्रकाशित कर सकती है। ज़िब्राँकी कहानियाँ भी इसी तरहकी हैं। कहानी सिर्फ़ एक या डेढ़ पृष्ठकी होती है, किन्तु उसे पढ़नेके बाद, ऐसा अभास होता है, जैसे हम अनुभूतिके नये क्षेत्रमें आ पहुँचे हैं। उदाहरणके लिये उसकी 'Sleep Walkers' नामक कहानी देखिये।

एक माँ और उसकी लड़कीकी यह कहानी है।

'आधी रातको दोनों ही नींदमें चलती हुई घरके बाहर बगीचेमें पहुँचती हैं। इस भ्रममें ही वहाँ दोनोंकी भेट होती है।

लड़कीको देखते ही माँ झल्लाकर कहती है, – 'चल, जा! अपना मुँह काला कर! मेरे रूप और यौवनका सर्वनाश करनेवाली राक्षसनी है तू!'

लड़की भी उतने ही क्रोधसे कहती है,–' और तू? तू भी मेरी बैरिन है। तेरे सारे दुर्गुण मुझमें आ गये हैं – बिलकुल मेरे रक्तमें भिन गये हैं। चल, जा यहाँसे। अपना मुँह काला कर! मर! राक्षसनी कहींकी!'

इसी समय मुर्गा बांग देता है। दोनों जाग जाती हैं। लड़की माँको पहचान कर 'माँ, माँ' कहती हुई-उसे प्रेमसे बाहोंमें भर लेती है!

माँ भी 'मेरी प्यारी बिटिया' कहकर वात्सल्यसे उसे हृदयसे लगा लेती है।'

मानवी मनके परस्पर विरोधी पहलू, इतने प्रभावशाली ढंगसे, दस-बीस पृष्ठोंकी कहानीमें भी, शायद ही चित्रित हुए होंगे!

५

मैं जिसे रूपक-कथा कहता हूँ, उसका सर्वसाधारण स्वरूप और इस कथा-प्रकारकी विशेषता, उपरोक्त विभिन्न उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायेगी। इस प्रकारकी कथाकी रुचि मुझे बचपनसे ही थी। विद्यार्थी अवस्थामें ईसपनीतिकी तरह जातक-कथा, पंचतंत्र और हितोपदेशकी कथाएँ भी मैं बड़ी रुचिसे पढ़ा करता था। लेकिन यद्यपि मैंने अपनी पहली सामाजिक कहानी सन् १९१९ में लिखी थी, फिर भी इस प्रकारकी कथाएँ लिखनेकी इच्छा मुझे सन् १९३१ तक न हुई थी। सन् १९३० में, गांधीजीने नमक-कानून भंग करनेका जो बड़ा आन्दोलन आरंभ किया था, उसमें कोंकणका गाँव शिरोडा, जहाँ मैं रहता था, अग्रसर था। उस समयके तप्त वातावरणमें, मैंने अपने प्रक्षोभको, एक ओरसे सुंदर और दूसरी ओरसे सशक्त रूपमें प्रकट करनेका बार-बार प्रयत्न किया। 'दो छोर' नामकी मेरी एक अत्यन्त लोकप्रिय सामाजिक कहानी उस कालमें ही लिखी गयी। परंतु उसे लिखकर भी मुझे संतोष न हुआ। निरंतर लग रहा था कि जो कहना चाहिए था, वह मैं न कह सका। कुछ इस तरहका विचार मेरे मनमें उछल रहा था। मुझे नहीं लगता था कि मैं उसे सामाजिक स्वरूपकी कहानीके द्वारा संपूर्ण रूपमें और संतोषजनक रीतिसे कह सकूँगा। सन १९१५ से लेकर सन १९२५ तककी दस वर्षकी अवधिमें, मुझे कविता रचनेका थोड़ा शौक़ था। लेकिन गद्यके विभिन्न प्रकारोंने मुझे अपने पीछे खींच लिया, इसलिये सन् १९३० के लगभग मेरे भीतरका काव्य रचनेवाला कवि, करीब करीब वानप्रस्थ हो गया था। लेकिन उपरोक्त वर्णित मनःस्थितिमें वह फिर क्षण-भरके लिये संसारकी ओर मुड़ा! उसने 'सहगमन' शीर्षक एक कविता लिखी। लेकिन उस कविताको लिखकर भी मेरी चिन्ता बनी रही। अन्तमें जब मैंने इस संग्रहकी

'सागर, अगस्ति आया!' शीर्षक कथा लिखी, तब कहीं मेरे भीतरके कलाकारकी तृप्ति हुई।

६

एक ओर कहानीकी सीमासे लगा हुआ और दूसरी ओर काव्यसे संलग्न, अचेतनसे लेकर अद्‌भुततक सारी चराचर सृष्टिको अपनी रंगभूमिपर नचानेवाला, भावनाको गुदगुदाते हुए तत्त्वज्ञानकी कोखमें छिपनेवाला – इस तरह इस कथाप्रकारका वर्णन हो सकता है।

रूपक-कथाका सौन्दर्य उसके काव्यमें होता है – मूल बीजसे लेकर विकासतक सर्वत्र प्रकट होनेवाले तथा कल्पना और भावनाकी आँखमिचौलीका खेल खेलनेवाले उसके काव्यकी अभिव्यंजनामें उसकी सामर्थ्य होती है। छोटे छोटे प्रसंगोंके द्वारा आँखोंके सामने खड़े होनेवाले विविध चित्रोंमें, अत्यन्त अल्प अवकाशमें किसी घटनाका आरंभ, मध्य और अन्त चित्रित करके, जीवन-दर्शनका उद्‌घाटन उसका कथा-स्वरूप होता है। यह जीवन-दर्शन समाजिक कहानीकी तरह केवल प्रचलित सुख-दुःखोंमें न कहें फिर भी एक प्रकारकी क्षणिकता अथवा भंगुरता होती है। आजका कोई भी सामाजिक दुख कल उतना ही तीव्र रहेगा, यह बात नहीं है। यही नहीं, किन्तु उसकी स्मृति भी समास हो जायगी और वह दूसरा रूप धारण कर लेगा। लेकिन जीवनके मूलभूत घटकों और विरोधोंसे जो संघर्ष उत्पन्न होते हैं, उनसे निर्मित सुख-दुख सामाजिक सुख-दुःखोंकी अपेक्षा बिलकुल भिन्न स्वरूपके होते हैं। उनमें भिन्न प्रकारकी रुद्रता अथवा रम्यता होती है। वे अधिक सर्वस्पर्शी और चिरकालिक हो सकते हैं। ऐसे सुख-दुःखोंका चित्रण केवल भावना या कल्पनासे नहीं हो सकता। वहाँ स्वतंत्र तत्त्वचिंतनकी आवश्यकता होती है। इस प्रकार प्रकट हुआ तत्त्वचिंतन अथवा जीवन-दर्शन रूपक-कथाकी सामर्थ्यका एक महत्वपूर्ण भाग है। इस कथा-संग्रहकी 'पृथ्वी', 'मोतियोंकी फसल', 'घोंसला और भूकंप', 'परमेश्वर', 'दो मेघ', 'छोटा पत्थर', 'चित्रगुप्तके दफ्तरमें', 'बाँध', 'तीन कलाकार', 'शान्ति-सभा', 'आत्मा', 'चकोर और चातक' – इतनी ही कथाओंको पढ़नेसे यह बात सहज ही ध्यानमें आ

जायेगी कि रूपक-कथाकी सामर्थ्य कथा रूप धारण करके काव्यात्मक रूपमें प्रकट हुए तत्त्व-चिंतनमें है, ऐसा मैं क्यों कहता हूँ।

७

इस प्रकारकी कथाके लिये मैं पहलेसे ही 'रूपक-कथा' शब्दका उपयोग कर रहा हूँ। वह समुचित नहीं है और ऐसी कथाको 'ध्वनि-कथा' कहना चाहिए, ऐसी आलोचना—और वह भी भरपूर पांडित्यपूर्ण आधार देकर हुई है। 'रूपक-कथा' नामके प्रति मुझे कोई विशेष प्रेम हो, यह बात बिलकुल नहीं है। इस प्रकारकी कथा जब मैंने पहली बार लिखी, तब यह सूचित करनेके लिये कि वह प्रचलित कहानियोंकी अपेक्षा निराली है — आकार, विषय और आविष्करणकी पद्धतिमें वह भिन्न है, मैंने उसके लिये 'रूपक-कथा' शब्दकी योजना की। कालान्तरसे वही नाम प्रचलित हो गया। बोध-कथा, व्यंग्य-कथा, प्रतीक-कथा आदि अनेक शब्द मैंने उस समय न सुने हों, यह बात न थी। लेकिन उनमेंसे प्रत्येकमें अव्याप्ति, अतिव्याप्ति अथवा दूसरा कोई मुझे जान पड़ा। सहज-हीमें नये नामपर विचार करने लगा। 'रूपक-कथा' नाम मुझे सब दृष्टिसे अच्छा लगा।

यह नाम मुझे सूझा इसका कारण इस कथा-शैलीका मुझे प्रतीत हुआ दुहरा स्वरूप है। ऐसी कथामें स्पष्ट दीखनेवाली कथा-वस्तुकी एक रूप-रेखा रहती है। लेकिन वह इस रंग-ढंगसे खींची और रंगी जाती है कि उस कथानकसे निर्मित होनेवाली अनुभूतिके साथ ही सर्वस्वमें भिन्न एक अनुभूति भी उसमें प्रकट हो। रूपक अलंकारमें ऐसा दिखाया जाता है कि दो भिन्न वस्तुएँ भिन्न न होकर एकरूप हैं। रूपक-कथामें स्पष्ट वर्णित कथा और उसके आन्तरिक तत्त्वकी ध्वनि – दोनों बातें इसी तरह एकरूप होती हैं।

इस कथाको ध्वनी-कथा कहें या रूपक-कथा कहें, यह मेरी रायमें विशेष महत्त्व-का प्रश्न नहीं है। इस प्रकारकी कथाके अँग्रेज़ीमें Parable, Allegory, Fable इत्यादि उपभेद किये ही जाते हैं। हमारे यहाँ भी वे अवश्य किये जाने चाहिए। किन्तु उत्कृष्ट रूपक-कथामें – फिर वह किसी भी प्रकारकी हो – चमत्कार-पूर्ण

कल्पना, सर्वस्पर्शी भावना और दैनिक व्यवहारके परे उड़ान लेनेवाली चिंतन-शीलताका दर्शन होना चाहिए।

८

इस संग्रहमें, यदि रसिक पाठकोंको इन गुणोंसे युक्त कुछ कथाएँ मिल जायें, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा। उत्कृष्ट कला-कृतिकी परिभाषा करना सरल होता है। लेकिन उस परिभाषाके अनुरूप निर्मिति करना उतना ही कठिन होता है। काव्य-निर्मितिकी तरह ही कथा-निर्मिति भी 'ऑर्डर' से बननेवाली चीज़ नहीं। अनुभूति, विषय, आविष्करण – ये सब अपनी अपनी तरहसे अच्छे होते हुए भी उनका समन्वय कला-कृतिमें हो ही जाता हो, यह बात भी नहीं है। श्रेष्ठ कला ऊर्वशीकी तरह होती हैं – जितनी सुन्दर उतनी ही मन-मौजी! अपने प्रेमका दान करते हुए भी नाना प्रकारकी शर्तें रखनेवाली – कलाकार यदि उनमें की कोई शर्त भंग कर दे, तो तत्काल उसका त्याग कर देनेवाली! पुरुषकी तरह पागल होकर यदि वह कलाकार उसके दर्शनके लिये जँगलोंमें भटकने लगे फिर भी द्रवित न होनेवाली! इसलिये कलाका सर्वांग-सुन्दर आविष्करण किसी भी ललित कृतिमें होना अत्यन्त कठिन होता है।

जब हम यह पढ़ते हैं कि गटे कालिदासके 'शाकुन्तल' को सिरपर रखकर नाचा, तब हमारा मन आनंद और अभिमानसे खिल उठता है। शाकुन्तलमें उतना सौन्दर्य और रस है, इसमें संदेह नहीं। लेकिन नाट्यगुणोंके सारे निकषपर हम शाकुन्तलका दूसरा या छठवाँ अंक कसकर देखने लगें, तो क्या वे उस कसौटीपर खरे उतरेंगे?

रूपक-कथा तो कथाके बराबर ही काव्यसे नाता रखनेवाला साहित्य-प्रकार है। वह हमेशा ही सफलतापूर्वक निर्मित नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, एक ओर गद्य-काव्य और दूसरी ओर लघु-कथा – इन दोनोंके बीच रूपक-कथा कहाँ ठीक बैठ सकेगी, उसका विकास किन किन दिशाओंमें और किस सीमातक हो सकेगा, यह देखनेके लिये मैंने अनेक प्रयोग किये। वे सब इस संग्रहमें समाविष्ट हुए हैं। प्रयोग कई बार सफलताकी राहमें असफलताकी मंज़िल हो

सकती है। इस कारण इस संग्रहकी अनेक कथाएँ पढ़ते समय कल्पना, कोमल भावना, और स्वतंत्र चिन्तन अथवा सूक्ष्म समाज-आलोचना – इन सबका कलात्मक संगम रसिकोंको चाहे दिखाई न दे, फिर भी उपरोक्त विशेषणोंमेंसे एक न एक तो उनमें ज़रूर मिलेगा और वह उन्हें आनंद देगा, ऐसी मुझे आशा है।

९

रूपक-कथाका काव्यसे निकटका नाता होनेके कारण, जीवन-संदेश भी उसका एक महत्त्वका भाग है। इसके कारण वह आकारमें बहुधा छोटी होती है। इत्रकी एक बूँदमें फूलोंकी सुगंध जिस तरह एकत्रित हुई होती है, उसी तरहकी बात है यह। इसे ध्यानमें रखकर कि इस प्रकारकी कथाका काव्यसे नाता है, इस संग्रहकी छपाई काव्यकी पद्धतिसे ही की गयी है। प्रत्येक रूपक-कथाका विषय भिन्न, उसका वातावरण भिन्न, उसमेंका तत्त्व-दर्शन भिन्न। यही नहीं, किन्तु जिस तरह कविता जल्दी-जल्दी [समाचारपत्रके समाचारोंके तरह एक समाप्त हुआ कि दूसरा] पढ़नेसे काव्य-रसका सच्चा आस्वाद नहीं लिया जा सकता, उसी तरह रूपक-कथाकी पुस्तक भी बहुत जल्दी जल्दी पढ़नेमें माधुर्य नहीं। काव्यकी तरह रूपक-कथाके चिन्तनसे ही उसके सौंदर्य और सामर्थ्यका साक्षात्कार स्पष्ट रूपसे होनेकी संभावना होती है।

रूपक-कथा आकारमें छोटी भले ही हो, फिर भी 'लघुतम कथा' के नामसे प्रचलित छोटी कहानी स्वभावतः ही एक भिन्न कथा-प्रकार है। विस्मय-जनक अंत लघुतम कथाका अत्यंत महत्त्वका भाग होता है। अनेक बार यह चमत्कृति केवल बौद्धिक व्यायामसे अथवा काल्पनिक कलाबाजीके कारण रूपक-कथा नहीं हो सकती। लघुतम कथा हास्य-रसकी कहानीकी तरह केवल मनोरंजक ही हो, तो काम चल सकता है। यही नहीं, बल्कि क्षणिक मनोरंजन ही उसका मुख्य उद्देश्य होता है। परंतु रूपक-कथामें ज़रूर मनोरंजनके बराबर ही उद्बोधनको, शैलीके बराबर ही कलाको, नादमधुर शब्दोंके बराबरा ही सूचक अर्थको, और समाज-दर्शनके बराबर ही जीवन-दर्शनको महत्त्व होता है। गिने हुए लयबद्ध शब्दोंमें वातावरण उत्पन्न करना, चुनी हुई बढ़िया कल्पनाओंसे अन्तर-बाह्य सौंदर्यको खिला देना

और यह साधते हुए ही भावना और विचारको आवाहन करके
अंतिम जीवन-मूल्यका साक्षात्कार करा देना – यह रूपक-कथाव
संग्रहकी 'चकोर और चातक', 'बाँध', 'पृथ्वी', 'कोयल
'परिक्रमा' आदि कथाएँ इस दृष्टिसे पढ़िये, यही मेरा पाठके

२३–१–१९५७ }
पूना }